



Centre for Distance & Online Education

Faculty of Arts

महाकाव्य- I

महाकाव्य- I



1MASANS5



Dr. C.V. Raman University
Kargi Road, Kota, BILASPUR, (C. G.),
Ph. : +07753-253801, +07753-253872
E-mail : info@cvru.ac.in | Website : www.cvru.ac.in



DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY

Chhattisgarh, Bilaspur A STATUTORY UNIVERSITY UNDER SECTION 2(F) OF THE UGC ACT

1MASANS5

महाकाव्य - I

1MASANS5

महाकाव्य - I

Credit- 4

Subject Expert Team

Dr. V.P.Mishra, Dr. C.V. Raman
University, Kota, Bilaspur,
Chhattisgarh

Dr. Renu Shukla, Dr. C.V. Raman
University, Kota, Bilaspur,
Chhattisgarh

Shri Prakash Tiwari, Dr. C.V. Raman
University, Kota, Bilaspur,
Chhattisgarh

Dr. Krishna Kumar Bhaskar, Dr. C.V.
Raman University, Kota, Bilaspur,
Chhattisgarh

Dr. Vinod Pandey, Asso. Prof. & Head,
Sanskrit Dept. D.A.V. Mahavidyalaya
Civil Line Kanpur (U.P.)

Dr. Raghvendra Sharma, Asso. Prof. &
Head Dept. of Veda, Govt. Dudhadhari
Sanskrit P.G. Collage, Raipur (C.G.)

Course Editor:

Dr. Raghavendra Sharma, Associate Professor & Head Dept. of Veda, Govt. Dudhadhari Sanskrit
P.G. Collage, Raipur (C.G.)

Unit Written By:

1. Dr. Renu Shukla

Assistant Professor, Dr. C. V. Raman University, Bilaspur (C.G.)

Warning: All rights reserved, No part of this publication may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the publisher. Published by: Dr. C.V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur, (C. G.)

Edition : March 2024

Published by: Dr. C.V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur, (C. G.), Ph. +07753-253801, 07753-253872 E-mail: info@cvru.ac.in, Website: www.cvru.ac.in

अनुक्रमणिका

प्रथम खण्ड- रघुवंश महाकाव्य (1 से 40 श्लोक तक)

इकाई 1-रघुवंश महाकाव्य का संक्षिप्त परिचय	1
इकाई 2-त्रयोदश सर्ग का परिचय	22
इकाई 3-1 से 40 श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या	33
इकाई 4-प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन	93

द्वितीय खण्ड- नैषधीयचरितम् प्रथम सर्ग(एक से 35 श्लोक तक)

इकाई 5- महाकवि श्री हर्ष का परिचय	101
इकाई 6- नल का स्वरूप	120
इकाई 7-1 से 35 श्लोक की सप्रसंग व्याख्या	135

तृतीय खण्ड- नैषधीयचरितम् (36 से 75 श्लोक तक)

इकाई 8- नैषधीयचरितम् के प्रथम सर्ग की कथावस्तु	183
इकाई 9- दमयंती चित्रण	191
इकाई 10 नैषधीयचरितम् के -प्रथम सर्ग के 36 से 55 तक श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या	208
इकाई 11 - नैषधीयचरितम् के -प्रथम सर्ग के 56 से 75 तक श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या	233

चतुर्थ खण्ड – शिशुपालवध (1 से 35 श्लोक तक)

इकाई 12- महाकवि माघ का परिचय	260
इकाई 13- शिशुपालवध की कथावस्तु	276
इकाई 14- 1 से 15 तक श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या	283
इकाई 15-16 से 35 तक श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या	304

प्रथम खण्ड- रघुवंश महाकाव्य (1 से 40 श्लोक तक)

रघुवंश महाकाव्य का संक्षिप्त परिचय ,त्रयोदश सर्ग का परिचय , 1 से 40 श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या ,
प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन

इकाई -1

रघुवंश महाकाव्य का संक्षिप्त परिचय

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 उद्देश्य
- 1.3 महाकवि कालिदास का जीवनवृत्त
 - 1.3.1 महाकवि कालिदास की जन्म, शिक्षा का अध्ययन
 - 1.3.2 कृतियों का संक्षिप्त परिचय
- 1.4 महाकवि कालिदास की भाषाशैली तथा काव्यसौंदर्य
- 1.5 रघुवंश महाकाव्य के त्रयोदश सर्ग की कथावस्तु
- 1.6 सार संक्षेप
- 1.7 स्व -परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
- 1.8 अभ्यास के प्रश्न
- 1.9 संदर्भ सूची

1.1 प्रस्तावना

विगत अध्ययन में साहित्य के संक्षिप्त परिचय, काव्य की विधाओं का ज्ञान प्राप्त किया गया था। इसके पश्चात् उनसे संबद्ध काव्यों के अध्ययन द्वारा इस विषय से पूर्णतः अवगत हुआ जा सकता है। काव्य के परिचय में रघुवंश महाकाव्य का अध्ययन किया जाना उचित मार्ग हैं। रघुवंश महाकाव्य 19 सर्गों से समन्वित अनुपम रचना है। उनके सर्गों की संख्या से ही स्पष्ट होता है कि यह एक विस्तृत रचना हैं। कृति के विषय में ज्ञान प्राप्त करने हेतु उनके रचयिता के विषय में परिचय प्राप्त करना प्रथम चरण माना जाता हैं। रघुवंश महाकाव्य के रचयिता महाकवि कालिदास साहित्य के अनमोल रत्न माने जाते हैं ,उनके विषय में ज्ञान अर्जित करना साहित्य तथा इतिहास दोनों ही दृष्टि से उत्तम कार्य हैं। प्रस्तुत इकाई में रघुवंश के त्रयोदश सर्ग की कथावस्तु के अध्ययन द्वारा रघुवंश की काव्यगत विशिष्टताओं से परिचित हुआ जा सकेगा। रघुवंश की विशेषताओं के अध्ययन करने के पूर्व महाकवि कालिदास के परिचय, भाषाशैली

आदि का परिचय प्रदान करने के पश्चात् मुख्य विषय रघुवंश के त्रयोदश सर्ग का अध्ययन किया जायेगा। रघुवंश में नायक, कथाओं, काव्यशैली आदि का मनन करने पर महाकाव्य का संक्षिप्त परिचय प्राप्त होगा। रघुवंश की विशिष्टताओं से परिचित होने के पश्चात् काव्यों के अध्ययन में विशिष्ट काव्यरुचि का अनुभव होगा।

1.2 उद्देश्य-

प्रिय शिक्षार्थियों, प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि-

1. महाकवि कालिदास के जीवनवृत्त का संक्षिप्त परिचय द्वारा ऐतिहासिक तथा साहित्यिक तथ्यों का वर्णन कर सकें।
 2. कालिदास की भाषाशैली का विवरण दे सकें।
 3. काव्यतत्वों का अध्ययन करके कालिदास के काव्यसौंदर्य के अंतर्गत समाहित कर साहित्यिक दृष्टि से वर्णन कर सकें।
 4. रघुवंश महाकाव्य के प्रतिपाद्य विषय की विवेचना कर सकें।
 5. रघुवंश के साहित्यिक महत्व की चर्चा कर सकें।
-

1.3 महाकवि कालिदास का जीवनवृत्त-

भारतीय साहित्य के आकाश में महाकवि कालिदास एक ऐसे नक्षत्र के समान शोभित हैं, जिनकी आभा प्राचीनकाल से अद्यतन काल तक विद्वानों और साहित्य प्रेमियों को समान रूप से आकर्षण का विषय रही है। उनकी कृतियां न केवल अपनी साहित्यिक उत्कृष्टता के लिए अपितु भारतीय संस्कृति और दर्शन के अद्वितीय चित्रण के लिए भी जानी जाती हैं। कालिदास के जीवन और काल के विषय में यद्यपि निश्चित ऐतिहासिक प्रमाणों का अभाव द्रष्टव्य होता है, तथापि उनकी कृतियों और उनसे संबंध लोककथाओं के आधार पर उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय प्राप्त किया जा सकता है। महाकवि कालिदास की महान विद्वता तथा संस्कृत साहित्य में महनीय स्थान के आधार पर इनके जीवन के विषय में जानने की जिज्ञासा होना स्वभाविक है। कालिदास के विद्वता के गुण, कृतियों की जानकारी तथा उनमें व्याप्त भाषाशैली व प्रतिभा के विषय में ज्ञान

प्राप्ति की आंकाक्षा काव्यमर्मज्ञों के साथ ही इतिहासकारों व पाठकों में होना उनकी प्रसिद्धि का प्रमाण हैं। कालिदास के जीवनकाल का निर्धारण भारतीय साहित्यिक इतिहास में एक कठिन प्रश्न के रूप में विद्यमान है। संस्कृत साहित्य जितना प्राचीन हैं उस आधार पर इस प्रकार के प्रश्न का साक्ष्य अभाव में व्याप्त रहना कोई नवीन घटना नहीं है। संस्कृत साहित्य में विद्वानों के जन्म आदि के विषय में जानकारी के प्रमुख स्रोत होते हैं-

1. विद्वानों के पूर्ववर्ती अथवा पश्चात्वर्ती रचनाओं में वर्णन अथवा उनकी शैली में समानता व विषमता के आधार पर समकालीन होने या नहीं होने के आधार पर जीवनकाल, कृतियों का ज्ञान प्राप्त होता है।
2. ऐतिहासिक घटनाओं यथा राजा आदि के दरबार, प्रशस्ति, शिलालेखों में नाम उत्कीर्ण होने से संबंध राजा अथवा साक्ष्य से काल व अन्य विषयों की जानकारी उपलब्ध हो जाती है। यह व्यक्तिगत तथा साहित्यिक जानकारी प्राप्त करने में सबसे विश्वसनीय साक्ष्य माना जाता है।
3. विद्वानों तथा कवियों द्वारा स्वयं की रचना में जन्म आदि की जानकारी तथा कृति के रचनाकार के रूप में स्वयं की पुष्टि करने से कालक्रम तथा अन्य जानकारी स्पष्टतः प्राप्त हो जाती है।

उपरोक्त साक्ष्यों के आधार पर संस्कृत साहित्य के अन्य विद्वानों की भांति महाकवि कालिदास के विषय में भी परिचय प्राप्त किये जाने का प्रयास किया जाता रहा है।

1.3.1 महाकवि कालिदास की जन्म, शिक्षा का अध्ययन-

कालिदास के विषय में जानकारी का प्रथम प्रयास इतिहासकारों के कथन व साक्ष्यों के आधार पर निर्धारण किया गया है। प्राचीनकाल में इतिहास राजा व राजव्यवस्था से मुख्यतः संबंधित होते थे। इतिहास के आधार पर कालिदास के कालक्रम का निर्धारण राजा के काल आधारित घटनाओं से इनकी संबद्धता के अनुमान के आधार पर किया गया है। इतिहासकारों के एक पक्ष का मानना है कि वे प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व में शासन करने वाले राजा विक्रमादित्य के दरबार में शोभायमान थे। यह अधिकांशतः सभी के द्वारा माना जाता है। इतिहासकारों के दूसरे पक्ष का मत का अध्ययन किया जाये तो पाश्चात्य और कुछ भारतीय

विद्वानों ने उन्हें चौथी और पाँचवीं शताब्दी ईस्वी के गुप्त काल का कवि के रूप में स्वीकारा है। इस तथ्य का आधार शिलालेख के आधार पर परिचय प्राप्त करने को माना जाता है। चंद्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल के दौरान कालिदास की उपस्थिति की सीमा ऐहोल शिलालेख (634 ईस्वी) में भारवि के साथ उनके उल्लेख से निर्धारित की जाती है। मंदसौर शिलालेख (लगभग 473 ईस्वी) में उनकी शैली के आधार पर काल के निर्धारण का प्रयास किया गया है। कालिदास की रचनायें भारतीय विद्वानों के साथ ही पाश्चात्य विद्वानों के लिये भी आकर्षण व ज्ञान का केन्द्र रही हैं। कालिदास के विषय में विद्वानों के मतों के आधार पर पाश्चात्य व भारतीय दोनों ही विद्वानों के मतों की समीक्षा किया जाना आवश्यक है। पाश्चात्य विद्वाना प्रोफेसर मैक्स मूलर के अनुसार कालिदास का समय छठी शताब्दी ईस्वी स्वीकार किया जाता है, जबकि भारतीय विद्वानों के अनुसार उनका काल ईसा से 57 वर्ष पूर्व स्वीकार्य है। अधिकांश विद्वान इनकी भाषाशैली तथा काव्यात्मक विशेषताओं के आधार पर इन्हें गुप्त काल अर्थात् चौथी-पाँचवीं शताब्दी ईस्वी के कवि मानते हैं, जिसका कारण वह समय है जिसे भारतीय इतिहास में कला, साहित्य के विकास के लिए स्वर्ण युग के रूप में माना जाता है। विक्रमादित्य के दरबार के नवरत्न होने का तथ्य सर्वाधिक माना जाता है, विद्वान उन्हें प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के विक्रमादित्य के दरबार के नवरत्नों में से एक मानते हैं। इन विभिन्न मतों का आधार कालिदास के ग्रंथों में पाए जाने वाले भौगोलिक और सांस्कृतिक संदर्भ, उनका खगोलीय ज्ञान, इतिहास आधारित प्रमाण और अन्य समकालीन और परवर्ती साहित्यिक रचनाओं के साथ उनकी कृतियों की तुलना है। कालिदास के समय पर विद्वानों के ये विविध मत उनकी व्यापक लोकप्रियता को प्रमाणित करते हैं, जिसने उन्हें विभिन्न ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संदर्भों में महत्वपूर्ण स्थान दिलाया है।

कालिदास के जीवन में ऐतिहासिक तथ्यों के अतिरिक्त रचनाओं में सांस्कृतिक विशेषताओं, स्थानविशेष के वर्णन के आधार पर प्रारंभिक जीवन यथा जन्मस्थान, काल, कृतियों के विषय में जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया जाता रहा है। प्रारंभिक जीवन के विषय में निर्धारण का प्रथम पक्ष जन्मविषयक जानकारी से संबंधित होता है। जन्मस्थान के विषय में उज्जैन का उल्लेख अधिक दृढ़ता से किया जाता रहा है। उज्जैन के प्रति विशेष प्रेम का दर्शन मेघदूत में

नगरी की सांस्कृतिक व सामाजिक विशेषताओं के वर्णन से होता है। मानव जिस स्थान पर जन्म लेता है वह स्थान तथा उनके तथ्य उन्हें सदैव अविस्मरणीय होते हैं। मानव अपने जन्मस्थान तथा वहां व्यतीत किये अनुभवों को जीवनपर्यंत स्मृतिपटल पर अंकित रखता है। जब जीवन में उस नगरी का उच्चारण भी किसी के द्वारा किया जाता है, तब अपने मानसपटल पर अंकन किये गये उन स्वार्णम स्मृतियों के माध्यम से अपनी जन्मस्थली का विवरण प्रस्तुत करता हैं महाकवि कालिदास मेघदूत में उज्जैनी की सूक्ष्म तत्वों के साथ वहां की प्रकृति, भवनों, नारियों, संस्कृति का जो वर्णन मेघदूत में मेघ के माध्यम से करते हैं उससे उनके उज्जैन नगरी के प्रति लगाव का ज्ञान होता है। कालिदास ने उज्जैन के प्रति तथ्यों के सूक्ष्म अध्ययन से उनके जन्मस्थान के रूप में स्वीकार करना उचित माना जाता हैं। कालिदास के विषय में यह स्पष्ट माना जा सकता है कि उन्होंने जीवन की एक दीर्घ अवधि तक उज्जैन में निवास किया गया है। निवासस्थान होने के एक पक्ष को जन्म से ही माना जाता है। विद्वानों ने इनकी रचनाओं में वष्य स्थिति तथा काव्यतत्वों के चयन में जन्मस्थान की छवि मानकर विभिन्न स्थानों यथा उत्तराखंड के रुद्रप्रयाग जिले के कविल्ठा गाँव, कश्मीर, बंगाल और उड़ीसा का भी मूल निवासी माना है। बिहार में इनके जन्मस्थल माने जाने का कारण किंवदन्ती है, जिसके अनुसार उनका जन्म बिहार में हुआ तथा उन्हें माँ दुर्गा से वरदान की प्राप्ति हुई थी। जन्मस्थान के विषय में प्रमाणित रूप से तो नहीं किन्तु आंशिक रूप में अन्य नगरों की अपेक्षा उज्जैन को जन्मस्थान माना जाना अधिक उचित हैं। कालिदास के जन्मस्थान पर यह अनिश्चितता व्याप्त ही रही क्योंकि यह किंवदन्ती अथवा विद्वानों के अपने ज्ञान के आधार पर किये अवलोकन पर आधारित हैं। इस विषय में स्पष्टता होने के लिये साक्ष्यों अथवा प्रमाणों का होना अनिवार्य हैं। अतः जन्मस्थान पर प्राप्त मतों में से किसी को अंशतः सत्य मानकर स्वीकार अवश्य किया जाता हैं, परन्तु प्रमाणित दृष्टि से इसे पूर्णतः स्वीकार्य नहीं किया गया है। कालिदास की व्यक्तिगत जानकारी के विषय में एक पक्ष धर्मविषयक भी हैं। धार्मिक पक्ष की एक छवि उनकी कृतियों में भगवान शिव की स्तुति से परिलक्षित होती हैं। महाकवि कालिदास की शिवभक्ति का दर्शन मेघदूत में महाकाल मंदिर के वर्णन में समाहित श्रद्धा में होता है। महाकवि ने विक्रमोर्वशीयम् तथा मालविकाग्निमित्रम् में भी भगवान शिव

की अराधना कर शैव धर्म के पालन को प्रमाणित किया हैं। भगवान शिव के प्रति उनकी भक्ति का दर्शन रघुवंशम् के मंगलाचरण में जगत के माता- पिता के रूप में भगवान शिव तथा पार्वती के शिव चरणों की अराधना से होता है। इन्होंने भगवान शिव की उपासना कहीं संसार के पालनकर्ता के रूप में कहीं अपने आश्रयदाता के रूप में की हैं। भगवान शिव की उपासना का प्रमाण अभिज्ञानशाकुन्तलम् में नान्दी पाठ, मालविकाग्निमित्रम् तथा विक्रमोर्वशीयम् में उनकी स्तुति में प्रस्तुत श्लोक, रघुवंश में वर्णित मंगलाचरण तथा मेघदूत में उज्जैन नगरी में महाकाल मंदिर के सुंदर वर्णन से मिलता हैं।

किंवदंतियों का मानव जीवन में महत्वपूर्ण स्थान होता है, विद्वानों के विषय में भी किंवदंतियों का प्रचलन द्रष्टव्य होता हैं। इसी क्रम में कालिदास से संबंधित अनेक लोकप्रिय कथाएँ एवं किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। एक प्रसिद्ध किंवदंती जिसे प्रायः कालिदास के परिचय में अत्यंत मनोरंजक एवं शिक्षाप्रद माना जाता है वह राजकुमारी विद्योत्तमा से उनके विवाह और ज्ञान प्राप्ति के विषय में जानी जाती हैं। किंवदंती के अनुसार विद्योत्तमा नामक राजकुमारी की यह प्रतिज्ञा थी कि वह विद्वान जो उसे शास्त्रार्थ में पराजित कर दें वह उससे ही विवाह करेगी। इस प्रक्रिया में अनेक विद्वान पराजित भी हुये, इसके पश्चात् पराजित विद्वानों ने पराजय के कारण अपमानित होकर एक मूर्ख युवक की खोज में कालिदास की जानकारी हुई। उनके मूर्खता का आधार वह दृश्य था जब वे उसी डाल को काट रहे थे जिस पर वे बैठे हुये थे। विद्योत्तमा से बदला लेने के लिये योग्य मूर्ख जान विद्वानों ने उनका चयन कर लिया। विद्योत्तमा एक विदुषी कन्या थी अतः वह उनकी मूर्खता को न जान पाये इसलिये कालिदास को मौन रहने का निर्देश दिया। राजकुमारी के साथ शास्त्रार्थ के क्षण में विद्वानों ने कालिदास के संकेतों को अपने आधार पर वर्णित कर उनकी विद्वता का प्रमाण दिया। वास्तविकता से विमुख विद्योत्तमा को जब विवाह के बाद अज्ञानता का पता चला तब उन्होंने क्रोधित होकर कालिदास को घर से निकाल दिया। सहभागिनी द्वारा उनकी अज्ञानता के लिए उन्हें धिक्कारे जाने ने उन्हें सच्चा ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रेरणा दी। किंवदंती है कि पत्नी द्वारा अपमानित होने से उन्होंने मां काली की अराधना की जिससे उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई। आगे चलकर उन्होंने महाकवि की पदवी को प्राप्त किया। किंवदंती के अनुसार उनकी धर्म, जाति के निर्णय भी किये

जाते रहे हैं। एक किंवदन्ती के अनुसार वे जन्म से ब्राह्मण थे तथा उनका लालन-पालन ग्वाले के परिवार में हुआ था। कालिदास के प्रारंभिक जीवन से संबंध यह किंवदन्ती, जिससे एक मूर्ख व्यक्ति के महान विद्वान बनने की कथा का श्रवण किया जाता है, यह भारतीय साहित्य में एक लोकप्रिय और प्रेरणादायक कथा मानी जाती है, जो ज्ञान की शक्ति और परिस्थिति के कारण मानव जीवन में परिवर्तन की संभावना को परिलक्षित करती है। एक अन्य किंवदन्ती यह भी जानी जाती है, कि लंका की राजकुमारी के साथ उनके संबंधों तथा संभावित मृत्यु से संबंधित हैं। कहा जाता है कि लंका में जब कालिदास गये थे तब वहां राजा कुमारदास के शासनकाल हुआ करता था। वहीं उनकी मृत्यु का स्थान मानने का आधार उनकी हत्या करने की कथा से माना जाता है। राजा भोज तथा राजा विक्रमादित्य के दरबार में उनकी उपस्थिति के विषय में भी अनेक कथाएँ लोक में प्रचलित हैं। ये कथाएँ कालिदास के जीवन के विभिन्न पहलुओं तथा संसार में व्याप्त उनकी लोकप्रियता को दिखाती हैं।

स्व प्रगति परीक्षण प्रश्न -

1. कालिदास का जन्मस्थान.....है-
(क) बंगाल (ख) उज्जैन (ग) उड़ीसा (घ) कन्नौज
2. कालिदास की पत्नी का नाम.....है-
(क) विद्योतमा (ख) राजलक्ष्मी (ग) कनक (घ) मैत्रेय
3. कालिदास किनकी सभा में कवि थे-
(क) हर्ष (ख) भोज (ग) विक्रमादित्य (घ) उदयन

1.3.2 कृतियों का संक्षिप्त परिचय-

महाकवि कालिदास ने अपनी कृतियों के माध्यम से संस्कृत साहित्य को अमूल्य रत्न प्रदान किये हैं। महाकवि कालिदास ने अपने जीवनकाल में विपुल साहित्यिक रचनाएँ कीं, जिनमें विभिन्न विधा नाटक, महाकाव्य और खंडकाव्य का समन्वय है। उनकी सात कृतियों को सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किया जाता है। सभी विद्वान उनकी इन सात रचनाओं को स्वीकार्य किये जाने के विषय में एकमत हैं। कृतियों में यदि प्रसिद्ध कृति की चर्चा की जाये उनमें अभिज्ञान

शाकुन्तलम् प्रमुख है, जो उनकी विश्वप्रसिद्ध रचना है। इसकी प्रसिद्धि का प्रमाण अनेक भाषाओं में हुये उनके **अनुवाद** से मिलता है। इस नाटक में राजा दुष्यंत और ऋषि पुत्री शकुन्तला के प्रेम, विवाह, विरह और पुनर्मिलन की मार्मिक कहानी का वर्णन किया गया है, जिसमें प्रेम, कर्तव्य, स्मृति और पहचान आदि भावात्मक तथा मल्यों का सुंदर समन्वय मिलता है। नाटक विधा के अंतर्गत विक्रमोर्वशीयम् कालिदास का दूसरा नाटक है, जिसका कथा का आधार राजा पुरुरवा और अप्सरा उर्वशी के प्रेमकथा है। इस रचना में मानवीय और दिव्य लोक के मध्य प्रेम और विरह की घटनाओं तथा भावों को दर्शाया गया है। नाटक विधा में तीसरी रचना मालविकाग्निमित्रम् है, जो शुंग वंश के राजा अग्निमित्र तथा उनकी रानी की दासी मालविका के प्रेमकथा इसका मूल विषय है। मानवीय भावनाओं तथा सामाजिक चित्रण के अंतर्गत इस कथा में प्रेम, ईर्ष्या और सामाजिक बाधाओं का दर्शन होता है। विधा में महाकाव्य के अंतर्गत कालिदास के दो प्रमुख महाकाव्य हैं रघुवंशम् तथा कुमारसंभवम् यह दोनों का संबंध एक ओर से पौराणिक ग्रंथों से भी है। रघुवंश में राम के कुल रघुवंश तथा कुमारसंभव शिव तथा पार्वती पर आधारित है। यह दोनों ही पौराणिक भावों से समन्वित व्यक्तित्व है। महाकाव्यों में पौराणिकता की संबद्धता के साथ रघु के कुल के राजाओं की गाथा के साथ राम की वीरता का समन्वय तथा कुमारसंभवम् में शिव और पार्वती के प्रेम, विवाह और कार्तिकेय के जन्म की कथा का वर्णन किया गया है। खण्डकाव्य के अंतर्गत मेघदूत व ऋतुसंहार में सांस्कृतिक भौगोलिक परिदृश्य से संबद्ध रचना है। मेघदूतम् में वर्णित मुख्य विषय प्रेमकथा के अंतर्गत यक्ष अपनी प्रेमिका के विरह में व्याकुल है तब वह संदेशवाहक की भूमिका में मेघ का चयन कर उसके माध्यम से संदेश भेजता है। इनका मुख्य विषय प्रेम से आरंभ होता है तथा आगे चलकर विभिन्न प्रांतों की यात्रा से सांस्कृतिक, सामाजिक, पर्यावरणीय, भौगोलिक समानताओं तथा विषमताओं का सुंदर परिदृश्य का वर्णन समाहित है। ऋतुसंहार, जिसका मुख्य विषय ही ऋतुवर्णन होने से प्राकृतिक तथा सांस्कृतिक वर्णन का इनमें समन्वय है। इस खण्डकाव्य में भारत की छह ऋतुओं का सुंदर वर्णन किया गया है। इनकी कृतियों में प्रेम, कर्तव्य, विरह और प्रकृति का सौंदर्य जैसे विषय प्रमुखता से चित्रित होते हैं। अतः कृतित्व के विषय में किसी **विशेष** शंका की

उपस्थिति का दर्शन नहीं होता है, इनकी प्रमुख सात कृतियों को सभी के द्वारा स्वीकारा जाता हैं।

कालिदास के जीवन और कार्यों पर विभिन्न विद्वानों और इतिहासकारों ने व्यापक शोध कर उनके आधार पर प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। प्रमाणों के पूर्णतः उचित होने पर कुछ विषयों में इन्हें स्वीकार भी किया गया है। उनके काल निर्धारण को लेकर विभिन्न मत प्रचलित हैं, जो प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व से लेकर सातवीं शताब्दी ईस्वी तक विस्तृत हैं। जन्मस्थान को लेकर भी विद्वानों में भिन्न-भिन्न मत है, जिसमें कश्मीर, उज्जैन, बंगाल और उत्तराखंड जैसे स्थानों का उल्लेख मिलता है। उनकी कृतियों के साहित्यिक और ऐतिहासिक महत्व पर भी व्यापक शोध किया गया है, जिसमें उनकी भाषा शैली, अलंकारों का प्रयोग, रसों का चित्रण और प्रकृति का वर्णन जैसे पहलुओं का विश्लेषण शामिल है। इन शोधों से कालिदास की रचनाओं का भारतीय और विश्व साहित्य पर गहरा प्रभाव स्पष्ट होता है।

महाकवि कालिदास भारतीय साहित्य के एक ऐसे अमर हस्ताक्षर हैं, जिनका जीवन और कार्य आज भी विद्वानों और पाठकों के लिए प्रेरणास्रोत हैं। यद्यपि उनके जीवन के कई पक्ष आज भी रहस्य के आवरण में समन्वित ही माने जाते हैं, तथापि उनकी रचनाएँ अपनी साहित्यिक उत्कृष्टता, भावनात्मक गहराई और सांस्कृतिक महत्व के कारण कालजयी हैं। कालिदास न केवल संस्कृत साहित्य के महानतम कवि और नाटककार हैं, बल्कि वे भारतीय संस्कृति और दर्शन के भी अद्वितीय संरक्षक हैं।

1.4 महाकवि कालिदास की भाषा शैली एवं काव्य सौंदर्य-

महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के आकाश में एक देदीप्यमान नक्षत्र के सदृश अलंकृत हैं, उनकी अनुपम काव्य प्रतिभा के कारण उन्हें संस्कृत जगत में अद्वितीय स्थान प्राप्त है। भारतीय साहित्य के स्वर्ण युग में कालिदास ने अपनी अनुपम साहित्यिक कृतियों में अपनी काव्यप्रतिभा के माध्यम से न केवल भारतीय संस्कृति को समृद्ध किया, बल्कि वैश्विक साहित्यिक परिदृश्य पर भी अपनी प्रतिभा को परिलक्षित किया है। संस्कृत भाषा में रचित उनकी कृतियाँ अपनी गहनता, सौंदर्य और काव्य विशेषताओं के कारण काव्यज्ञों तथा विद्वानों

द्वारा अनुपम रचना के रूप में स्वीकार की जाती हैं। कालिदास की रचनायें विभिन्न काव्यरूपों में रचित की गयी हैं। महाकवि की सभी कृतियाँ काव्य के विभिन्न रूपों यथा महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटक आदि में रचित होने से सभी रूपों के नियमों व काव्यसौंदर्य के आधार पर काव्यप्रतिभा का परिचय प्रस्तुत करती हैं। कालिदास की रचनाओं में नाटक में 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्', 'मालविकाग्निमित्रम्' और 'विक्रमोर्वशीयम्', खण्डकाव्य में 'मेघदूतम्', 'ऋतुसंहार', महाकाव्य में 'कुमारसम्भवम्', 'रघुवंशम्', आदि प्रमुख कृतियाँ उनकी रचनात्मक प्रतिभा और भाषा पर अद्वितीय अधिकार का प्रमाण हैं। उनकी विशिष्ट भाषा शैली और अंतर्निहित काव्य सौंदर्य का विश्लेषण के लिये उनकी कृतियाँ शैली, गुण, अलंकार आदि में अपनी विविधता के आधार पर उनकी उत्कृष्टता को प्रमाणित करती हैं। महाकवि कालिदास अपनी कृतियों में विभिन्न व्यक्तित्व को उनके स्वभाव, संस्कृति, समाज आदि के आधार पर चित्रित करते हैं। रघुवंश सांस्कृतिक व सामाजिक महत्व को तत्कालीन घटनाओं, आदि के माध्यम से अति सुंदरता से प्रस्तुत करते हैं। रघुवंश में राजजीवन का वर्णन केवल उनकी राजव्यवस्था के आधार पर न होकर उनके तप, शौर्य, नारी जीवन की सहजता, विनम्रता, संस्कारों से परिपूर्ण होती थी। विभिन्न अलंकारों, रस आदि का वर्णन रघुवंश के उदाहरणों के आधार पर किया जाये तो यह कालिदास की भाषाशैली तथा काव्य निपुणता का सुंदर दृश्य प्रस्तुत करता है। महाकवि कालिदास प्रकृति चित्रण में अपनी विद्वता तथा काव्यमर्मज्ञता का परिचय काव्यज्ञों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। त्रयोदश सर्ग में प्रकृति वर्णन का जो सुंदर चित्रण महाकवि कालिदास द्वारा किया गया है वह रघुवंश की त्रयोदश सर्ग का शोभाजनक तत्त्व माना जाता है। महाकवि कालिदास अपने श्लोकों में भावों के आधार पर रस का प्रयोग करने, दृश्य के अनुरूप अलंकारों के निरूपण, व्यंजना आदि शब्दविन्यास, गुणों, रीति आदि की विविधता से भाषाशैली व काव्यसौंदर्य को प्रज्ज्वलित करते हैं।

कालिदास की प्रमुख रचनाओं में भाषा शैली का विश्लेषण कालिदास की प्रत्येक रचना में उनकी भाषा शैली की विशिष्टता और काव्य सौंदर्य का अद्वितीय प्रदर्शन द्रष्टव्य होता है। कालिदास की भाषाशैली का ज्ञान कृतियों की शैली, रस, विधा, अलंकार आदि की विविधता के कारण सभी कृतियों की विशिष्टताओं का

संक्षिप्त अध्ययन किया जाना आवश्यक है। कालिदास की रचनाओं का अध्ययन नाटक विधा में रचित उनकी अनुपम कृति 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' से किया जाना उत्तम मार्ग है। राजा दुष्यंत तथा शकुन्तला पर आधारित यह कृति जिसे न केवल संस्कृत साहित्य अपितु विश्व साहित्य के उत्कृष्ट नाटकों में अग्रगण्य माना जाता है, यह परिष्कृत और विकसित काव्य शैली के लिए विख्यात है। इस नाटक में सुकुमार शब्दों के विन्यास, छंदों के मधुर आलोकित स्वर और अलंकारों की मनमोहक छवि पाठकों को अभिभूत कर देती है। भाषाप्रयोग के विषय में इस नाटक में संस्कृत के साथ-साथ प्राकृत भाषा का भी प्रयोग किया गया है। यहां प्राकृत भाषा के प्रयोग का दर्शन सामान्य जन द्वारा इस भाषा के व्यवहार में प्रयुक्त किये जाने से होता है। इसकी भाषा सरल, सरस और प्रसाद गुण से युक्त है, जो भावों को सहजता से व्यक्त करने में सक्षम है। विभिन्न प्रसंगों में ध्वनि का अद्भुत प्रयोग इस नाटक को संस्कृत के अन्य नाटकों से विशिष्ट बनाता है। 'मेघदूतम्' एक खण्डकाव्य है, जिसे जनसामान्य में लघु काव्य की संज्ञा से उक्त किया जाता है। छंद विशिष्टता की दृष्टि से यह रचना मंदाक्रांता छंद में निबद्ध है। इसकी शैली परिष्कृत माधुर्य में समन्वित है तथा रीति प्रयोग के विषय में कालिदास का वैदर्भी रीति के प्रति विशेष अनुराग तथा प्रयोग इस रचना में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इसकी भाषा ललित, स्वाभाविक और अत्यंत सरल है, जो अपने अर्थ का सहज बोध कराने में समर्थ है। इस रचना की विशेषता अलंकार की प्रधानता है। इसकी भाषा माधुर्य और प्रसाद गुणों से समन्वित है। 'कुमारसम्भवम्' की भाषा में भाव और अर्थ की पुष्टि, प्रौढ़ता और आलंकारिक चमत्कार का दर्शन होता है। इसकी शैली में दुरुहता के साथ सरलता तथा सरसता जैसे विरोधी गुणों का अद्भुत समन्वय द्रष्टव्य होता है। सूर्यवंशी राजाओं की वंशावली पर आधारित महाकाव्य 'रघुवंशम्' की काव्य शैली अत्यंत परिमार्जित और विकसित है। इसमें अनुप्रास से युक्त कोमल पदों का समन्वय है। नैसर्गिक वर्णन की उत्कृष्टता के कारण इसे कालिदास के ग्रंथों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इस काव्य में लोक-शिक्षा के लिए उपयोगी अनेक बातों का समावेश किया गया है। अज- इंदुमती स्वयंवर में वर के रूप में अज का चयन करने पर भी वरमाला स्वयं अज के गले में न डालकर अन्य से डालकर प्रतीकात्मक स्वीकृति द्वारा तत्कालीन समाज व संस्कृति में नारी की वर चयन की स्वतंत्रता के साथ ही

उसकी लज्जाभाव में व्याप्त सहजता का सुंदर चित्रण किया गया है। इन वर्णनों में रस, अलंकार, गुण, वाक्यप्रयोग आदि का जो सुंदर चयन किया गया है वह कालिदास की काव्यप्रतिभा को प्रज्ज्वलित करती है। 'मालविकाग्निमित्रम्' की रचना नाटक के रूप में अवश्य की गयी है, परन्तु अभिज्ञानशाकुन्तलम् से तुलना करने पर इसकी शैली अपेक्षाकृत अपरिपक्व मानी जाती है। इसकी भाषा अलंकारयुक्त होते हुए भी सरल और मधुर है, इसमें शैली प्रयोग के विषय में व्यंजना का प्रयोग किया गया है। 'विक्रमोर्वशीयम्' एक नाटक है, जिसकी भाव, भाषा और शैली की मौलिकता के भाव से समन्वित है।

महाकवि कालिदास ने रचना की विधाओं की भिन्नता के साथ ही शैली की भी विविध विशेषताये हैं। महाकवि कालिदास की भाषा शैली की रचना के क्रम में विशेषताओं के विवेचन में अभिज्ञानशाकुन्तलम् में प्रयुक्त भाषा यथा संस्कृत, प्राकृतसुकुमार शब्द-विन्यास, माधुर्य, अलंकारों की सुंदर छवि, सरल और प्रसादगुणोपेत भाषा, ध्वनि प्राधान्यता, मेघदूतम् में संस्कृत की परिष्कृत शैली, वैदर्भी रीति, ललित और अत्यंत सरल, सुबोध भाषा, अलङ्कारप्रधान भाषा, मार्मिक तथा सजीव प्रकृति चित्रण की छटा, कुमारसम्भवम् संस्कृत पुष्टि, प्रौढ़ता, आलंकारिक चमत्कार, विरोधी गुणों का समन्वय, वैदर्भी रीति और प्रसादगुण, सरलता, सरसता, सुकुमारता, भावानुकूल भाषा, रस के अनुकूल भाषा, रघुवंशम् में संस्कृत की अत्यन्त परिमार्जित एवं विकसित काव्य शैली, अनुप्रास युक्त कोमल पद विन्यास, नैसर्गिक वर्णन की प्रधानता, मालविकाग्निमित्रम् संस्कृत, प्राकृत अलंकारयुक्त किन्तु सरल और मधुर भाषा, व्यंजना शैली, विक्रमोर्वशीयम् संस्कृत मौलिकतापूर्ण भाव, भाषा और शैली, शृंगार रस की प्रधानता, वेदान्त दर्शन का निरूपण (नान्दी श्लोक में) कालिदास की भाषा प्रयोग में अद्भुत विविधता दिखाई देती है। कालिदास की प्रायः सभी रचनाओं में स्पष्टता और संगीतमयता विद्यमान है, जबकि नाटकों में कुछ पात्रों द्वारा प्राकृत का प्रयोग तत्कालीन भाषाई परिदृश्य को दर्शाता है। उनके महाकाव्य और गीति काव्य अक्सर अधिक अलंकृत लेकिन फिर भी प्रवाहमयी शैली का प्रदर्शन करते हैं, जो कल्पना और भावनात्मक विचारों से ओतप्रोत है। संस्कृत भाषा में शब्दावली, व्याकरण, वाक्य संरचना और अलंकार चयन के आधार पर यह उक्त किया जा सकता है कि कालिदास का संस्कृत भाषा पर पूर्ण अधिकार था। उनका शब्दकोश अगाध था

,और वे प्रत्येक संदर्भ कथाओं के लिए उचित और सार्थक शब्दों का प्रयोग करने में प्रवीण थे। उनकी भाषा सरल, सरस, परिष्कृत, प्राञ्जल, मनोहारी और प्रसाद गुण से युक्त है। वे अनुपम शब्द शिल्पी थे , जिनकी भाषा मधुर नाद सुन्दरी से युक्त है । **व्याकरण** की दृष्टि से उन्होंने प्रायः पाणिनि के **व्याकरण** का अनुसरण किया है , यद्यपि कुछ विद्वान उनकी रचनाओं में मिलने वाले अपाणिनीय प्रयोगों के आधार पर उनके काल निर्धारण का प्रयास करते हैं । उनकी वाक्य संरचना में छोटे-छोटे सरल वाक्यों का प्रयोग गूढ़ और सूक्ष्म भावों को व्यक्त करने के लिए किया जाता है । समासिक पदों के अधिक प्रयोग से रचना की जटिलता का अनुभव होने से वे समासों का अल्प प्रयोग करते हैं, जिससे उनकी भाषा में प्रवाह और प्राञ्जलता विद्यमान होती थी। पदों का समुचित स्थान पर प्रयुक्त किया जाना उनकी वाक्य रचना को और अधिक सौंदर्यवृद्धि करता है । उनकी समृद्ध शब्दावली, **व्याकरण** की सुदृढ़ता और सुरुचिपूर्ण वाक्य संरचना उनकी संस्कृत भाषा पर अद्वितीय अधिकार को स्पष्ट रूप से दर्शाती है।

काव्यों में रस के द्वारा मानवीय भावों का अभिव्यक्तिकरण किये जाने में महाकवि कालिदास सिद्धहस्त थे। कालिदास के काव्यों में शृंगार रस की प्रधानता है , जिसमें संयोग और वियोग दोनों पक्षों का सुंदर परिपाक मिलता है । उनके शृंगार रस के वर्णन में पाठक की आत्मा को स्पर्श करने की क्षमता है । उनके काव्यों में विभिन्न रसों का सम्यक सामंजस्य है, जो उन्हें रससिद्ध कवीश्वर बनाता है । शृंगार रस के अतिरिक्त, उन्होंने करुण, शान्त, वीर और हास्य आदि अन्य रसों का भी समुचित समावेश किया है । रघुवंशम् में करुण रस का विधान सीताहरण के प्रसंग में किया गया है। जब सीता हरण होता है और राम सीता के विषय में कुछ नहीं जान पाते । वियोग का वह क्षण जब उनकी सहभागिनी उनसे दूर थी, उस क्षण में वन्यजीवों द्वारा उनकी व्यथा को जानकर की सहायता तथा राम की व्याकुलता का मार्मिक चित्रण करुण रस के माध्यम से किया गया है। शृंगार के वर्णन में कालिदास प्रवीण ही थे, जिनका उदाहरण सीता तथा राम के विषय में ही चकवा चकवी के आलिंगन के माध्यम से उनके परस्पर प्रेम को शृंगार रस की धारा में प्रवाहित किया गया है। अतः सीता व राम के ही जीवन के दोनों पक्षों संयोग व वियोग को शृंगार व करुण के माध्यम से चित्रित करने की जो कला कालिदास की भाषाशैली में द्रष्टव्य होती है, वह अद्वितीय है। इसके

अतिरिक्त उनके वीर रस के उदाहरण 'रघुवंश' और 'कुमारसम्भव' में देखे जा सकते हैं। कालिदास के शृंगार रस प्रधान साहित्य में भी आदर्शवादी परंपरा और नैतिक मूल्यों का समुचित ध्यान रखा गया है। कालिदास केवल प्रेम के कवि नहीं हैं उन्होंने अपनी रचनाओं में विभिन्न भावनाओं की एक उत्कृष्ट चित्रकला बुनी है। वे कुशलता से वीरता, करुणा और शांति की भावनाओं को भी जागृत करते हैं, जो पाठक के लिए एक समृद्ध और बहुआयामी भावनात्मक अनुभव बनाते हैं। जिनके कारण रचनाओं में विभिन्न भावों के वर्णन में रस प्रयोग में भी विविधता द्रष्टव्य होती है। उनकी भाषाशैली में प्रेम, स्नेह आदि भावों को नैतिक विचारों के साथ संतुलित करने की क्षमता **विशेष** रूप से प्रकाशित मानी जाती है। अलंकार का शाब्दिक अर्थ है- अलंकृत करना। संस्कृत साहित्य में अलंकार अपने इस शाब्दिक अर्थ को पूर्णतः काव्यसौंदर्य में वृद्धि कर सिद्ध करता है। अलंकार में शब्द व अर्थ दोनों के आधार पर इनके भेद विद्यमान हैं। महाकवि कालिदास साहित्य में अलंकारों के महत्व से परिचित होने के कारण भाषाशैली में इनका सुंदर समन्वय करते हैं। अलंकारों के प्रयोग में कालिदास ने शब्दालंकार और अर्थालंकार का समन्वय कृतियों में अवश्य किया है, कृतियों की साहित्यिक **विशेषताओं** का अध्ययन करने पर इनका अर्थालंकारों पर कार्य अधिक प्रतीत होता है। अलंकारप्रयोग की विशिष्टता के आधार पर उपमा अलंकार के प्रयोग में सिद्धहस्त थे, उनकी इसी कला के आधार पर 'उपमा कालिदासस्य' यह उक्ति उनकी उपमा के प्रयोग में श्रेष्ठता को प्रतिपादित करती है। वे अलंकारों के प्रयोग में उनके चयन का **विशेष** ध्यान रखते थे। कालिदास की भाषाशैली में प्रयुक्त प्रमुख अलंकार हैं अनुप्रास, यमक, श्लेष, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति, दृष्टान्त और अर्थान्तरन्यास आदि का सुंदर प्रयोग कर वे अपनी रचनाओं को अलंकृत करते हैं। अलंकारों का रणनीतिक उपयोग, **विशेष** रूप से उपमाओं का, उनकी कविता को उदात्त बनाता है, जिससे वह सुंदर और गहराई से अभिव्यंजक दोनों बनती है। उनकी भाषा में सरलता और गहराई के बीच संतुलन एक महत्वपूर्ण **विशेषता** है। कालिदास के अलंकार विधान में उपमा और रूपक द्वारा अपनी इस विशिष्टता के लिए विख्यात हैं। उनकी उपमाएँ अद्भुत, अलौकिक, प्राकृतिक, सजीव, आलंकारिक, स्वर्ग के समान आनंद से युक्त और हृदय के भावों की प्रधानता का दर्शन कराने वाली होती हैं। उनकी उपमाओं का स्वरूप मनोरम पक्ष के साथ ही

असाधारण स्वरूप को भी धारण करती है , जिनमें प्राकृतिक पक्ष के मनोरम दृश्य वर्णन के साथ दार्शनिक भावों की उपमाएँ मिलती हैं । 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' से उनकी उपमाओं के सुंदर उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं। उनकी इन उपमाओं के प्रभाव से पाश्चात्य कवि भी अभिभूत होते रहे हैं । रूपक के माध्यम से प्रकृति, जीव आदि का मानवीकरण करने में उनकी अद्भुत कल्पनाशक्ति का परिचय मिलता है । कालिदास के उपमा और रूपक मात्र अलंकरण नहीं हैं वे उनकी काव्य अभिव्यक्ति के अभिन्न अंग हैं, जो उनके वर्णनों में अर्थ और सौंदर्य में वृद्धि कराने में सक्षम होते हैं। प्राकृतिक जगत एवं मानवीय भावनाओं के बीच समानताएं दर्शाने में इनकी भाषाशैली तथा काव्यसौंदर्य की कला अत्यंत परिपक्व भूमिका का निर्वहन करती है।

कालिदास की भाषाशैली की अद्भुत विशेषता उनका प्रकृति वर्णन में सिद्धहस्त होना है। प्रकृति के प्रति विशेष आकर्षण कालिदास की रचना ऋतुसंहार में ऋतु वर्णन की अनुपम कला से प्रमाणित होता है । वे प्रकृति के वर्णन में अत्यंत प्रवीण माने जाते हैं, जो उनकी रचनाओं में प्रकृति के विभिन्न पक्षों वृक्ष, वनस्पति, पशु-पक्षी, पर्वत, नदी और तालाब आदि के सुंदर चित्रण से प्रतिपादित होता है । वे प्रत्येक वस्तु का सजीवता से वर्णन प्रस्तुत करते हैं । प्रकृति के साथ उनका घनिष्ठ संबंध है, जिसके अभाव में उनकी रचनाएँ अपूर्ण मानी जाती हैं । वे प्रकृति का मानवीकरण के माध्यम से उसे मानवीय संवेदनाओं से युक्त चित्रित करते हैं । 'मेघदूतम्' में उनके प्रकृति चित्रण के सुंदर उदाहरण प्राप्त होते हैं। वे कल्पना के माध्यम से प्राकृतिक सौंदर्य और मानवीय भावनाओं की अनुभूति को समरस बनाने में सिद्धहस्त हैं । उनकी प्रकृति सामान्य जग की भांति शांत और भावनाहीन नहीं है, वे उसके सचेतन और भावनाशील स्वरूप का सुंदर प्रतिपादन करते हैं। कालिदास का प्रकृति का चित्रण मात्र दृश्यों का वर्णन नहीं है। वे प्रकृति को मानवीय भावनाओं और चेतना से भर देते हैं, जिससे एक जीवंत और परस्पर जुड़ी हुई दुनिया बनती है। ऋतुओं और प्राकृतिक तत्वों के उनके भावपूर्ण वर्णन प्राकृतिक जगत के प्रति उनकी भिन्न दृष्टि को प्रस्तुत करते हैं। कालिदास पात्रों के चरित्र चित्रण में अत्यंत निपुण थे । उनके पात्र जीवंत और मानवीय होते हैं। दुष्यन्त सदृश महान चरित्रों में भी मानवीय दुर्बलताएँ परिलक्षित होती हैं । उनके चरित्र चित्रण आदर्शों के प्रति उन्मुख होते हुए भी

सजीव एवं स्वाभाविक हैं। उनके पात्रों में नैतिक मूल्यों का स्वरूप स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। नैतिकता का उदाहरण रघुवंश में राजा दिलीप, रघु, अज, राम आदि के चरित्रों से प्रस्तुत किया गया है। उनके पात्रों के प्रकृति के साथ अंतःक्रिया में वात्सल्य और प्रेम का अनुपम चित्रण मिलता है। कालिदास के पात्र मात्र आदर्श नहीं हैं वे गुण और दोष दोनों से समन्वित हैं। रघुवंश में आदर्श उदार चरित्रों के साथ अग्निवर्ण के पात्र द्वारा विलासी राजा का भी उदाहरण दिया गया है। कालिदास की रचनाओं में सद्गुणों के साथ दुर्गुण, विलास आदि के माध्यम से मानवीय जीवन की वास्तविकता का परिचय मिलता है। महाकवि कालिदास ने अपनी भाषाशैली तथा काव्यप्रतिभा के माध्यम से मानव जीवन के विभिन्न पक्षों का सुंदर चित्रण कर काव्यमर्मजों के हृदय को सदैव प्रफुल्लित किया है।

कृतियों के अध्ययन तथा भाषाशैली के विवेचन से यह स्पष्टतः प्रतिपादित होता है कि कालिदास को भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त है। परवर्ती कवियों ने उनके काव्यप्रतिभा तथा गुणों की प्रशंसा की है। उनकी काव्य प्रतिभा को संस्कृत साहित्य में उनके अद्वितीय स्थान का कारण माना जाता है। उनकी शैली में सहज और स्वच्छन्द प्रवाह का दर्शन होता है। उनकी इस कला को प्रशंसनीय माना जाता है कि वे शब्दों में बहुत सहज व संपूर्ण अभिव्यक्ति कर देते हैं। शब्दों के चयन तथा भाषा के सुंदर प्रयोग पर उनका कार्य लक्षित होता है। उनके वर्णन में असाधारण कला की प्रशंसा की जाती है। उपमा के प्रयोग में उनकी अद्वितीय निपुणता को माना गया है। उनकी भाषा सरल, सरस, प्रांजल तथा मनोरम है। उनकी रचनाओं में पांडित्य प्रदर्शन का अभाव पाया जाता है। कालिदास को संस्कृत साहित्य का सर्वोच्च नक्षत्र माना जाता है। प्रकृति वर्णन में उनकी अपूर्व क्षमता का उदाहरण उनके वसन्त-वर्णन में किये गये मानवीकरण से माना जात है। पाठकों तथा विद्वानों का यह मानना है कि उनकी काव्य कला के माध्यम से संस्कृत काव्य के अद्भुत स्वरूप का चरम विकास को जाना है। सदियों से साहित्यिक पृष्ठभूमि ने कालिदास की भाषागत विशेषताओं, काव्य प्रतिभा और कलात्मक नवाचार की अनवरत प्रशंसा की जाती रही है। संक्षिप्त भाषा के साथ ज्वलंत कल्पना को जागृत करने की उनकी क्षमता, अलंकारों का सुदृढ़ प्रयोग और उनके कार्यों की भावनात्मक गहनता ने उन्हें संस्कृत साहित्य में एक अद्वितीय स्थान में स्थापित किया है। महाकवि कालिदास की भाषा शैली

और काव्य सौंदर्य संस्कृत साहित्य की अमूल्य धरोहर के रूप में स्वीकार की जाती हैं। उनकी भाषा अपनी सरलता, सरसता, परिष्कार और भावों को व्यक्त करने की अद्भुत क्षमता के लिए विख्यात है। उन्होंने संस्कृत व्याकरण और शब्दावली पर पूर्ण अधिकार रखते हुए अपनी रचनाओं को अद्वितीय सौंदर्य प्रदान किया। उनकी उपमाएँ और रूपक अलंकारों के प्रयोग की कला उनकी काव्य प्रतिभा के उत्कृष्ट उदाहरण हैं, जो उनके वर्णनों को जीवंत और प्रसिद्धि प्रदान करते हैं। प्रकृति चित्रण में उनकी कला न केवल मनोरम है, बल्कि मानवीय भावनाओं से भी ओतप्रोत है। साहित्यिक आलोचकों ने भी उनकी भाषा शैली, काव्य सौंदर्य और साहित्यिक योगदान की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। कालिदास वास्तव में संस्कृत साहित्य के महानतम कवियों में से एक हैं, जिनकी भाषा और काव्य कला आज भी पाठकों को प्रेरित और प्रोत्साहित करती है।

1.5 रघुवंश महाकाव्य त्रयोदश सर्ग की कथावस्तु-

कालिदास की महान रचना रघुवंश में भारतीय संस्कृति तथा समाज का गौरवशाली वर्णन है। रघुवंश में विभिन्न सर्गों में रघुवंशीय राजाओं का वर्णन वंशावली के आधार पर किया गया है। राजाओं के जीवनवर्णन तथा कर्म के निरूपण को सर्गों में प्रस्तुत किया गया है। त्रयोदश सर्ग में राम के वनवास पश्चात् सीता व लक्ष्मण के साथ आयोध्या आगमन का काव्यबद्ध वर्णन किया गया है। यह प्रसंग रामकथा का अत्यंत भावनात्मक तथा सांस्कृतिक रूप का समृद्ध चरण है, जिसमें केवल राजा की वापसी ही नहीं अपितु धर्मराज्य की पुर्नस्थापना, भ्राता से मिलन का स्नेहमयी दर्शन, आदर्श जीवन मूल्यों का ज्ञान तथा सांस्कृतिक पुर्नजागरण की भावना भी निहित हैं।

इस सर्ग में राम, सीता आदि ने राजभवन का सुख आदि को त्याग कर वनवास का जीवन व्यतीत किया था। वनवास एक कठिन प्रक्रिया था एक राजा जिनका भविष्य राजपरिवार में सुख-सुविधा से परिपूर्ण था, उन्होंने माता की इच्छापूर्ति के लिये वनवास का मार्ग स्वीकार किया था। श्रीराम के आदर्शों का दर्शन रामायण से ही आरंभ हो जाता है। रघुवंश में इस कथा को केवल श्रीराम तक सीमित न रखकर रघुवंशी राजाओं के विविध स्वरूप और गुण आदि को समाहित कर इस आदर्श वंश की गरिमा को पल्लवित किया है। त्रयोदश सर्ग में

पुनः आयोध्यागमन पर राम के पास स्मृतियों की एक विस्तृत यात्रा हैं। राजभवन से निकलकर वनवास गमन पर उन्हें हृदय से माता-पिता को दिये वचन को पूर्ण किये जाने की तृप्ति थी। राम अपने इन्हीं गुणों के कारण मर्यादापुरुषोत्तम की उपाधि से विभूषित किये गये हैं।

त्रयोदश सर्ग का आरंभ पुष्पक विमान द्वारा राम तथा सीता के आयोध्या गमन से होता है। इस यात्रा का गंतव्य स्थल वनवास की स्मृतियों से सिंचित है। जो भौगोलिक, सांस्कृतिक, मानवीय भावनाओं का प्रकृति के साथ सुंदर समन्वय प्रस्तुत होता है। यह स्मृति केवल उस काल को स्मरण करने तक सीमित करने वाला न होकर राम के वनवास तथा सीताहरण कालीन संघर्षों का पुनर्मंथन है। यहां स्मृति के माध्यम से राम अपने भूतकाल के उस संसार में विचरण करते हैं, जहां वह करुण तथा भावुकता के भावों से परिपूर्ण थे। राम आज वर्तमान में सहभागिनी सीता के साथ के सौभाग्य को अपने विरह की स्मृतियों के साथ समन्वित कर अनुभव करते हैं। राम सीता के न होने पर जिन परिस्थितियों, भावों से परिपूर्ण थे, उनका वर्णन सीता के सन्मुख कर वे तत्कालीन स्थिति में साक्षी बनाते हैं। यह यात्रा जो राम के जीवन के कर्तव्यों, मर्यादा, भावों को पाठकों के लिये अनुकरणीय रूप में महाकवि कालिदास अपनी अपूर्व भू

त्रयोदश सर्ग में राम, सीता, निषादराज, वनचर जीवों के भावों तथा मानसिक दशाओं का जो सुंदर चित्रण सामान्यजन के लिये उदाहरण रूप में चित्रित किया गया है, वह कलात्मक तथा भाषात्मक दोनों ही रूपों में प्रस्तुत किया गया है। सीता के रूप को इस सर्ग में तपस्वी रूप के साथ ही धर्मपत्नी की भूमिका के रूप में पूर्णता को प्राप्त करती हैं। यह रूप इस सर्ग का आकर्षण का विषय है कि कालिदास ने यहां सीता को केवल सहभागिनी के रूप में चित्रित न कर उनके कर्तव्य के निर्वहन का भी स्वरूप वर्णित किया हैं। सीता के मन में विजय भाव होने की अपेक्षा राम के साथ आयोध्या पुनर्गमन कर वहां अपने जीवन के नवीन अध्याय की रचना करने का ध्येय हैं।

राम तथा सीता के साथ ही त्रयोदश सर्ग में भरत का पात्र भी अनुकरणीय हैं। राम के लौटने पर भरत के भावों का सुंदर चित्रण किया गया हैं। भरत के चरित्र का वर्णन पूर्व में उनके द्वारा धारण तपस्वी रूप में उनकी छवि, चरणपादुका को राम की छवि मानकर प्रतीक्षा करना इन भावों के माध्यम से कालिदास ने

आदर्श भ्राता, तपस्वी व्यक्तित्व का समन्वय भरत के जीवन में उद्धृत किया है। यह चित्रण रामकालीन समाज की विशेषताओं यथा नैतिक शासन, भ्रातृत्व भावना, आदर्श चरित्र की भावना को सशक्त करता है। भरत का चरित्र अपनी राजा बनने के गौरव की अपेक्षा सामाजिक धर्म तथा भ्रातृभाव को सर्वोपरि मानने वाला है।

राम के आयोध्या आगमन पर राज्याभिषेक की प्रक्रिया का शुभारंभ किये जाने का संदेश मिलता है। वह आयोध्या नगरी जिसने चौदह वर्ष तक अपने राजा की प्रतीक्षा की उसकी सीमा का वर्णन सरयू नदी के परिचय के साथ इस सर्ग में किया गया है। आयोध्या से पूर्व लंका से वन का जो मार्ग है उसका भी सुंदर चित्रण किया गया है। राम के माध्यम से भौगोलिक वातावरण को संवाद रूप में परिणित कर लंका से आयोध्या तक एक निश्चित भौगोलिक मार्ग का अनुसरण किया गया है। वनवास काल चौदह वर्ष के इस अंतराल में राम ने सीता व लक्ष्मण के साथ व्यतीत किया था। इन सभी स्मृतियों के साथ सीता हरण संबंधित क्षणों के स्मरण को संबद्ध कर कालिदास ने संवाद की शोभा में वृद्धि की है। स्मृतियों को रस, अलंकार आदि से समन्वित कर इस सर्ग की कथावस्तु को प्रस्तुत करना कालिदास की काव्यशैली व विद्वता को प्रमाणित करती है।

स्व प्रगति परीक्षण प्रश्न -

1. रघुवंश में कितने सर्ग हैं-
(क) 19 (ख) 21 (ग) 17 (घ) 16
2. कालिदास रचित कृतियों की संख्या है-
(क) 8 (ख) 6 (ग) 7 (घ) 9
3. रघुवंश के त्रयोदश सर्ग में वर्णित हैं-
(क) रघु के शौर्य का वर्णन (ख) राम वनवास चित्रण
(ग) राम का आयोध्या पुर्नागमन (घ) लंका विजय

1.6 सारांश-

प्रस्तुत इकाई में महाकवि कालिदास के जीवन परिचय यथा जन्म, शिक्षा, जन्मस्थान, विवाह आदि का विवेचन किया गया है। महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के महानतम कवियों में से एक है, उनके जीवनवृत्त से इकाई को आरंभ कर उनके मूल परिचय के पश्चात् उनकी साहित्यिक विशेषताओं, भाषाशैली एवं काव्यसौंदर्य का निरूपण किया गया है। महाकवि अद्भुत काव्य प्रतिभा के धनी है, अतः भाषाशैली के अंतर्गत अलंकारों के सुंदर प्रयोग, रसों का स्थिति अनुसार निरूपण, छंदप्रयोग की कला उनकी कृतियों में सुंदर प्रयोग का दर्शन होता है। रघुवंश कालिदास की अनुपम रचना है, इसके त्रयोदश सर्ग के अंतर्गत पुष्पक विमान द्वारा सीता तथा राम के पुनः आयोध्यागमन, वनवास के क्षणों की स्मृति, मार्ग का चित्रण, आयोध्या आगमन पर भ्राता भरत से मिलन का जो अद्भुत वर्णन कालिदास ने किया है वह कथावस्तु के अंतर्गत इकाई में प्रस्तुत है।

1.7 स्व प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर-

1.2.1

1. ख
2. क
3. ग

1.4

1. क
2. ग
3. ग

1.7 अभ्यास के प्रश्न-

1. कालिदास की भाषाशैली की प्रमुख विशेषताओं का विवेचन कीजिये।
 2. त्रयोदश सर्ग में वर्णित मुख्य कथा का सार लिखिये।
 3. कालिदास की कृतियों के विषय में वर्णन कीजिये।
 4. कालिदास के जन्मस्थान से संबंधित विषयों का समीक्षात्मक वर्णन कीजिये।
-

1.8 संदर्भ सूची-

1. श्री चंद्रबली पाण्डेय ",कालिदास", , मोतीलाल बनारसी दास, बनारस, 1954 ।
2. रमाशंकर तिवारी ",महाकवि कालिदास", ,चौखंबा विद्या भवन ,वाराणसी 1961।
3. श्री रेवा प्रसाद द्विवेदी, "कालिदास ग्रंथावली", काशी हिंदू विश्वविद्यालय,1976
4. आचार्य पंडित सीताराम चतुर्वेदी ",कालिदास ग्रंथावली", , उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान ,लखनऊ, 2014।
5. डॉ शोभा भरद्वाज "रघुवंशम-महाकवि कालिदास", , युवराज पब्लिकेशन, आगरा, 2021 ।

इकाई -2

त्रयोदश सर्ग का परिचय

- 2.1 प्रस्तावना
 - 2.2 उद्देश्य
 - 2.3 राम सीता संवाद
 - 2.4 रस अलंकार प्रयोग
 - 2.5 मानवीय भावनाओं का चित्रण
 - 2.6 सार -संक्षेप
 - 2.7 मुख्य शब्द
 - 2.8 स्व प्रगति परीक्षण-प्रश्नों के उत्तर
 - 2.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
 - 2.10 अभ्यास प्रश्न
-

2.1 प्रस्तावना

विगत अध्याय में रघुवंश के तथा महाकवि कालिदास के परिचय के साथ महाकाव्य का अध्ययन आरंभ किया गया है । महाकवि कालिदास ने रघुवंश की रचना के द्वारा मानवीय भावनाओं पर्यावरणीय तत्व आदि की विवेचन से अपनी भाषा शैली एवं प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन में निपुणता को परिलक्षित किया है । प्रस्तुत इकाई में परिचय के अंतर्गत राम एवं सीता संवाद के माध्यम से वनवास की स्मृतियों को पुनः जीवित करने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत सर्ग में मानवीय भावनाओं के विभिन्न पक्षों करुण, श्रृंगार आदि का जो वर्णन किया गया है , यह शिक्षार्थियों की रस, अलंकार आदि के ज्ञान के साथ कालिदास की भाषा शैली तथा मानवीय भावनाओं के चित्रण को भली भांति परिचय कराएगा । इसके पश्चात आगे की इकाइयों में रघुवंश के श्लोकों के माध्यम से इनके त्रयोदश सर्ग का अध्ययन किया जाएगा ।

2.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि-

1. मानवीय जीवन के विभिन्न पक्ष सुख-दुख संयोग वियोग की भावना से परिचित हो सकें।
2. श्री राम तथा सीता के व्यक्तिगत गुणों से परिचित हो सकें।
3. दृश्यों के अनुसार रस, अलंकार आदि के प्रयोग को समझ सकें।
4. कालिदास की भाषा शैली की विशेषताओं को जान पाएं।

2.3 राम सीता संवाद

कालिदास कृत 'रघुवंश' संस्कृत साहित्य का एक अनुपम महाकाव्य है, जिसमें रघुकुल की परंपरा, नीति, भावनाएं और मर्यादा को अत्यंत कलात्मक रूप से प्रस्तुत किया गया है। इस महाकाव्य का तेरहवां सर्ग विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें राम का वनवास समाप्त होने के उपरांत अयोध्या लौटने का वर्णन है, जो केवल एक भौगोलिक यात्रा नहीं, बल्कि एक भावनात्मक, सांस्कृतिक और धर्मनिष्ठ यात्रा है। इस यात्रा के दौरान राम और सीता के मध्य जो संवाद होता है, वह उनके वैवाहिक संबंध, पारिवारिक कर्तव्यों और राजधर्म के मध्य संतुलन को उजागर करता है।

वाल्मीकि रामायण में जहाँ राम-सीता संवाद अधिक मार्मिक और विस्तृत है, वहीं रघुवंश में कालिदास ने सीमित शब्दों में गहन भावनाओं को चित्रित किया है। रघुवंश का राम अधिक नीति-प्रधान है, जबकि सीता भी एक सहनशील, किंतु आत्मगौरव युक्त स्त्री के रूप में प्रस्तुत की गई हैं। अयोध्या लौटते समय दोनों के मध्य हुआ संवाद केवल व्यक्तिगत स्तर पर ही नहीं, बल्कि सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से भी अत्यंत अर्थपूर्ण है।

जब रावण-वध के उपरांत राम सीता को अयोध्या ले जाने हेतु तैयार होते हैं, तो यह पुनर्मिलन आनंद और संकोच दोनों से परिपूर्ण होता है। राम के भीतर नायक और पति की दोहरी भूमिका है; एक ओर वे अयोध्या लौटकर अपनी प्रजा

के प्रति उत्तरदायी राजा बनने जा रहे हैं, दूसरी ओर पत्नी के साथ अपने दांपत्य जीवन की पुनः शुरुआत भी कर रहे हैं।

सीता, जो लज्जा, त्याग और समर्पण की मूर्ति हैं, राम से कुछ ऐसा संवाद करती हैं जिससे यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने राम की पीड़ा, धर्म और कर्तव्य के मार्ग को गहराई से समझा है।

राम और सीता का संवाद कोई आदेश या वचन नहीं है; यह एक परामर्श और आपसी समझ का संवाद है। कालिदास ने अपने काव्य में न केवल वर्णनात्मक सौंदर्य का प्रयोग किया है, बल्कि श्रव्य सौंदर्य और भाषिक अलंकरणों से भी संवाद को अत्यंत मार्मिक बनाया है।

संवाद में सीता को ससम्मान संबोधन के द्वारा राम कहते हैं:

"त्वं जीवितं मम सदा प्रियसी च भार्या।"

इस श्लोक के माध्यम से राम सीता को केवल धर्मपत्नी नहीं, अपितु अपने जीवन की संगीनी मानते हैं। उनका यह कथन भावनात्मक निकटता को दर्शाता है।

इस विषय में सीता का उत्तर भी उतना ही मार्मिक है:

"यथा मम धर्मो वनवासो भवति, तथा धर्मः त्वयोपि गृहे स्थितिः।"

यहाँ सीता अपने त्याग को नहीं, बल्कि धर्म की समझ को उद्घाटित करती हैं। वह राम के प्रति किसी शिकायत का नहीं, बल्कि समर्थन और सहयोग का भाव रखती हैं।

रघुवंश में सीता केवल सहधर्मिणी ही नहीं, बल्कि एक आत्मसम्मान युक्त स्त्री के रूप में चित्रित होती हैं। यद्यपि वह राम के निर्णयों का आदर करती हैं, परंतु कालिदास ने उनके उत्तरों में एक मौन गर्व और भावनात्मक शक्ति को प्रदर्शित किया है।

सीता का यह व्यवहार यह संकेत देता है कि वह स्वयं भी धर्म और समाज की मर्यादा को भलीभांति समझती हैं, और किसी भी परिस्थिति में वह अपने स्त्रीत्व को भुलाकर केवल अनुयायी बनकर नहीं चलतीं, बल्कि विचारशील सहभागी होती हैं।

राजधर्म और दांपत्य धर्म का संतुलन राम का चरित्र एक आदर्श राजा और आदर्श पति का संगम है। अयोध्या लौटने की यात्रा पर राम अपने दांपत्य जीवन

को पुनः प्रारंभ करने हेतु उत्साहित तो हैं, परंतु उन्हें इस बात की भी चिंता है कि राज्य की दृष्टि से सीता की अग्नि-परीक्षा आवश्यक थी। इस द्वंद्व को कालिदास ने अत्यंत सूक्ष्म रूप से प्रस्तुत किया है।

संवादों में राम कभी आदेशात्मक नहीं होते, बल्कि सीता को सदा सम्मानजनक स्वर में संबोधित करते हैं, जिससे यह पता चलता है कि वह राजधर्म के साथ-साथ अपने व्यक्तिगत जीवन के उत्तरदायित्व को भी संतुलित करना जानते हैं।

संवाद की सांस्कृतिक महत्ता राम और सीता का यह संवाद केवल एक दंपति का पारस्परिक वार्तालाप नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति में स्त्री-पुरुष संबंधों की मर्यादा, समझ, कर्तव्य और भावनात्मक सामंजस्य का प्रतीक है। कालिदास ने शब्दों के माध्यम से इस संवाद को इतना सजीव बना दिया है कि पाठक उसे केवल पढ़ता नहीं, बल्कि अनुभूत करता है।

यह संवाद भारतीय नारी की मानसिक शक्ति, धर्म के प्रति उसकी आस्था और पति-पत्नी के बीच गूढ़ संवाद की परंपरा का प्रतिनिधित्व करता है। रघुवंश में राम और सीता का अयोध्या पुनर्गमन केवल भौतिक वापसी नहीं है, वह सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों की पुनःस्थापना है। इस यात्रा के दौरान राम-सीता संवाद मानवीय संवेदनाओं, दंपत्य मर्यादा और राजधर्म के मध्य संतुलन का उत्कृष्ट उदाहरण है।

कालिदास की काव्य शैली इस संवाद को विशेष बनाती है। यहाँ न तो अतिरेक है, न ही उपेक्षा - हर भाव संतुलित है, हर वाक्य मर्मस्पर्शी है। इसीलिए, रघुवंश का यह अंश न केवल साहित्यिक दृष्टि से, बल्कि सांस्कृतिक और नैतिक दृष्टि से भी अमूल्य है।

स्व प्रगति परीक्षण-प्रश्न

1. राम सीता संवाद में मुख्यतः वर्णन है -

क. वनवास ख. लंका दहन ग. स्वयंवर वर्णन

2. राम किसके द्वारा अयोध्या की यात्रा कर रहे थे

क. पुष्पक विमान ख. रथ ग. नौका

3. अयोध्या किसके तट पर स्थित है -

- क. सरयू ख. गंगा ग. यमुना
4. लंका से अयोध्या गमन में किस मार्ग का अनुसरण किया गया है -
क. वायु ख. जल मार्ग ग. स्थल मार्ग

2.4 रस अलंकार प्रयोग

कालिदास का रघुवंश महाकाव्य न केवल एक ऐतिहासिक आख्यान है, अपितु मानवीय भावनाओं की गहन व्याख्या भी है। त्रयोदश सर्ग में राम और सीता के अयोध्या लौटने का प्रसंग केवल राजनीतिक विजय नहीं, बल्कि एक गहरे भावात्मक पुनर्मिलन का क्षण है। यह वह समय है जब एक पत्नी अपने पति के साथ लौटी है, जिसने यश की चरम सीमा को छू लिया है, किंतु जिसने उस यश के लिए अग्निपरीक्षा जैसी अमानवीय वेदना झेली है।

राम का मन, जहाँ एक ओर राज्य के कर्तव्यों से युक्त है, वहीं दूसरी ओर वह सीता के साथ पुनः सामाजिक जीवन में प्रवेश करने का मानसिक प्रयास कर रहा है। यह द्वंद्व इस सर्ग की संवेदनात्मक गहराई को रेखांकित करता है।

रस आदि के प्रयोग के विषय में शृंगार रस सीता-राम के संयत प्रेम में प्रकट होता है। युद्धोपरांत दोनों की दृष्टियाँ एक-दूसरे से जुड़ती हैं, पर संयमित भावनाओं के साथ स्पष्ट होती हैं। रसों का प्रयोग में विभिन्न रसों का समन्वय किया गया है। करुण रस सीता की वेदना, अयोध्या के पुनः स्मरण, और भरत के व्रती जीवन में अभिव्यक्त होता है। शांत रस का स्फुरण भरत की प्रतीक्षा और उसके वैराग्य में स्पष्ट है, साथ ही राम के नायकत्व में भी यह भाव विद्यमान है।

"स शुश्रुवान्नन्दिग्रामस्थितोऽथ पुरप्रवेशे रघुनन्दनस्य।

अनङ्गनन्दश्च बभूव भक्त्या चकम्प च प्रेमपरीतः॥"

श्लोकों के माध्यम से शांत व करुण रस का उदाहरण प्राप्त होता है। इसी प्रकार श्लोकों में रसों के उदाहरण प्रस्तुत किये गए हैं। भरत को जब राम के नगर प्रवेश का समाचार मिलता है, तो वह प्रेमविह्वल हो उठता है। यहाँ "चकम्प" (कंपित होना) और "प्रेमपरीतः" (प्रेम से रोमांचित) शब्द उसकी गहन भावना को सजीव करते हैं।

"तं निर्गतः प्रेमवशान्नराग्र्यं
समागतमात्मजमात्मबन्धुः।
राजाभ्यषिञ्चन्निव मार्गमध्यं
प्रशान्तरागोऽप्यनुरागमग्नेः॥"

यहाँ मुख्यतः विशेष रसः शांत व शृंगार रस हैं तथा अलंकारः रूपक, राम को 'अनुरागमग्न' कहे जाने के संदर्भ में हैं। भरत राम से मिलने मार्ग में निकल पड़ते हैं, मानो स्वयं पिता दशरथ उनके स्वागत में उपस्थित हों। प्रशान्तरागः शब्द शांति रस का द्योतक है, परंतु भीतर का अनुराग अभी भी अग्निवत् है।

"रामः समं सीतया लक्ष्मणेन
न लोकपालैरपि तादृशौ तौ।
दृश्येत चक्षुर्विषयं ययाते
प्रवृत्तमुत्संगगतं सुतस्य॥"

यहाँ रसः शृंगार व वात्सल्य रस तथा अलंकारः उपमा व रूपक हैं। राम-सीता का आगमन इतना दिव्य प्रतीत होता है कि देवताओं को भी वह दृश्य दुर्लभ हो। यहाँ राजकीय और पारिवारिक सौंदर्य का एक साथ चित्रण है।

"प्रसूनवृष्ट्या सहसा निपत्य
शिरःसु तेषां सहसा विभ्रान्ति।
प्रणम्य भूमौ सुतरां चकम्पे
भरः क्षितीशो वचनं च नेव॥"

यहाँ रसः करुण व शांत रस तथा अलंकारः दृश्यचित्रण, अनुप्रास का दर्शन होता है। भरत जब राम को प्रणाम करते हैं, तो उनके शरीर में कंपन होता है, और वे वाणी तक नहीं निकाल पाते। यह भ्रातृप्रेम की पराकाष्ठा है। भरत का चरित्र वैराग्य और भ्रातृभक्ति का उदाहरण है। जब वह राम के लौटने की खबर सुनते हैं, तो संयमित जीवन के भीतर दबी हुई भावनाएँ प्रवाहमान हो उठती हैं। उनकी प्रतीक्षा में वह न केवल सिंहासन को अस्वीकार करते हैं, अपितु स्वयं को सेवक मानकर नंदिग्राम में व्रती जीवन अपनाते हैं। यहाँ इस भाव में करुण रस

जिसकी प्रतीति भरत की वाणी रुद्ध हो जाना, शरीर का काँपना, हर्ष और पीड़ा की सम्मिलित अवस्था में द्रष्टव्य होती हैं। शांत रस जिसकी अभिव्यक्ति उनके त्यागमय जीवन और आत्म-नियंत्रण, जो राम की सत्ता के प्रति निष्ठा का प्रतीक है।

अलंकारों के विषय में निम्न भावों के प्रकटन में अलंकारों का दर्शन होता है

1. अनुप्रास अलंकार:

"चकम्प च प्रेमपरीतः" – वर्णों की पुनरावृत्ति से माधुर्य का निर्माण

2. रूपक अलंकार:

भरत का प्रेम अग्नि के समान बताया गया है—“अनुरागमग्नेः”।

राम-सीता को लोकपालों से श्रेष्ठ कहा गया—एक प्रतीकात्मक रूपक।

3. उपमा अलंकार:

भरत का प्रेम गंगा के प्रवाह के समान शांत, परंतु तीव्र।

सीता की लज्जा को कमलिनी की उपमा देना

इस प्रकार रघुवंश के त्रयोदश सर्ग में रस व अलंकार तत्वों का समन्वय कर इसके सौन्दर्य में वृद्धि की गयी है।

2.5 मानवीय भावनाओं का चित्रण

‘रघुवंश’ में मानवीय भावनाओं का अनुपम चित्रण कालिदास संस्कृत साहित्य के सर्वोच्च कवियों में गिने जाते हैं, जिनकी काव्यकला न केवल भावनाओं की गहराइयों को स्पर्श करती है, बल्कि मानव स्वभाव की जटिलताओं को भी सूक्ष्मता से उजागर करती है। उनके महाकाव्य ‘रघुवंश’ में रामकथा का आख्यान एक विलक्षण भाव-प्रवाह से सम्पन्न है। विशेष रूप से सीता की अग्निपरीक्षा के पश्चात उनका अयोध्या पुनरागमन और भरत के साथ राम का पुनर्मिलन मानवीय संवेदनाओं का अत्यंत मार्मिक और सौंदर्यपूर्ण चित्रण है। एक भावनात्मक यात्रा रघुवंश के तेरहवें सर्ग में सीता की अग्निपरीक्षा और तदुपरांत राम के साथ

अयोध्या की ओर प्रयाण का वर्णन है। यहाँ कालिदास ने केवल एक राजा का राज्य में प्रवेश नहीं दिखाया है, बल्कि एक पति-पत्नी के पुनर्मिलन, एक परिवार के पुनर्संयोजन और जन-जन की आशाओं की पूर्ति का दृश्य चित्रित किया है। राम और सीता का पुष्पक विमान से अयोध्या की ओर लौटना केवल एक भौतिक यात्रा नहीं, बल्कि भावनाओं की एक लहर है जो पाठक के हृदय में प्रवाहित होती है। राम के मन में राज्य की जिम्मेदारी की चिंता है, वहीं सीता के हृदय में घर लौटने की आशा और विगत दुःखों की स्मृतियाँ हैं। इस यात्रा में कालिदास ने दोनों के मनोभावों को बड़ी ही कोमलता से उकेरा है। भ्रातृप्रेम और कर्तव्यनिष्ठा का आदर्श के रूप में राम-भरत मिलन का प्रसंग रघुवंश के अत्यंत हृदयस्पर्शी अंशों में से एक है। भरत, जिन्होंने राम के वनगमन के पश्चात् नन्दिग्राम में तपस्वी के समान जीवन व्यतीत किया, उन्हें जब राम के आगमन का समाचार मिलता है, तो उनका हर्ष और भावविभोरता असाधारण है। कालिदास भरत के अश्रु-बहुल नेत्रों, कांपते चरणों और उत्साह के साथ राम से मिलने की उत्कंठा को ऐसे चित्रित करते हैं मानो स्वयं पाठक उनके साथ-साथ दौड़ रहा हो। यह दृश्य एक आदर्श भ्रातृप्रेम का उदाहरण है, जहाँ न सत्ता की लालसा है, न ईर्ष्या, केवल समर्पण और प्रेम है। राम भी भरत को देखकर भावविह्वल हो उठते हैं। दोनों भाइयों के मिलन में कालिदास ने केवल एक आत्मीयता का चित्रण नहीं किया, बल्कि यह भी दर्शाया है कि राजधर्म और पारिवारिक संबंध कैसे समरसता से जुड़ सकते हैं। यह क्षण दर्शाता है कि सच्चा प्रेम केवल वाणी से नहीं, बल्कि कर्तव्यों के पालन से अभिव्यक्त होता है। जन-जन की भावना के चित्रण के विषय में राम और सीता के अयोध्या आगमन पर नगरवासियों की प्रतिक्रिया भी कालिदास ने अत्यंत मार्मिकता से वर्णित की है। नगर की स्त्रियाँ सीता की सौम्यता और सहनशीलता से प्रभावित होती हैं, वहीं पुरुषगण राम की मर्यादा और त्याग की सराहना करते हैं। कालिदास ने वर्णन किया है कि किस प्रकार समस्त नगर राम-सीता के स्वागत में उत्सवमय हो उठता है। यह दृश्य किसी राजा के स्वागत से

अधिक, एक पुत्र, पति और भाई के स्वागत का दृश्य बन जाता है, जो कि जनता से एक गहरा भावनात्मक संबंध बनाए हुए है। मानवीय भावनाओं की विविधता को दर्शाते इस प्रसंग में कालिदास ने मानवीय भावनाओं के विविध रंगों को दर्शाया है—विरह, आशा, प्रेम, कर्तव्य, क्षमा, पुनर्मिलन और हर्ष। राम का अपने भाइयों के प्रति स्नेह, सीता का धैर्य, भरत की निष्ठा, लक्ष्मण की सेवा-भावना और अयोध्यावासियों का समर्पण—उदाहरणार्थ, सीता जो वनवास के बाद भी बिना किसी कटुता के, सौम्यता के साथ अपने दायित्व की ओर लौटती हैं, वह नारी-संवेदनशीलता की प्रतीक हैं। वहीं भरत, जो सत्ता को ठुकरा कर अपने भ्राता के आगमन की प्रतीक्षा में तपस्वी-सा जीवन जीते हैं, आत्म-त्याग की मूर्ति प्रतीत होते हैं। कालिदास की काव्यात्मक शैली में भावों का प्रवाह कालिदास की विशेषता यह है कि वे अलंकारों, उपमाओं और सजीव चित्रण के माध्यम से भावनाओं को मूर्त रूप दे देते हैं। पुष्पकविमान के उड़ान से लेकर अयोध्या की भूमि पर चरण रखने तक, हर दृश्य में भावनाओं की ध्वनि सुनाई देती है।

उदाहरण के रूप में कालिदास द्वारा प्रयुक्त उपमाएँ—राम का तेज सूर्य समान, सीता की लज्जा कमलिनी जैसी, भरत की भक्ति गंगा की धारा के समान—इन उपमाओं में भावनात्मक गहराई छुपी है जो पाठक को आकृष्ट करती है। रघुवंश में राम-सीता का पुनरागमन और भरत मिलाप केवल कथा के प्रसंग मात्र नहीं हैं, बल्कि वे भारतीय मानस में गहराई तक बसे मानवीय मूल्यों और भावनाओं के जीवंत उदाहरण हैं। कालिदास ने इन्हें एक भावात्मक यात्रा के रूप में प्रस्तुत किया है, जिसमें त्याग, प्रेम, करुणा और कर्तव्य की सुगंध रची-बसी है। यह प्रसंग केवल धार्मिक या ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं, बल्कि मानवता, रिश्तों की सच्चाई और हृदय की संवेदनाओं को समझने के लिए भी अत्यंत मूल्यवान है। कालिदास का यह चित्रण आज भी हमें यही सिखाता है कि मानवीय संबंधों की शक्ति किसी भी राज्य या सत्ता से कहीं अधिक महत्वपूर्ण

होती है। रघुवंश मानवीय भावनाओं के सुंदर चित्रण से सुशोभित कर इस सर्ग की अलौकिकता को प्रमाणित करते हैं।

2.6 सार - संक्षेप

राम एवं सीता के अयोध्या पुनर्गमन पर त्रयोदश सर्ग का मुख्य विषय है। सीता तथा राम जब पुष्पक विमान पर विराजमान होकर अयोध्या के लिए अग्रसरित होते हैं, तब उनके संवादों में विभिन्न पक्षों का चित्रण कालिदास द्वारा किया गया है। कालिदास ने भावों के आधार पर भावुकता तथा प्रेम के भावों को प्रकट करने के लिए करुण, शृंगार, शांत रसों का यथास्थान अत्यंत सुंदर प्रयोग किया है। मानवीय भावनाओं के चित्रण में रस, अलंकार आदि के प्रयोग द्वारा त्रयोदश सर्ग की शोभा में वृद्धि हुई है।

2.7 मुख्य शब्द

- पुष्पक विमान- वायु मार्ग में यात्रा का साधन
- संवाद- वार्तालाप
- रस- काव्य तत्व
- शृंगार -रस का एक प्रकार
- उपमा -अलंकार का एक भेद, मुख्य अलंकार
- करुण- विलाप, शोक

2.8 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. क.वनवास
2. क. पुष्पक विमान
3. क.सरयू
4. क. वायु

2.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. श्री चंद्रबली पाण्डेय ",कालिदास", , मोतीलाल बनारसी दास, बनारस, 1954 ।
2. रमाशंकर तिवारी ",महाकवि कालिदास", ,चौखंबा विद्या भवन ,वाराणसी 1961।
3. श्री रेवा प्रसाद द्विवेदी, "कालिदास ग्रंथावली", काशी हिंदू विश्वविद्यालय,1976
4. आचार्य पंडित सीताराम चतुर्वेदी ",कालिदास ग्रंथावली", , उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान ,लखनऊ, 2014।
5. डॉ शोभा भरद्वाज "रघुवंशम-महाकवि कालिदास", , युवराज पब्लिकेशन, आगरा, 2021 ।

2.10 अभ्यास प्रश्न

1. त्रयोदश सर्ग में चित्रित प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन कीजिए ।
2. त्रयोदश सर्ग में वर्णित वनवास की स्मृतियों का वर्णन कीजिए।
3. राम सीता संवाद में कालिदास द्वारा प्रयुक्त प्रमुख रसों का विवेचन कीजिए।
4. त्रयोदश सर्ग में मानवीय भावनाओं का चित्रण कीजिए ।

इकाई - 3

1 से 40 श्लोको की सप्रसंग व्याख्या

- 3.1 प्रस्तावना
 - 3.2 उद्देश्य
 - 3.3 1 से 40 श्लोको की सप्रसंग व्याख्या
 - 3.4 सारांश
 - 3.5 मुख्य शब्द
 - 3.6 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर
 - 3.7 संदर्भ ग्रन्थ
 - 3.8 अभ्यास प्रश्न
-

3.1 प्रस्तावना

गत इकाई में त्रयोदश सर्ग के प्रतिपाद्य विषय के माध्यम से इसके संक्षिप्त परिचय का समन्वय किया गया है। प्रस्तुत इकाई में रघुवंश के त्रयोदश सर्ग के 40 श्लोक पर्यंत सप्रसंग व्याख्या की गई है। इन श्लोकों में वर्णित तथ्यों की अध्ययन, **अन्वय** आदि के साथ प्रस्तुत कर इस श्लोकों की व्याख्या को सहज व सरल करने का प्रयास किया गया है। विगत अध्याय में महाकवि कालिदास, रघुवंशम आदि का संक्षिप्त परिचय तथा त्रयोदश सर्ग के प्रतिपाद्य विषय की विवेचना के पश्चात् इस सर्ग के 40 श्लोक की व्याख्या कर व्याख्यात्मक पक्ष को प्रस्तुत किया गया है। इसके पश्चात् कालिदास की काव्यकला के प्रमुख विशिष्टता प्रकृति चित्रण को प्रकट किया जाएगा।

3.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि-

1. इस अध्याय के पठन के माध्यम से श्लोकों की व्याख्या समझी जा सके।
2. रघुवंश के प्रमुख श्लोकों के उच्चारण आदि का ज्ञान हो सके।
3. श्लोकों की व्याख्या से सैद्धांतिक पक्ष अभिज्ञान हो सके।
4. श्लोकों के द्वारा उन में विद्यमान काव्य तत्वों का अध्ययन किया जा सके।

2.3 1 से 40 श्लोको की सप्रसंग व्याख्या

रघुवंश के त्रयोदश सर्ग में वर्णित तत्त्वों, दृश्यों, मानवीय भावनाओं का अध्ययन श्लोकों के माध्यम से किए जाने से हम संस्कृत भाषा के श्लोकों की महत्ता तथा कवयगुणों से इन भावनाओं के चित्रण से परिचित होंगे।

अथात्मनः शब्दगुणं गुणज्ञः पदं विमानेन विगाहमानः ।

रत्नाकरं वीक्ष्य मिथः स जायां रामाभिधानो हरिरित्युवाच । ११ ॥

अन्वय-अथ गुणज्ञः सः रामाभिधानः हरिः शब्दगुणम् आत्मनः पदम् विमानेन विगाहमानः रत्नाकरं वीक्ष्य मिथः जायाम् इति उवाच।

शब्दार्थ-अथ = लड़का पर विजय प्राप्त कर वहाँ से चलने के बाद। गुणज्ञः = दया, क्षमा, शौर्य आदि गुणों को जानने वाले। सः वह। रामाभिधानः = राम नामधारी। हरिः = भगवान् विष्णु ने। शब्द गुणम् = शब्द गुण वाले। आत्मनः पदम् = अपने स्थान अर्थात् आकाश को। विमानेन = पुष्पक नामक वायुयान से। विगाहमानः = पार करते हुए। रत्नाकरं = समुद्र को। वीक्ष्य देखकर। मिथः = एकान्त में। जायां = पत्नी से। इति = अग्रिम श्लोकों में कहीं जाने वाली बात को। -लड़का से चलने के पश्चात्, गुणों को जानने वाले, राम नामधारी (स्वयं भगवान्) विष्णु ने, शब्द गुण वाले अपने ही पद (स्थान) अर्थात् आकाश को विमान से पार करते हुए, समुद्र को देखकर एकान्त में अर्थात् केवल अपनी पत्नी सीता से, यह कहा।

भावार्थ-लड़का से लौटते समय, पुष्पक विमान द्वारा आकाश मार्ग से यात्रा करते हुए राम ने मार्ग में समुद्र को देखकर अपनी पत्नी सीता से कहा।

संस्कृत टीका-अथ लङ्कायाः प्रस्थानानन्तरम्, गुणक्षः = गुणज्ञाता, सः = प्रसिद्धः, रामाभिधानः = राम इत्याख्यानितः, रामरूपेणावतरित इत्यक्षः हरिः साक्षाद्विष्णुः, शब्दगुणं शब्दः गुणर्णो यस्थ शब्दगुणं आकाशम् "शब्दगुणकमाकाशमि" ति तल्लक्षणात्, आत्मनः विष्णोः - विः आकाशं माति मापयति यत् तद् विमानम् तेन-कुबेरेण प्रदत्तं पुष्पकनामक वायुयानम् तेन, विगाहमानः - विशेषेण गाहमान इति विगाहमानः- अवगाहमानः उल्लङ्घनित्यर्थः,

रत्नाकरम्- रत्नानामाकरम्- समुद्रम्, वीक्ष्य-विलोक्य, मिथः- रहसि एकान्ते इत्यर्थः "मिथोऽन्योन्य रहस्यपि" इत्मरः। जायाम्पत्नीं सीताम्, इति-अग्रे वक्ष्यमाणं वचनम्, उवाच-कथयामास ।

संस्कृत सरलार्थ-लङ्का विजित्य ततः प्रस्थानानन्तरम्, पुष्पकविमानेन यात्रा कुर्क रामः मार्गे समुद्र वीक्ष्य स्वपत्नीं सीता मित्यकथयत् ।

व्याकरण -शब्दगुणम्- शब्दो गुणो यस्येति (बहुब्रीहिः) गुणज्ञः- जानातीति ज्ञा धातोः "इगुपधज्ञाप्र्रीकिरः कः इति क प्रत्ययः गुणानां शः इति गुणज्ञः (ष० तत्पु विगाहमानः विगाह शानच् । रत्नाकरम्- रत्नान म् आकरः तम् (प० तत्पु वीक्ष्य- वि ईक्ष कत्वाल्पप् । रामाभिधानः राम अभिधान यस्य यः (बहुब्रीदि उवाच-वच् परिभाषणे लिट् प्रथम पु० एकवचन ।

विशेष- यहाँ रामाभिधान कहकर कवि ने राम को विष्णु का अवतार बतलाया जिससे कि राम में सार्वकालिक ज्ञान एवं दया, क्षमा, शौर्य आदि गुणों की स्थिति 'आत्मनः पदम्' कहने का औचित्य भी सिद्ध हो सके। पौराणिक आख्यान के अनु वामन अवतार में बलि का मद नष्ट करते हुए विष्णु ने अपने एक पैर से आकाश को लिया था तब से आकाश को विष्णु पद कहा जाने लगा है। शब्दगुणम् - यह आकाश विशेषण है। आकाश शून्य है उसका परिचायक धर्म शब्द है, क्योंकि शब्द आकार रहता है अतः आकाश का गुण शब्द होने के कारण उसे शब्द गुणम् कहा गया है। 'मिथः' शब्द के द्वारा कवि ने यह भाव व्यक्त किया है कि सीता से एकान मिलकर कुछ अपने मन की बात कहने का राम को अवसर मिला है। 'अथ' मंगलात्मक होने के कारण सर्ग के आदि में मङ्गलाचरण का कार्य पूर्ण करता है। अलंकार-यहाँ परिकर नामक अलंकार है। क्योंकि गुणशः शब्दगुणम् सभी विशेषण साभिप्राय है।

वैदेहि पश्यामलया द्विभक्तं मत्सेतुना फेनिलमम्बुराशिम्।

छायापथेनेव शरत्प्रसन्न माकाशमाविष्कृत चारुतारम् ॥२॥

अन्वय-वैदेहि ! आमलयात् मत्सेतुना विभक्त फेनिलम् अम्बुराशिम्, छायापथेन म) शरत्प्रसन्नम् आविष्कृत- चारुतारम् आकाशम् इव पश्य ।

शब्दार्थ-वैदेहि ! = हे सीते ।। आमलयात् मलय पर्वत तक। मत्से तुना = द्वारा बनाए गए पुल से। विभक्त = दो भागों में बँटे हुए। फेनिलम् = फेन से युक्त । आबुराशिम् = समुद्र को। छायापथेन छाया पथ से (बहुत से नक्षत्रों की बनी पंक्ति ३) (विभक्त हुये) । शरत्प्रसन्नम् = शरद् ऋतु में निर्मल । आविष्कृत चारुतारम् = जदित हुए सुन्दर तारों से युक्त। आकाशं नभ के। इव = समान । पश्य = देखो ।

अनुवाद-हे सीते ! मलय पर्वत तक मेरे द्वारा बनाए गए पुल से दो भागों में विभक्त, फेन से युक्त समुद्र को (तुम छायापथ से दो भागों में विभक्त) शरद् ऋतु में स्वच्छ, उदित हुए सुन्दर नक्षत्रों से युक्त आकाश के समान देखो। राम कहते हैं कि हे सीते ! मेरे द्वारा बनाये गये सेतु से द्विधा विभक्त यह समुद्र, छाया पश्य से विभक्त, शरत् कालीन तारा गणों से युक्त आकाश के समान दिखलाई पड़ता है।

भावार्थ-आकाश में नक्षत्रों की एक ऐसी रेखा सी जो बहुत लम्बी होती है जिससे आकाश दो भागों में विभक्त-सा प्रतीत होता है। मल्लिनाथ ने इसके विषय में लिखा है- "छायापथो नाम ज्योतिश्चक्रमध्यवर्ती कश्चित्तिरश्चीनोऽवकाशः।

संस्कृत टीका-वैदेहि ! सीते ! आमलयात् मलयपर्वत पर्यन्तम् "आङ्मर्या-दाभिविध्योः" मत्सेतुना मत्कृतसेतुना, विभक्तम् द्विधाकृतम्, फेनिलम् = फेनयुक्तम् अम्बूनां जलानां राशि कोषमिति, अम्बुराशिम् = जलनिधिम्, छायापथेन एकतन्नामिकया नक्षत्रराशिपंक्त्या (द्विधाविभक्तम्) शरदि शरद् ऋतौ प्रसन्न स्वच्छं मेघादिदोष रहित मित्यर्थः, आविष्कृताः प्रकटिताश्चारवः मनोहरा स्ताराः नक्षत्राणि यस्मिन् = प्रादुर्भूतसुन्दर नक्षत्रम्, आकाशम् इव अम्बरमिवं, नभ इव पश्य = अवलोकय ।

संस्कृत सरलार्थ - मलय पर्वतं यावत् मत्कृतसेतुना द्विधा विभक्तम्, फेनवन्त सागरम् शरन्निर्मल मनोहरनक्षत्रयुमम्बर भिवालोकय ।

व्याकरण-वैदेहि ! विदेहस्यापत्यं स्त्री वैदेही तत्सम्बुद्धौ है। शब्द से अपत्य अर्थ में अण एवं स्त्रीत्व विवक्षा में टिड्ढाण इत् होकर वैदेही शब्द बनता है जिसका सम्बोधन एकवचन में वैदेहि बना। मैं कपिल मुनि है उपसर्ग पूर्वक मलय

शब्द से "पञ्चम्यपाड परिभिः" सूत्र से पत्र खोदते हुए हमारे विभक्तम् - वि + भञ्च् + क्त द्वितीया एक वचन। फेनिल-फेन + इल द है। सूत्र) अम्बूनां राशिः अम्बूराशिः तम् (प० तत्पु०) । शरत्प्रसन्नम्-शरदि तत्पु०) आविष्कृत चारुतारम्- आविष्कृताः चारवः ताराः यस्मिन् आविष्कृत-आविस् + कृ + क्त।
विशेष- इस श्लोक में कवि ने राम के मुख से 'मत्सेतुना' हृदय की इस मनोवैज्ञानिक भावना की ओर संकेत किया है ।

**गुरोर्यियक्षोः कपिलेन मेध्ये रसातलं संक्रमिते तुरङ्गे ।
तदर्थमुर्वीमवदारयद्भिः पूर्वेः किलायं परिवर्धितो नः ॥ ३ ॥**

अन्वय-यियक्षोः गुरोः मेध्ये तुरङ्गे कपिलेन रसातलं संक्रमिते अवदारयद्भिः नः पूर्वेः आय परिवर्धितः किल।

शब्दार्थ- तुरङ्गे -घोड़े को। कपिलेन रसातलं = पाताल में। संक्रमिते ले जाने पर। तदर्थम् उस अश्व खोजने के लिए। ऊर्वीम् पृथ्वी को। अवदारयद्भिः खोदने वाले। नः के)। पूर्वेः = पूर्वजों के द्वारा। अयं- यह समुद्र ।

अनुवाद - (अश्वमेध) यज्ञ करने की इच्छा वाले राजा (सगर) के अश्व को कपिल मुनि के द्वारा पाताल में ले जाने पर, उम्र अश्व को खोजने के को खोदने वाले हमारे पूर्वजों के द्वारा यह समुद्र बढ़ाया गया था, ऐसा प्रसिद्ध है

भावार्थ-राम, सीता से कहते हैं कि हे वैदेहि। जब अश्वमेध यज्ञ करने -अस रखने वाले हमारे पूर्वज महाराज सगर के अश्वमेधीय अश्व ने (चुराकर) पाताल लोक में कपिल मुनि के आश्रम में पहुँचा दिया, तब उस अश्व को खोजने के लयात पृथ्वी को खोदते हुए हमारे पूर्वज सगर पुत्रों ने इस समुद्र को परिवर्धित किया था, वित प्रसिद्ध है।

संस्कृत टीका-यियक्षोः = द्विधा सन्नम तरङ्गे अश्वे, कपिलेन एतन्नामकेन मुनिना रसायाः पृथिव्याः तलं-अघाभागम् (बमातलं पातालमित्यर्थः सक्रामिते = नीते सति, तदर्थम् = अश्वान्वषणार्थम्, ऊर्वीम् यष्टुभिच्छोः, गुरोः - राज्ञः सगरस्य, मेध्ये यज्ञीये श्रीम् अवदारयद्भिः = खनिन्दधः, नः अस्माकम् पूर्वेः पूर्वपुरुषैः (सगर पुर्वैः) लाकर पुरोदश्यामानः समुद्रः परिवर्धितः = विस्तारितः किल इति निश्चये ऐतिह्ये वा।

संस्कृत सरलार्थ-यष्टु मिच्छोः सगरस्य यज्ञभ्येऽश्वे कपिलमुनिना पातालं प्रापिते कार्यमधिगन्तुं पृथिवीं खनद्भिः अस्माकं पूर्वजैः अयं समुद्रः परिवर्द्धितः इति प्रसिद्धिः।

व्याकरण-यियक्षोः- यज्ञ करने की इच्छा, इस अर्थ में यज् धातु से सन्नन्त कर उ प्रत्यय कर षष्ठी एकवचन का रूप। यष्टुमिच्छतीति पयक्षति, ततः + सन + त् "सनाशसभिक्ष उः" इति उप्रत्यये, यियक्षुः, तस्य यियक्षोः- यज् + व । मेध्ये मेध + ण्यत् सप्तम्येक वचन (पूतं पवित्र मेध्यं च) रस-रसायाः (घ० तत्पु०)। संक्रमिते - सम + क्रम + णिच् + क्त (सप्त० एक०) व्यद्भिः- अव + दृ + णिच् + शतृ (तृतीया बहुब्रीहि)। परिवर्द्धितः - परि + वृध् + क्त (प्रथमा एक०)।

विशेष -इस श्लोक में एक पौराणिक आख्यान को आधार बनाया गया है जिसके सगर के साठ हजार पुत्र, अश्वमेध यज्ञ के अश्व को, जो भयभीत इन्द्र के द्वारा पाताल में कपिल मुनि के आश्रम में बाँध दिया गया था, खोजने के लिए पृथ्वी कर वहाँ पहुँचे थे, और उन्होंने यही समझा था कि अश्व कपिल मुनि के द्वारा ही लाया है। अतः सगर पुत्रों ने ऋषि का अपमान किया जिसके परिणामस्वरूप ऋषि धाग्नि में वे सभी भस्म हो गये। बाद में उनकी सद्गति के लिए राजा भगीरथ ने त्याग कर गङ्गा को भूतल पर उतारा था। इस प्रकार सगर पुत्रों के द्वारा समुद्र का विस्तार लिया गया था ।

यदि कवि ने कपिलेन शब्द के द्वारा सीधे कपिल मुनि के द्वारा जो अश्व चुराने की है उसका उद्देश्य सगर पुत्रों की भ्रान्ति की ओर संकेत करना प्रतीत होता है। अर्थ में किसी प्रकार दोषान्वेषण नहीं करना चाहिए।

गर्भम दधत्यर्कमरीचयोऽस्माद्विवृद्धिमत्राशनुवते वसूनि ।

अबिन्धनं वह्निमसौ विभर्ति, प्रह्लादनं ज्योतिरजन्यनेन ॥४॥

अन्वय-अस्मात् अर्कमरीचयः गर्भः दधति अत्र वसूनि विवृद्धि अशनुवते असौ वह्नि विभर्ति अनेन प्रह्लादनं ज्योतिः अजनि ।

शब्दार्थ-अस्मात् इस समुद्र से। अर्कमरीचयः सूर्य की कि जल रूपी गर्भ को। दधति = धारण करती है। अत्र इस सागर में। वर्मा = = प्राप्त करते। प्रकार के धन (रत्न आदि)। विवृद्धि वृद्धि को। अशनुवते यह। अबिन्धनं जल से दीप्त होने

वाली। बह्नि अग्नि को। विभर्ति = प्रसन्न करने वाली। ज्योतिः है। अनेनं = नं इस समुद्र ने। प्रह्लादनं अजनि = उत्पन्न किया।

अनुवाद- इस समुद्र से सूर्य की किरणें जल रूपी गर्भ को धारण का समुद्र में विविध रत्न आदि वृद्धि को प्राप्त करते हैं। यह समुद्र जल रूपी (जल से दीप्त होने वाली) अग्नि को धारण करता है और इसी समुद्र ने सुख देने वाले चन्द्रमा को उत्पन्न किया है।

भावार्थ-समुद्र से उत्पन्न और वृद्धि को प्राप्त होने वाले अन्य पदा कर समुद्र के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुये राम, सीता से कहते हैं। कि सूर्य किरणें जल ग्रहण करती हैं। अनेक रत्न इसी समुद्र में वृद्धि को प्राप्त क यह रत्नाकर कहा जाता हैं। इसी समुद्र में वाडवानल रहता है जो कि जल होता है। लोकाह लादक चन्द्रमा भी यही से उत्पन्न होता है।

संस्कृत टीका - अस्मात् = समुद्रात्, अर्कस्य सूर्यस्य मरीचयः रश्मय गर्भ = जल रूपं गर्भम्, दधति धारयन्ति (सूर्यकिरणैर्देव, मेघस्य-तस्मादेव जलवृष्टिः अतएव सूर्यकिरणानां जलरूप गर्भधारणम् परिकल्पितं = समुद्रे वसूनि = धनानि रत्नानि इत्यर्थः (धने रत्ने वसु स्मृतम् इति विश्व विशिष्टाभिवृद्धिम, अश्नुवते = प्राप्नुवन्ति । असी = समुद्रः दव, आपः हविः यस्य स काष्ठादिवत् दीपकं वस्तु । तम् = अविन्धनम्। वह्निम् = वडक = धारयति । अपकार कर्तारमपि न त्यजति इति समुद्रस्योदात्तत्वमुपदर्शितं च, अनेन = समुद्रेण, प्रह्लादनम् = जगदाहवादकम्, ज्योतिः = तेजः चन्द्रः जनितम् ।

संस्कृत सरलार्थ - रामः सीता कथयति यदस्मादेव समुद्रात् सूर्यक जलं संग्रह णन्ति । अस्मिन्नेव समुद्रे विविधानि मूल्यवन्ति रत्नानि उत्पद्यन्ते वृ अयमेव वाडवानल धारयति।

व्याकरण-अर्कमरीचयः- अर्कस्य मरीचयः (ष० तत्पु०) । वि वृध् + क्तिन् (द्वितीया एक व०) अविन्धनम् - आपः इन्धनं यस्य तम् (क नित्य बहुवचनान्त है।

विशेष- इस श्लोक में समुद्र के चार गुणों का वर्णन कर उसकी का प्रकाश किया ने स्पष्ट कर दिया है कि "सहस्ररश्मि सूर की चार सौ किरणें जिनकी' अमृत' संज्ञा करती है ।

तां तामवस्थां प्रतिपद्यमानं स्थितं दश व्याप्य दिशो महिम्ना।

विष्णोरिवास्यानवधारणीयमीदृक्तया रूपमियत्तया वा ॥५॥

अन्वय-ताम् ताम् अवस्थाम् प्रतिपद्यमानम् महिम्ना दश दिशः व्याप्त स्थितम् इव अस्य रूपम् ईवेक्तया इयत्तया वा अनवधारणीयम् ।

शब्दार्थ-ताम् ताम् = उन उन अनेक भिन्न-भिन्न। अवस्थाम् = स्वरूपों को। वृत्तिमानम् = प्राप्त करने वाले। महिम्ना = विस्तार से। (विष्णु पक्ष में महिमा से) दिशः = दसों दिशाओं को। व्याप्य = व्याप्त कर। स्थितम् = विद्यमान । विष्णोः भगवान् विष्णु के समान। अस्य = इस समुद्र का। रूपम् = स्वरूप। ईदृक्तया प्रकार का। इयत्तया = इतना। अनवधारणीयम् = निश्चय नहीं किया जा सकता ।

अनुवाद (अक्षोभ ऊर्भि भंवर आदि) उन उन (अनेक) अवस्थाओं को (विष्णु -सत्त्व शक्ति आदि अवस्थाओं को) प्राप्त करने वाले, विस्तार से (विष्णु पक्ष विशिष्ट महिमा से) दसों दिशाओं को व्याप्त कर अर्थात् दसों दिशाओं में फैले हुए बष्णु पक्ष में-समस्त ब्रह्माण्ड में कण-कण में व्याप्त) विष्णु के समान इस समुद्र स्वरूप इस प्रकार का (ऐसा) है या इतना (बड़ा, छोटा) है। इस प्रकार का नि किया जा सकता है।

भावार्थ- समुद्र की विष्णु से तुलना करते हये राम, सीता से कहते हैं प्रकार का विष्णु भगवान के रूप के विषय में यह कहना सम्भव नहीं है कि और इस प्रकार का है, उसी प्रकार इस समुद्र के स्वरूप के विषय में भी कल नहीं कहा जा सकता है, विष्ण के समान ही यह भी दश दिशाओं में व्याप्त है समय विविध अवस्थाओं को भी प्राप्त करता है।

संस्कृत सरलार्थ - समुद्रस्य महत्वं वर्णयन् रामः सीतां कथयति, वैदे यथास्थिति सत्त्वादयनेकस्वरूपापन्नं विष्णुस्वरूपं प्रकारतः परिमाणतश्च निर्णेत तर्थात् समुद्रस्यास्यापि अक्षोभाद्यनेकस्वरूपमापन्नम्, महत्वेन विस्तारेण च सः व्याप्य स्थितं च स्वरूपम् प्रकारतः परिमाणतश्च निश्चेतुमशक्यम् ।

व्याकरण-प्रतिपद्यमानम्-प्रति + पद् + श्यन् + मुक् + शानच् । िस्या + या आकार को 'इकारादेश'। व्याप्य = वि + आप् + क्त्वा को स्य । अब पूर्वक णिजन्त ध् धातु अर्थात् धारि धातु से कर्म में अनीयर् प्रत्यय, णिच्ज इकार का लोप, नञ् के न को अन् आदेश, अन् + अव = अनव धार् अनवधारणीयम्।

विशेष-कवि ने इस श्लोक में विष्णु से समुद्र का सदृश्य दिखला करन विशालता और अनेक रूपता का जहाँ कथन किया है वहीं विष्णु के अद्वैतत स्थापना भी की है। "सर्व खल्विदं ब्रह्म" इस मत को आधार बनाकर ही उन्होंने दसों दिशाओं में व्याप्त होने का उल्लेख किया है।

नाभिप्ररूढाम्बुरुहासनेन संस्तूयमानः प्रथमेन धात्रा ।

अमुं युगान्तोचितयोगनिद्रः, संहृत्य लोकान्पुरुषोऽधिशेते ॥६॥

अन्वय-युगान्तोचितयोगनिद्रः नाभिप्ररूढाम्बुरुहासनेन प्रथमेन धागा समंद पुरुष लोकान् संहृत्य अमुम् अधिशेते ।

शब्दार्थ-युगान्तोचितयोगनिद्रः- विरुद्ध। पुरुषः- विष्णु भगवान् । लोकान् - भू, भुवः स्वः आदि चौदह लोकों को। सोत्य- संहार कर (समेट कर) । नाभिप्ररूढाम्बुरु हासनेन (विष्णु की) नाभि से उत्पन्न कमल पर आसन लगाने वाले। प्रथमेन सर्वप्रथम (उत्पन्न)। धात्रा- ब्रह्मा केद्वारा। संस्तूयमानः- स्तुति किए जाते हुए। अमुं इस समुद्र में (ही)। अधिशेते- शयन करते हैं।

अनुवाद-कल्पान्त में अर्थात् प्रलय काल में उचित योगनिद्रा को प्राप्त किए हुए, और नाभि से उत्पन्न कमल रूपी आसन पर स्थित आदि प्रजापति के द्वारा स्तुति किये जाते हुए भगवान् विष्णु चतुर्दश लोकों को समेट कर इसी समुद्र में शयन करते हुए।

भावार्थ-समुद्र के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए भगवान् राम, सीता से कहते हैं कि यह वही समुद्र है जहाँ प्रलयकाल में भगवान् विष्णु योगनिद्रा को प्राप्त कर, समस्त भुकों को समेट कर शयन करते हैं और इस समय उनके नाभिस्थल से उत्पन्न कमलासन पर स्थित ब्रह्मा उनकी स्तुति करते हैं।

संस्कृत टीका -युगान्तोचितयोगनिद्रः = कल्पान्तपरिचितयोगनिद्रः । नाभेः प्ररूढमुत्पन्नं = यदम्बुरुहं कमलं तदेव आसनं यस्य तेन = नाभिप्ररूढाम्बुरुहासनेन = नाभिसमुत्पन्नकमलासनस्थितेन । प्रथमेन धात्रा = आद्येन प्रजापतिना, ब्रह्मणा संस्तूयमानः = वन्द्यमानः। पुरुषः भगवान् विष्णुः। लोकान् - भूर्भुवादीन् चतुर्दश लोकान् संहृत्य = स्वस्मिन्नेवाभ्यन्तरीकृत्य। अमुं समुद्रमधिसेते शयनं करोति। (कल्पान्ते यदा न किमप्यवशिष्यते तदाप्ययं समुद्रो विद्यत इत्यस्य महन्महत्त्वम् ।

व्याकरण-नाभिप्ररुडाम्बुरुहासनेन - नाभेः प्ररुढं (ष० तत्पु०) यदम्बुरुह तदेवासनं यस्य तेन (बहुब्रीहि)। संस्तूयमानः- सम् + स्तु + शानच् । युगान्तोचितयोगन्द्रिः - युगस्यान्तः युगान्तः (१० तत्पु०) युगान्ते उचिता योगन्द्रिा यस्य (बहुब्रीहि)। संहत्य-सम् + इ + क्त्वा ल्यप् अमुं में अधिशेते के योग के कारण 'अधिशीङ्स्थसां कर्म' सूत्र से आधार में द्वितीया विभक्ति हुई है।

विशेष - हिन्दू धर्म की मान्यता के अनुसार प्रलयकाल में भगवान् विष्णु समस्त ब्रह्माण्ड को अपने में समेट कर क्षीरसागर में शेषशय्या पर शयन करते हैं उस समय केवल विष्णु लक्ष्मी एवं विष्णु की नाभि से उत्पन्न कमल पर ब्रह्मा जी ही अवशिष्ट रहते हैं। अतः समुद्र प्रलयकाल में भी रहने के कारण संसार की समस्त वस्तुओं से अधिक स्थायी एवं प्राचीन है।

प्रसंग-इन्द्र के द्वारा पंख काटने के भय से अनेक पर्वतों ने इस समुद्र में शरण थी इसका वर्णन करते हुए राम सीता से कहते हैं-

पक्षच्छिदा गोत्रभिदात्तगन्धाः शरण्यमेनं शतशो महीधाः।

नृपा इवोपप्लविनः परेभ्यो धर्मोत्तरं मध्यममाश्रयन्ते ॥७॥

अन्वय-पक्षच्छिदा गोत्रभिदा आत्तगन्धाः शतशः महीधाः शरण्यं एवं पो उपप्लविनः नृपाः धर्मोत्तरं मध्यमम् इव आश्रयन्ते।

शब्दार्थ- पक्षच्छिदा- पंखों को काटने वाले। गोत्रभिदा- पर्वतविदारक के द्वारा। आत्तगन्धाः- मद रहित किये गये (पराजित किये गये। शतशः- सैक । महीधाः पर्वत । शरण्यं- शरण देने वाले। (शरण में आये हुए की रक्षा करने समर्थ) । एनं इस समुद्र का। परेभ्यः- शत्रुओं से। उपप्लविनः- भयभीत (पीड़ित - राजागण। धर्मोत्तरं = धर्मात्माओं में श्रेष्ठ। मध्यमं = तटस्थ राजा को। इव नृपाः समान। आश्रयन्ते = आश्रय लेते हैं। (शरण में आते हैं)।

अनुवाद-(पर्वतों के) पंखों को काटने वाले, पर्वतविदारक इन्द्र के द्वारा, रहित कये गये अर्थात् पराजित किये गये सैकड़ों पर्वत, शरण में आये हुये की रक्षा वाले इस समुद्र का (उसी प्रकार आश्रय लेते हैं।) जैसे शत्रुओं से भयभीत (पं राजागण (किसी) श्रेष्ठ धर्मात्मा मध्यम अर्थात् तटस्थ राजा का आश्रय लेते हैं।

भावार्थ-राम सीता से कहते हैं कि यह समुद्र शरणागतरक्षक भी है, इसीलि पर्वतपंखों को काटने वाले इन्द्र से त्रस्त होकर पर्वत इस शरण्य समुद्र का ही

आश्रय लेते हैं । ठीक उसी प्रकार जैसे शत्रुपीड़ित राजा किसी धार्मिक मध्यस्थ राजा का आश्रय लेते

संस्कृतटीका-पक्षान् छिनत्ति यः सः पक्षच्छित् तेन पक्षच्छिदा, पक्षच्छेद गोत्रभिदा = पर्वतभेदकेन अर्थात् इन्द्रेण आतः हतः गन्धः गर्वो येषां ते आतगर तिरस्कृताः पराजिताः इत्यर्थः । "गन्धो गन्धक आमोदे लेशे सम्बन्ध गर्वयोः" इति वि "आतगन्धोऽभिभूतः स्यात्" इत्यमरः । शतशः = शत संख्याकाः महीं पृथ्वीं धान्ति महीध्राः = पर्वताः, शरण्यं शरणे साधुः इति शरण्यः तम् = आश्रयदायिनम्। समुद्रम्, तथैवाश्रयन्ते यथा परेभ्यः शत्रु भ्यः उपप्लविनः भयभीताः, नृपाः धर्मोत्तरम् = धर्मप्रधानम्, मध्यम् = तटस्थम्, भूपालम् आश्रयन्ते। "अरेशच विजिग मध्यमो भूम्यनन्तरः" इति कामन्दकः ।

संस्कृत सरलार्थ - रामः कथयति - वैदेहि ! समुद्रोऽयमस्ति शरणागत रक्षक अत एव गोत्रभित्त्रासिता अनेके पर्वताः शरणागतवत्सलस्यास्य समुद्रस्याश्रयं तथैवा यथा शत्रुपीड़िता नृपतयो धर्मश्रेष्ठं तटस्थं राजन माश्रयन्ते ।

व्याकरणादि-पक्षच्छिदा-पक्ष + छिद् + क्विप्, तृतीयैकवचन। गोत्रभि साधुः इस विग्रह में शरण शब्द से यत् प्रत्यय, यस्येति चेति अकारलोप। उपप्लविनः - उपप्लवः भयम् सोऽस्ति येषान्ते "अत इनिठनौ" इति इनि प्रत्ययः प्रथमा बहवचने उपप्लविनः । नृपाः- नून् पान्ति इति विग्रहे तु पाक प्रत्ययः, आकार लोपः। धर्मोत्तरम् - धर्मः उत्तरो यस्य तम् धर्मोत्तरम्। मध्यमम्-मध्ये भव इत्यर्थे मध्यान्मः इति म प्रत्ययः। आश्रयन्ते आश्रिञ् सेवायाम् लटि रूपम्।

विशेष- पौराणिक आख्यान के अनुसार पहले पर्वतों के पंख होते थे जिससे वे इधर-उधर उड़कर सूर्य के मार्ग में रुकावट डाल देते थे, और जन-सम्पत्ति का नाश करते थे, इस बाधा को दूर करने के लिए जब देवताओं ने इन्द्र से निवेदन किया तो क्रुद्ध होकर इन्द्र ने पर्वतों के पंख काटने शुरू कर दिये। अतः भयभीत अनेक पर्वत उस समय समुद्र में जाकर छिप गये। इस प्रकार समुद्र ने शरण में आये हुए उन मैनाक आदि पर्वतों की रक्षा की। कवि ने यहाँ समुद्र की तटस्थ राजा से उपमा देकर इन्द्र विरोधी होने से बचा लिया है। यह कवि की सूक्ष्म दृष्टि है।

अलंकार - यहाँ उपमा अलंकार है जिसमें समुद्र उपमेय मध्यम राजा उपमान; पर्वत उपमेय पीड़ित राजा उपमान; इन्द्र उपमेय शत्रु राजा उपमान। शरण देना,

भयातुर होना, अंग भंग करना आदि साधारण धर्म हैं तथा इव उपमा वाचक है। इन तीन उपमाओं में मुख्य उपमा समुद्र और मध्यम राजा की है। शेष दो उपमायें इसकी अंगभूत होने के कारण यहाँ अङ्गाङ्गी भावसंकर अलंकार भी है।

रसातलादादिभवेन पुंसा भुवः प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः ।

अस्याच्छमम्भः प्रलयप्रवृद्धं मुहूर्तवक्त्राभरणं बभूव । १८ ॥

अन्वय-आदिभवेन पुंसा रसातलात् प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः भुवः प्रलय प्रवृद्धम् अस्य अच्छम् अम्भः मुहूर्तवक्त्राभरणम् बभूव ।

शब्दार्थ - आदिभवेन प्रथम अवतारधारी आदिवराह। पुंसा पुरुष (विष्णु) के द्वारा। रसातलात् = पाताल से। प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः = जिसके ऊपर को उठाने का कार्य किया गया है। (अर्थात् पाताल से ऊपर लाई गयी)। भुवः = पृथ्वी का । = प्रलयप्रवृद्धं = प्रलयकाल में बढ़ा हुआ। अस्य = इस समुद्र का। अच्छम् = स्वच्छ। अम्भ = जल । मुहूर्तवक्त्राभरणं = क्षण भर के लिए मुख का आभूषण (घुँघट)।

अनुवाद - आदि वाराहावतारधारी भगवान् विष्णु के द्वारा, ऊपर की ओर उगकर लाई गई पृथिवी का, प्रलयकाल में बढ़ा हुआ इस समुद्र का जल, क्षण भर के लिए (उस पृथ्वी के) मुख का आभूषण बन गया था। इस श्लोक में "प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः"। शब्द में 'उद्वहन' शब्द से यह ध्वन्यर्थ भी निकलता है जब भगवान् विष्णु ने पृथ्वी से उद्वाह अर्थात् विवाह किया अर्थात् उसे पत्नीत्वेन स्वीकार जब वे उसे ऊपर ले आये समय समुद्र का जल ही उस नव वध के मुख का आवरण अर्थात् घुँघट बन गया ।

भावार्थ- प्रस्तुत श्लोक में राम, सीता से कहते हैं कि जब दैत्याधिराज हिर ने मदवश पृथिवी को रसातल में पहुँचा दिया था तब भगवान् विष्णु ने वराह धारणकर इसका उद्धार किया था। रसा तल से ऊपर लाते समय इस समुद्र का जल उस पृथ्वी का आभूषण बन गया था।

संस्कृत टीका-आदो भवः जन्म यस्य सः तेन आदिभवेन आदिवराहेण पं भगवता विष्णुना, रामायाः तलं रसातलं तस्मात् प्रयुक्तोद्वहन क्रियायाः उद्वहनक्रिया उद्धरण क्रिया पक्षे विवाहक्रिया यस्याः सा तस्याः कृतोद्धरणक्रिय भुवः = पृथिव्याः पक्षे भूनायिकायाः, प्रलये युगान्ते प्रवृद्धं वर्द्धितं प्रलयप्रवृद्धम्

युगान्तकालसमृद्धम् अस्य = समुद्रस्य, अच्छं = स्वच्छं निर्मलमित्यर्थः अम्भः जल मुहूर्त क्षणम् यावत्, वक्त्रस्य पृथिव्याः मुखस्य आभरण आभूषण पक्षे अवगुण्ठन मुहूर्तवक्त्राभरणम्, बभूव जातम् ।

संस्कृत सरलार्थ-रामः सीतां कथयति यदादि वराहावतारधारिणा भगवता विष् रसातलादुद्वाहितायाः भुवः समुद्रस्यास्य स्वच्छमम्भः क्षणं नववधूमुखावरणमिव तर मुखाभरणं जातम् ।

व्याकरण- रसातलात् = रसायाः तलं तस्मात् (ष० तत्पु०) आदिभवेन-अ भवः यस्य तेन (बहु०) । प्रयुक्त = प्र + युज् + क्त। प्रयुक्तोद्वहन क्रियायाः = प्रयुन उद्वहनक्रिया यस्याः सा तस्याः (बहु०)। प्रलयप्रवृद्धम् - प्रलये प्रवृद्धम् (सप्त० तत्पु० प्रवृद्ध - प्र + वृध् + क्त । मुहूर्तवक्त्राभरणं - मुहुत यथा स्यात् तथा वक्त्रस्य आभरणम् (षष्ठं तत्पु०)। अभिरण-आ + भृ + ल्युट् । बभूव भू लिट् = प्र० पु० ए० व०।

विशेष- इस श्लोक में कवि ने आदि वाराह अवतार के रूप में विष्णु के द्वारा पृथ्वी का उद्धार करने का उल्लेख किया है। पौराणिक आख्यान के अनुसार हिरण्याक्ष के द्वारा पृथ्वी का अपहरण किया गया था और उसे पाताल में छिपा दिया गया था। पाताल ब्रह्माण्ड के चौदह भुवनों में सबसे नीचे का लोक है। तहाँ से भगवान विष्णु ने वाराह (सूकर) अवतार धारण कर उद्धार किया था जैसा कि उल्लेख है-

यहाँ पर उद्वहन शब्द श्लिष्ट है। जिसके अनुसार उद्धार ऊपर लाना एवं विवाह ये दो अर्थ वाच्य हैं। अतः विष्णु की पत्नी के रूप में पृथ्वी को कल्पना करने पर भगवान विष्णु ने पृथ्वी से विवाह किया- यह अर्थ भी प्रतीत होता है- उसकी पुष्टि वक्त्राभरण शब्द के द्वारा होती है। मुख का आभूषण वस्त्र होता है, वह वस्त्र विवाह के समय घूंघट के रूप में होता है। समुद्र का नीला जल नीवस्त्र के रूप में पृथ्वी के जो नीचे से समुद्र में होकर ऊपर निकल रही थी, के मुख्य पर सुशोभित हुआ। इस प्रकार कवि ने इस मा अर्थों की मधुर अभिव्यक्ति भी की है। अलंकार- इस श्लोक के श्लेष, लुप्तोपमा एवं रूपक अलंकारों का अंगांगि भावसंकर है और परिणामालंकार है।

**मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भाः, स्वयं तरङ्गाधरदान दक्षः ।
अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः, पिबत्यसौ पाययते च सिन्धूः ॥ ९ ॥**

अन्वय-अनन्य सामान्यकलत्रवृत्तिः तरङ्गाधरदानदक्षः, असौ मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भाः सिन्धूः स्वयं पिबति पाययते च ।

शब्दार्थ - अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः = असाधारण पत्नी प्रेम करने वाला (स्त्रियोंसे भोग करने वाला कामी)। तरङ्गाधरदानदक्षः तरङ्ग रूपी अधरोष्ठ का दान करने में चतुर अर्थात् अपने लहर रूपी अधरोष्ठ का अपनी स्त्री के द्वारा पान कराने में चतुर। असौ = यह समुद्र । मुखार्पणेषु चुम्बन के लिये अपना कराने में चतुर। असौ यह समुद्र । मुखार्पणेषु = चुम्बन के लिये अपना अधरोष्ठ देने में, मुख दान करने में। प्रकृति प्रगल्भाः = स्वभावतः धृष्ट अर्थात् अपने मुखका चुम्बन आदि कराने के लिए पति के समक्ष निर्लज्ज हो जाने वाली। सिन्धूः नदियों को (नदी रूपी अपनी प्रेयसियों को)। स्वयं = समुद्र । पिबति = पीता है। (अधरोष्ठ पान करता है)। पाययते च = और पान कराता है। (अपने अधरोष्ठ का स्त्रियों से पान कराता है)।

अनुवाद-विलक्षण रूप से पत्नी-रमण करने वाला (चुम्बनार्थ)। लहर रूपी अपने अधरोष्ठ का दान करने में चतुर, यह समुद्र, मुखदान करने में स्वभावतः धृष्ट (निर्लज्ज) नदियों (रूपी स्त्रियों) को स्वयं पान करता है और (स्वयं के अधरोष्ठ का) पान कराता है।

भावार्थ-समुद्र का आलंकारिक वर्णन करते हुए राम, सीता से कहते हैं, कि विलक्षण रीति से पत्नीरमण में चतुर एवं अपने तरंग रूप अधरोष्ठ को चुम्बनार्थ देने में कुशल यह समुद्र चुम्बनार्थ अपना मुख देने में स्वभावतः यञ्चलएवं लज्जारहित नदी रूपी अपनी पत्नियों का यह अधरपान करता है और स्वयं भी उन्हें अपना अधरपान कराता है।

संस्कृत टीका-अन्येषां सामान्यया साधारणा न भवति इति अनन्य सामान्य कलत्रवृत्तिः = सामान्या सा चासौ कलत्रेषु पत्नीषु वृत्तिः भोगरूपो व्यापारो यस्य सः अनितरसामान्य पत्नीरमणव्यवहारशीलः तरङ्ग एवं अधरः तस्य दाने दक्षः इति तरङ्गाधरदानदक्ष ः = वीचिरूपाधरोष्ठसमर्पणचतुरः, असौ = समुद्रः मुखार्पणेषु =

चुम्बनार्थ आननसमर्पणेषु, प्रकृत्या स्वभावतः प्रगल्भाः धृष्टाः प्रकृतिप्रगल्भाः = सख्यादिप्रेरणां बिनैव पत्युः, समक्षं मुखसमर्पणे लज्जारहिताः, सिन्धूः नदीः (दी रूपा स्त्रियः) "सिन्धुः समुद्रे नद्याञ्च" इति विश्वः। स्वयं समुद्रः पिबति = सिन्धुनामधरोष्ठपानं करोति पाययते च तरङ्गात्मकम् अधरं पाययते च = पानं करयति च ।

विलक्षणपत्नीरमणप्रवीणोऽस्ति, अतएवायं चुम्बनार्थं स्वकीयतरङ्गाधरदाने नैपुण्य दर्शयति

संस्कृत सरलार्थ- समुद्र निर्दिशन् रामः कथयति, वैदेहि। पश्य, समुद्रोऽयं अस्य प्रेयस्यो नद्यश्चापि स्वभावत एव चञ्चला लज्जाविरहिता भूत्वा स्वकीय मुख्यस्ये समर्पयन्ति चुम्बनार्थम्। एवमसौ समुद्रस्तासामधरोष्पानं करोति कारयत् ।

व्याकरण- मुखार्पणेषु मुखस्यार्पण मुखार्पण तेषु (८० तत्पु०) प्रकृतिगल्भाः- प्रकृत्या प्रगल्भाः (तृ० तत्पु०) तरङ्गाधरदानदक्षः तरङ्ग एवं अधरः पुरङ्गधरः तस्य दाने दक्षः (बहु०)। अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः न अन्येषाम् सामान्या अनन्यसामान्या कालत्रेषु वृत्तिः कलत्रवृत्तिः, अनन्य सामान्या कलत्रवृत्तिः यस्य सः- अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः । पाययते-पा पाने धातु से ण्यन्त प्रयोग में परस्मैपद का नित्य निषेध हो जाने के कारण ण्यन्त पा धातु का आत्मनेपदी लट् लकार प्र० पु० ए० व०। सिन्धूः में गतिबुद्धि प्रत्यवसानार्थ० इत्यादि सूत्र से द्वितीया विभक्ति हुई है।

विशेष-कामशास्त्र में रतिकाल में पति-पत्नी द्वारा परस्पर अधर पान का उल्लेख किया गया है तदनुसार ही कवि ने यहाँ समुद्र और नदियों में पत्नी पति के व्यवहार का आरोप कर उनमें अधरपान की क्रिया का वर्णन किया है उसकी सङ्गति के लिए समुद्र की तरङ्गों और नदियों की तरङ्गों में अधरोष्ठ का आरोप किया है।

नदियों को प्रकृति प्रगल्भ बताकर कवि ने प्रौढ़ा नायिका के रूप में उनका चित्रण किया है। साथ ही समुद्र का धीर ललित नायक के रूप में धृष्ट स्वरूप चित्रित किया है-क्योंकि वह अकेले ही अनेक नदी रूपी स्त्रियों का अधरपान करता है और उन्हें कराता है-यह अर्थ सिन्धूः में बहुवचन के प्रयोग से ध्वनित होता है।

कवि ने प्रकारान्तर से राम के हृदय में जो पुष्पक विमान के एकान्तस्थल में सीता के साथ थे, काम भाव की अभिव्यक्ति या जागृति का सूक्ष्म रूप में संकेत किया है। क्योंकि वाणी मनः स्थिति की प्रकाशिका होती है।

अलंकार-यहाँ समासोक्ति अलंकार है जिसमें समुद्र और नदियों पर नायक नायिका के व्यवहार का आरोप किया गया है।

**ससत्त्वमादाय नदीमुखाम्भः संमीलयन्तो विवृताननत्वात्।
अमी शिरोभिस्तिमयः सरन्ध्रै रुध्वं वितन्वन्ति जलप्रवाहान् ॥१०॥**

अन्वयः - अमी तिमयः विवृताननत्वात् ससत्त्वं नदीमुखाम्भः आदाय सम्मीलयन्तः सरन्ध्र शिरोभिः जलप्रवाहान् ऊर्ध्वं वितन्वन्ति ।

शब्दार्थ-अभी = ये (समुद्र में रहने वाली)। तिमयः = विशालकाय मछलियाँ। विवृताननत्वात् = मुखों के खुले होने के कारण। ससत्त्वम् = जीवों से (जल जन्तुओं से) युक्त। नदीमुखाम्भः - नदियों के मुहानों के जल जल को। आदाय पीकर (मुख में भरकर)। सम्मीलयन्तः = मुखों को बन्द करती हुई। सरन्ध्रैः छिद्रयुक्त। शिरोभिः -मस्तकों से। जल प्रवाहान् = पानी की धाराओं को। ऊर्ध्वम् ऊपर की ओर (फब्बारे के रूप में)। वितन्वन्ति फैला रही हैं।

अनुवाद-ये तिमि नामक बड़ी-बड़ी मछलियाँ (अपने) मुखों के खुले होने के कारण, जल जन्तुओं सहित नदियों के मुहानों के पानी को (मुख में) भरकर (मुख) बन्द करते हुए छिद्र युक्त सिर (के ऊपर भाग) से जलधाराओं (के रूप में उन जलों) को छोड़ रही हैं।

भावार्थ-राम, सीता से कहते हैं कि इस समुद्र में तिमि नामक विशालकाय मछलियाँ रहती हैं जो कि अपने खुले हुये मुख में पहले तो छोटे-छोटे जल-जीवों सहित समुद्र के जल को भर लेती हैं, और फिर मुख बन्द करके अपने मस्तक के छिद्रों द्वारा उस जल को फब्बारे के रूप में ऊपर की ओर फैलाती हैं, इस प्रकार ये बड़ा सुन्दर दृश्य उपस्थित कर रही हैं।

संस्कृत टीका-अमी तिमयः समुद्रे समुपलभ्यमानाः एतन्नमका विशालाः मत्स्यविशेषाः "अस्ति मत्स्यस्तिमिनमि शतयोजनमायतः" इति विवृत मनावृतम्

आननं मुखं येषान्ते, तेषां भावः तस्मात् विवृताननत्वात् विस्तृतमुखहेतोरित्यर्थः। ससत्वं: सत्त्वैः जलजन्तुभिः सहितमिति ससत्वं, नदीनां सिन्धूना मुखानि सम्मिलनस्थानानि तेषामम्भो जलमिति नदीमुखाम्भः, तत् आदाय गृहीत्वा सन्नोलयन्तश्चञ्चु पुटानि संघट्टयन्तो मुखानि पिधायेत्यर्थः। रन्ध्रेण छिद्रेण सहितमिति सरन्ध्र तैः सरन्ध्रः" छिद्रान्वितैरित्यर्थः । शिरोभिः = मस्तकैः जलप्रवाहान् जलधाराः ऊर्ध्व उपरिदेशे वितन्वन्ति = प्रक्षिपन्ति । तिमयो जलधारायन्त्रवदाचरन्तीति व्यज्यते ।

संस्कृत सरलार्थ-रामः कथयति सदस्मिन् समुद्रजले निवासिन स्तिमिनामका विशाल मत्स्यविशेषाः स्वमुखानि विवृत्य, प्रथमं मत्स्यादिजीव सहितं समुद्र जलं गृहीत्वा, तदनु स्वमुखानि पिधाय सरन्त्रैः स्वकीयैः मस्त कैस्तज्जल मुपरिदेशे धारायन्त्ररूपेण विस्तारयन्ति। एवं ते मनोहरं दृश्यं दर्शयन्ति।

व्याकरण-ससत्त्वम्-सत्त्वैः सहित मिति ससत्त्वम् (अव्ययीभाव)। नदी मुखाम्भः - नदीनां मुखानि (ष० तत्पु०) नदीमुखानामम्भः (ष० तत्पु०) विवृतम् आनम् येषान्ते विवृतानानाः तेषाम् भावः विवृताननत्वं ('तस्यभावस्त्वतलौसूत्र से) तस्मात् (पंचमी ए० न०) सरन्ध्रैः- रन्ध्रः णरन्ध्रण सहितमिति सरन्ध्र तैः (अव्ययी) जलप्रवाहान् - जलानां प्रवाहास्तान् (ष० तत्पु०)। अमी- अदस् शब्द का प्रथमा बहुवचन पुल्लिङ्ग का रूप है।

विशेष-कवि ने इस श्लोक में मछलियों की विशालता तथा उनकी जलधारायन्त अर्थात् फब्बारे की क्रिया युक्तता का वर्णन किया है। इससे कवि के व्यापक ज्ञान का आभास होता है। तिमि नामक मछली वर्तमान में हेल मछली के रूप में प्रसिद्ध है। नदियाँ समुद्र में जिस स्थान पर मिलती हैं उस स्थान को मुहाना कहते हैं उसे संस्कृत में नदी मुख कहा गया है। अलंकार- तिमि नामक मछलियों का स्वाभाविक वर्णन होने के कारण स्वभावोक्ति अर्थालंकार तथा अनुप्रास नामक शब्दालंकार है।

मातङ्गनकैः सहस्रोत्पतद्भिर्भिन्नाद्विधा पश्य समुद्रफेनान् ।

कपोलसंसर्पितया य एषां ब्रजन्ति कणक्षणाचामरत्वम् ॥ ११ ॥

अन्वय सहसा उत्पतद्भिः मातङ्गनसैः द्विधा भिन्नान् समुद्रफेनान् पश्य ये कपोलसंसर्पितया कर्णक्षणचामरत्वं ब्रजन्ति ।

शब्दार्थ - सहसोत्पतद्भिः- एकाएक उछलते हये। मातङ्गनकैः हाथियों समान ग्राहों से। द्विधा दो भागों में। भिन्नान् विभक्त। समुद्रफेनान्= समुद्र को। पश्य देखो। ये जो समुद्रफेन। एषां नाकों के। कपोलसंसर्पितया=ग स्थल के समीप स्थित होने से। कर्णक्षण चामरत्वं कानों में क्षणभर के लिये चारमरभाव को। ब्रजन्ति = प्राप्त होते हैं।

अनुवाद-(इस समुद्र में) एकाएक उछलते हुए हाथियों के समान (विशाल ग्राहों से दो भागों में बँटे हुए फेनों को देखो, जो (फेन) इन ग्राहों के गण्डस (कपोल) को स्पर्श करने के कारण क्षणभर के लिये कानों में चामर (चंवर) रूपता प्राप्त हो रहे हैं।

भावार्थ-राम, सीता से कहते हैं कि वैदेहि ! इन समुद्र के झागों को देखो जो सहसा उछलते हुए विशालकाय नक्रों के द्वारा द्विधा विभक्त हो गये हैं ये झाग जब के कानों का स्पर्श करते हैं तो यह उनके कर्ण चामरों के समान जान पड़ते हैं।

संस्कृत टीका - सहसा = अकस्मादेव, उत्पतद्भिः उच्छलिद्भिः मातङ्गा इव नक्रार मातङ्गनकैः = हस्तिसदृशग्राहैः द्विधा विभक्तान् भागद्वयेन भिन्नान् समुद्र फेनान् जलधि फेनान् पश्यावलोकय; ये = फेनाः; एषां = हस्ति सदृश जलनक्राणां कपोलसंसर्पित = गण्डस्थलसंसर्पणेन कर्णक्षणचामरत्वम् = श्रवणेषु क्षणमात्रं चामरभावम्, ब्रजन्ति प्राप्नुवन्ति।

संस्कृत सरलार्थ - रामः सीतां कथयति - वैदेहि ! इमान् समुद्रफेनान् त्वमवलोक ये सत्पतद्भिः विशालकायैः नक्रैः द्विधा विभक्ताः सन्ति। इमे फेना यदा नक्रान गण्डस्थलस्पर्श कुर्वन्ति तदेव क्षणं तेषां नक्रणाम् कर्णचामरत्वं यान्ति।

व्याकरण-उत्पतद्भिः- उत् + पत् + शतृ (तृ० बहु० व०) । भिन्नान्-भद् क्त (द्वि० बहु० व०)। समुद्रफेनान् - समुद्रस्य फेना स्तान्। (८० तत्पुः संसर्पितया-सं सपन्तीति संसर्पितया यहाँ हेत्वर्थ में तृतीया विभक्ति। कर्णक्षणचामरत्वम्-चामरस्य भाव चामरत्वम्, चामर त्व; क्षण चामरत्वमिति क्षणचामर कर्णेषु क्षणचामरत्वमिति कर्णक्षणचामरत्वम् (तत्पु०)।

विशेष-कवि ने यहाँ ग्राहों को हाथियों के समान वर्णित किया है। हाथी जब सजाया जाता है तो उसके कानों में चमरी गाय के बालों से बने चामर (भँवर) लटका दिये जाते हैं। यहाँ समुद्र का श्वेतफेन जो कि ग्राहों के ऊपर को उछलने पर दो भागों में बँट गया था उनके कानों के समीप कपोल को छू रहा था अतः बहु श्वेत चामरों की शोभा प्राप्त कर रहा था।

अलंकार-यहाँ मातङ्गनक्रः में लुप्तोपमा अलंकार है जिसमें उपमावाचक 'इव' का लोप है। इसी प्रकार फेन में चामर का अभेदारोप करने से रूपक अलंकार है। ये दोनों अलंकार वर्णनीय समुद्र की शोभाभिवृद्धि करने के कारण उसकी अङ्गता को प्राप्त करते हैं। साथ ही नक्र की उपमा मातङ्ग से देने के कारण ही फेन में चामरारोप उचित प्रतीत होता है। अतः परस्पर अङ्गाङ्गि भाव संकरालंकार यहाँ है।

वेलानिलाय प्रसूता भुजङ्गा महोर्मि विस्फूर्जधुनिर्विशेषा

सूर्याशुसम्पर्कसमृद्धरागैर्व्यज्यन्त एते मणिभिः फणस्थैः ॥ १२ ॥

अन्वय-वेलानिलाय प्रसूताः महोर्मिविस्फूर्जधुनिर्विशेषाः एते भुजङ्गाः सूर्याशुसम्पर्कसमृद्धरागैः मणिभिः फणस्थैः व्यज्यन्ते ।

शब्दार्थ- वेलानिलाय = तटवर्ती हवा खाने के लिए। प्रसूताः बाहर निकले कि हुए। महोर्मिविस्फूर्जधुनिर्विशेषाः = बड़ी बड़ी तरङ्गों की उफानसहित घरघराहट के समान । एते = ये । भुजङ्ग = सर्प । सूर्याशुसम्पर्कसमृद्धरागैः = सूर्यकिरणों के स्पर्श से अधिक चमकने वाली। फणस्थैः फणों में विद्यमान। मणिभिः = मणियों से।

अनुवाद- समुद्र तट की वायु के पान के लिए (तीर पर) बाहर निकले हुए, बड़ी-बड़ी लहरों की उफानसहित घरघराहट के समान ये सर्प, सूर्य किरणों के सम्पर्क से अधिक चमकने वाली अपनी फणास्थित मणियों से पहचाने जाते हैं।

भावार्थ- राम कहते हैं कि हे सीते! तट की वायु का पान करने के लिये बाहर निकले हुए ये समुद्री सर्प, विशाल लहरों को उफान भरी घरघराहट के समान होते हैं। समुद्र की विशाल लहरों और उन सर्पों में वैसे तो कोई भिन्नता नहीं देखी

जाती, किन्तु जब इनके फण की मणियां सूर्य की किरणों के सम्पर्क से और अधिक चमकने लगीं हैं, तब इन्हें सर्प रूप में सरलता से पहचान लिया जाता है।

संस्कृत टीका- वेलायाः तटस्यानिलाय वायुपानाय = वेलानिलाय प्रसूताः बहिर्निरर्गताः, महोर्मिणां विशालतरङ्गाणां विस्फूर्जथुरुद्रेको वृद्धिरित्यर्थः । तस्मात् निर्विशेषाः पृथग्ग्राह्या एकवर्णक्रियात्वाच्च। एते पुरो दृश्यमानाः भुजाभ्यां गच्छन्तीति भुजाङ्गाः सर्पाः, सूर्यस्यांशवः सूर्याशिवः रविकिरणाः तेषाम् सम्पर्केण समृद्धो वद्धितो रागः कान्तिः येषान्तैः तादृशैः = प्रवृद्धदीप्तिभिः फणस्थैः शीर्षस्थैर्मणिभिः, व्यज्यन्ते पृथक्तया गृह्यन्ते।

संस्कृत सरलार्थ- तटवर्तिवायुपानाय यहिरागताः विशालतरङ्ग निर्घोष यादृशस्तरङ्गनिधौषो भवति तादृश एव सर्पाणां सोद्रेकध्वनि जयिते अतएव तरङ्गाभिन्ना एव प्रतीयन्ते। एतेषां भेदकास्तु सूर्यकिरणसम्पर्कप्रकाशिता स्तेषां मणय एव भवन्ति।

व्याकरण- वेलानिलाय- वेलाया अनिलः वेलनिलस्तस्थै (तत्पु०) + सु + क्त (प्र० १० १०) । भुजङ्गाः भुजाभ्यां गच्छन्तीति भुजङ्गाः। विस्फूर्जथः इति (घ० तत्पु०) तस्मात् निर्विशेषाः (तत्पु०) विस्फूर्जथः से अधुच् प्रत्यय। सूर्याशुसम्पर्कसमृद्ध रागैः सूर्यस्याशवः सूर्याशवस्तेषां सम्पर्क तत्पु०) तेन समृद्धः रागो येषां तैः (बहु)।

विशेष- सर्प वायुभक्षण करते हैं यह प्रसिद्धि है। अतः समुद्री सर्प भी वायु का भक्षण करने के लिये किनारे निकल आये हैं किन्तु उनका रंग लहरी उनकी लहराकर चलने की क्रिया भी लहरों की भाँति होने से उन्हें पृथक् पह कठिन था किन्तु सर्पों के मस्क में विद्यमान मणियों पर जब सूर्य की किरणें पड़तीं वे मणियाँ चमक उठती थीं जिससे ये सर्प हैं। इस प्रकार उन्हें पृथक् पहचाना जा था।

अलंकार- यहाँ तरङ्गों और सर्पों को एकरूपता के कारण सन्देह रहता है सूर्य किरणों के सम्पर्क से चमकती हुई मणियों से उनका निश्चयात्मक ज्ञान निश्चयान्त सन्देहालंकार व्यङ्ग्य है। किन्हीं आचार्यों ने यहाँ चन्द्रालोक में निर्दिष्टकार अलंकार माना है।

तवाधरस्पर्धिषु विद्रुमेषु पर्यस्तमेतत्सहसोर्मिवेगात् ।

ऊर्ध्वाङ्क रप्रोतमुखं कथञ्चित् क्लेशादपक्रामति शङ्खयूथम् ॥१३

अन्वय- तव अधरस्पर्धिषु विद्रुमेषु सहसा ऊर्मिवेगात् पर्यस्तम् ऊर्ध्वाङ्क शङ्खयूथं कथञ्चित् क्लेशात् अपक्रामति ।

शब्दार्थ- तव = तुम्हारे (सीता के)। अधरस्पर्धिषु = अधरोष्ठ से होद वाले अधरोष्ठ से समता करने वाले। विद्रुमेषु = विद्रु म मणियों मूंगों के ऊपर। सा एकाएक। ऊर्मिवेगात् = लहरों के वेग से। पर्यस्तम् = फैला हुआ (गिरा हुआ ऊर्ध्वाङ्क रप्रोतमुखम् = (विद्रुमों के) ऊपर उठे हुए अंकुरों से फँसे हुये मुख शङ्खयूथम् - शङ्ख समूह । कथञ्चित् = किसी भी प्रकार । क्लेशात् = कम्पि अपक्रामति = अलग हो रहा है।

अनुवाद - (हे सीते !) तुम्हारे अधरोष्ठ से होड़ करने वाला अर्थात् अध समान (लाल वर्ण वाले) मूंगों के ऊपर एकाएक लहरों के वेग से गिरा हुआ, रिमों के ऊपर को उठे हुये अङ्कुरों में बिद्ध मुखवाला (फँसा हुआ) शङ्ख समूह किसी पाप्रकार बड़ी कठिनाई से (उनसे) अलग हो जाता है।

भावार्थ- राम, सीता से कहते हैं कि तुम्हारे अधरोष्ठ से समानता करने वाले अङ्कुरों में फँस जाते हैं, तब ये बड़ी कठिनाई से ही उनसे अलग हो पाते हैं। यह मों पर जब लहरों के वेग से फँके गये शङ्ख समूह, ऊपर उठे हुये विद्रुम लाल मणियों लोक कवि के सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण का परिचायक है।

संस्कृत टीका (सीते!) तव अन्धरेण स्पर्धन्ते तच्छीलाः अधरस्पर्धनः तेषु त्वर्धिषु तवाधरोष्ठसदृशेषु विद्रुमेषु प्रवालेषु, सहसा ऊर्मिवेगात् = अकस्मात् तरंगवेगात् मस्तम् प्रक्षिप्तम् ऊर्ध्वाङ्क रैः = ऊर्ध्वमुखप्ररोहैः प्रोतं विद्ध मुखं वदनं यस्य तत् तादृशं, नामेतन्नामकानां जलजन्तूनां यूथ वृन्दम् शङ्खयूथम्, कथञ्चिद् येनकेन प्रकारेण, पक्रामति = अमसरति, तेभ्योऽङ्कुरेभ्यः पृथग्भवतीत्यर्थः ।

संस्कृत सरलार्थ-रामः सीता कथयति, वैदेहि ! अत्रत्या विद्रुममणयः तो बाधयोष्ठसमाना दृश्यन्ते, एतेषां विद्रुमाणाम् ऊर्ध्वमुखप्ररोहेषु समुद्रतरंगवेग वंशात् सहसा जाक्षिप्तः शङ्खसमूहः विद्धमुखो जायते, अत एवायं काठिन्येनैव तेभ्यो दूरं भवति ।

व्याकरण- ऊर्ध्वाङ्करप्रोतमुखम् = ऊर्ध्व च तदङ्करमूर्ध्वाङ्करं (कर्मधां) ऊर्ध्वाङ्क रेषु प्रोतं मुखं यस्य तत् रुत्यु० गर्भित बहुः) । शङ्खानां यूथम् (ष०

तत्पु०) । प्रोतम् = प्र + वे + क्त, सम्पत्रसारणेन कारस्य उकारे, एकारस्य च पूर्वरूपे = प्रोतम् । पर्यस्तम् = परि + अस् + क्त प्रत्ययः

विशेष- समुद्र में मूंगे की लतायें होती हैं जिनके अङ्कर ऊपर को ओर रहते हैं। इसी कवि समय प्रसिद्धि है। उन अङ्कुरों पर जब शङ्ख नामक समुद्री कीड़े लहरों के वेग गिर जाते हैं तो उनका मुख उन अङ्कुरों से बिद्ध हो जाता है। क्योंकि शङ्ख नामक कीड़े हे सम्पूर्ण शरीर पर कठोर परत होती है किन्तु मुख खुला रहता है उसी के सहारे वह आगे बढ़ता चलता है। कवि भी समुद्री जीव-जन्तुओं से अभिज्ञता का परिचय मिलता है।

अलङ्कार-यहाँ मूंगे को अधरोष्ठ के समान बतलाने के कारण प्रतीव नामक अलङ्कार है क्योंकि यहाँ प्रसिद्ध उपमान विद्रुम को उपमेय और अधर को उपमान बना दिया गया है।

प्रवृत्तमात्रेण पयांसि पातुमावर्तवेगाद् भ्रमता घनेन ।

आभाति भूयिष्ठमयं समुद्रः प्रमथ्यमानो गिरिणेव भूयः ॥१४॥

अन्वय- पयांसि पातुं प्रवृत्तमात्रेण आवर्त वेधात् भ्रमता घनेन अयं समुद्रः भूयः गिरिणा प्रमथ्यमानः इव भूयिष्ठम् आभाति ।

शब्दार्थ- पयांसि -जलों को। पातु -पीने के लिए। प्रवृत्तमात्रेण- करने वाले। अवर्तवेगात् = भँवरों के वेग से। भ्रमता = अथ समुद्रः घूमते हुए। घनेन - यह सागर। भूयः = फिर से। गिरिणा पर्वत से। प्रमथ्यमार- जाता हुआ। इव सा- (समान)। भूयिष्ठम् अत्यन्त । आभाति = सुशोभित है।

अनुवाद- (समुद्र के) जल के पीने के लिए चेष्टा मात्र करने वाले भँवरों के वेग से घूमते हुए मेघ से (युक्त) यह समुद्र फिर से पर्वत द्वारा मन हुआ-सा अत्यन्त सुशोभित हो रहा है।

भावार्थ- राम, सीता से कहते हैं कि वैदेहि ! जब मेघ समुद्र जल ग्रह की चेष्टामात्र ही करता है, तभी वह समुद्र में उठने वाली भ्रमरियों से घूमने लग समय समुद्र में घूमते हये मेघ को देखकर ऐसा प्रतीत होता है. कि यह सम मन्दराचल से मथा जा रहा हो।

संस्कृत टीका-पयांसि = समुद्र जलानि, पातुं = पान कर्तुम्, प्रवृत्तः उद्यतेनैव सता नतु पीतवता, आवर्त वेगात् = जल भ्रमि प्रभावात्, भ्रमता = भ्रम धनेन = मेघेन, अयम् = पुरो दृश्यमानः समुद्रः सागरः, भूयः पुनरपि मन्दरेणैतन्नामकेन पर्वतविशेषेण, प्रमथ्यमानः मन्थन क्रियायुक्तः इव, भूयिष्ठः आभाति = शोभते ।

संस्कृत सरलार्थ - जलग्रहणसमुद्यतेनैव सता परमावर्तवशा चचतुदिशम् मेघेन समुद्रोऽयं पुनरपि मन्दराचलेन प्रमथ्यमान इव प्रतीयते ।

व्याकरण- प्रवृत्तमात्रेण = प्रवृत्त एव प्रवृत्तमात्रः तेन प्र + वृत् + क्त। अन् = आर्वतस्य वेगः तस्मात् (ष० तत्पु०) भ्रमता = भ्रम् + शतृ (तृ० एकः भूयिष्ठम् = अतिशयार्थ में बहु शब्द से इष्ठन् प्रत्यय, बहु को भू आदेश तथा आगम कर भूयिष्ठ शब्द बना। प्रमथ्यमानः प्र + मथ् यक् + शानच्, मुक् इति प्रमथ्यमानः आभाति = आ + भा दीप्तौ लट् ।

विशेष- कवि ने यहाँ समुद्र के पौराणिक आख्यान की ओर संकेत नि तदनुसार समुद्रमन्थन में जिस प्रकार मन्दराचल की भ्रमि से समुद्र का पानी घूमत प्रकार यहाँ समुद्र का पानी पीने के लिए मेघ जब नीचे झुकता है तो भँवर केर घूमने लगता है जिसमें मेघ को भी घूमना पड़ता है। इस प्रकार समुद्र का जल भोस और पर्वत के समान मेघ भी घूमता था। अतः समुद्र मन्थन की पुनरावृत्ति सी हो रही हैं ।

अलंकार- यहाँ समुद्र के भँवर में समुद्र मन्थन क्रिया की उत्प्रेक्षा की गा में गिरि का सादृश्य व्यङ्ग्य है। इस प्रकार उत्प्रेक्षालंकार वाच्य और उपमा ।

दूरादयश्चक्रनिभस्य तन्वी, तमालतालीवनराजिनीला।

आभाति बेला लवणाम्बुराशेर्धारानिबद्धेव कलङ्करेखा । ।१५।।

अन्वय- अयश्चक्रनिभस्य लवणाम्बुराशेः दूरात् तन्वी तमालताली वनराजिनीला बेला धारानिबद्धा कलङ्क रेखा इस आभाति।

शब्दार्थ- अवश्चक्रनिभस्य -लौह चक्र के समान। लवणाम्बुराशेः- तमाल एवं ताड़ के वक्षों की वन पंक्ति से । दूरात् -दूर से। तन्वी पतली दीखने वाली। तमालताली- वनराजिनीला । बेला = किनारे की भूमि। धारानिबद्धा = चक्र के

किनारे लगी हुई। कलङ्क रेखा जंग की काली रेखा के। इव समान। आभाति = प्रतीत होती है।

अनुवाद- लौहचक्र के समान प्रतीत होने वाले खारे समुद्र की दूर से पतली प्रतीत होने वाली, तमाल और ताड़ वृक्षों वाली वन पंक्ति से श्याम रंग की समुद्र तट भूमि, चक्र के किनारे लगी हुई काली जंग की रेखा के समान प्रतीत होती है।

भावार्थ- राम, सीता से कहते हैं कि लोकचक्र के समान, क्षार समुद्र की, दूर होने के कारण सूक्ष्म एवं तमाल तथा ताड़ वनों की पंक्तियों से श्याम वर्ण वाली, समुद्र तट भूमि, चक्रधारा पर लगी हुई जंग की रेखा के समान प्रतीत होती है। अर्थात् समुद्र के तौर की भूमि ऐसी प्रतीत होती है कि मानो चक्रधार पर लगी हुई जंग की काली रेखा हो।

संस्कृत टीका -अयसो लौहस्य चक्रमयश्चक्र तद्वन्निभाति प्रतीयते यः तस्य = लोहचक्रसदृशस्येत्यर्थः, तन्वी सूक्ष्मा, लवणाम्बुराशेः = क्षार समुद्रस्य, दूरात् = - विमानार्दातदूरस्थितत्वात् । तमालतालीवनराजिनीला तमालानां च तालीनां च वनानि तेषां राजिभिः पंक्तिभिर्नीला श्यामवर्णा = तमाल तालीवन श्रेणिश्यामलवर्णा, वेला तटभूमिः, धारानिबद्धा = धाराचक्रप्रान्तभागः तस्मिन्निबद्धा आश्रिता चक्रधाराश्रिता, कलङ्क रेखा - मालिन्य रेखा इव, आभाति = प्रतीयते ।

संस्कृत सरलार्थ- रामः कथयति हे वैदेहि ! लौहचक्रतुलस्य क्षारसागरस्य दूरी भावात् तनु भावेन प्रतीयमाना अथ च तमाल तालीवन श्रेणिश्यामला तीरभूमिः चक्र धाराश्रिता कलङ्क रेखेव प्रतीयते ।

व्याकरण- अयश्चक्रनिभस्य अयसः चक्रम्, अयश्चक्रम् तेन निभस्य (ष०तत्पु०) तेन सदृशस्य इति । तमालताली वनराजिनीला = तमालाश्च ताल्यश्चेति तेषाम् वनानि तेषाम् राजभिर्नीला। लवणाम्बुराशेः = लवणं च तदम्बु लवणाम्बु (कर्मधा०) लवणाम्बूनां राशिः तस्य (ष० तत्पु०)। धारानिबद्धा = धारायां निबद्धा (सप्त० तत्पु०) - कलङ्क रेखा = कलङ्कस्य रेखा कलङ्क रेखा कलङ्क शब्द मलिनार्थं वाची है' मालिन्यरेखां कलङ्कमाहुः" इति दण्डी निभसंकाशनीकाशप्रतीका शोप मादयः। वीथ्यालिरावलिः पंक्ति श्रेणिरेखास्तु राजयः । इत्यमरः ।

विशेष- पुष्पक विमान से नीचे अति दूर समुद्र तीर की भूमि तमाल ताड़ आदि वृक्षों से कृष्ण वर्ण की तथा दूर होने के कारण अत्यन्त पतली एक रेखा के

समान वैसीही प्रतीत हो रही थी जैसे किसी लोहे के चक्र के किनारे पर लगी हई कोई श्याम रेखा हो।

वेलानिलः केतकरेणुभिस्ते, सम्भावयत्याननमायताक्षि ।

मामक्षमं मण्डनकालहानेर्वेतीव बिम्बाधरबद्धतृष्णम् । ।१६।।

अन्वय- आयताक्षि ! वेलानिलः केतकरेणुभिः ते आननं सम् बिम्बाधरबद्धतृष्णं भाम् मण्डनकालहानेः अक्षमं वेति इव ।

शब्दार्थ- आयताक्षि - हे विशाल लोचने। वेलानिलः = समुद्र तट केत रेणुभिः = केतकी पुष्पों के पराग से। तें = तुम्हारे (सीता के)। आननम् को। सम्भावयति = अलंकृत कर रही है। बिम्बाधरबद्धतृष्णम् = बिम्बः समान तुम्हारे अधरोष्ठ पान में लोलुप। माम् = मुझको । मण्डनकालहानेः = श्रृंगा वाले विलम्ब को। अक्षमम् = सहने में असमर्थ। वेति इव = जानती सी है।

अनुवाद- हे विशाल लोचने सीते ! समुद्रतट की वायु केतकी पुष्पों के तुम्हारे मुख को अलंकृत कर रही है। (मानो वह) तुम्हारे बिम्बफल के सदृश अ पान में लोलुप मुझको श्रृंगार में होने वाले विलम्ब को सहन करने में असमर्थ व है।

भावार्थ-राम कहते हैं कि हे विशाल नेत्रों वाली सीते, यह समुद्र तट केतकी के पुष्पों के पराग से तुम्हारे मुख को अलंकृत कर रहा है, वह मानो इस वह मुझको, तुम्हारे द्वारा किये जाने वाली श्रृंगार क्रिया में होने वाले विलम्ब -करने में असमर्थ जानता है, अर्थात् वायु यह जानता है कि तुम्हारे द्वारा श्रृंगारे वाला विलम्ब मुझे सहन न होगा अतः वह स्वयं तुम्हारा श्रृंगार कर रहा है।

संस्कृत टीका- आयताक्षि-आयते विस्तृते अक्षिणी ? यस्याः सा तल आयाताक्षि = विशाललोचने ! वेलानिलः - समुद्रतटवर्ती पवनः केलकस्यैतन पुण्यस्य रेणुभिः = परागैः, ते = तव सीतायाः आननं = वदनम्, सम्भावयति अतो इत्थं प्रतीयते यथा अयं वायुः बिम्बस्य एतन्नामकस्य रक्तवर्णफलस्वेव अधो लोलपम्, माम् रामम्, मण्डनस्य क्रियायां या कालहानिः तस्याः मण्डनका बद्धा तृष्णा पिपासा येन तं बिम्बाधरबद्धतृष्णम् = बिम्ब फलसदृश सीता प्रसाधनजन्यविलम्बस्य, अक्षममसहमानं वेति इव = जानातीव ।

संस्कृत सरलार्थ- विशाललोचने सीते । अयं सागरतीर वायः तब धरपानलोलुपं मां शृंगारप्रसाधनजन्यविलम्बासहमानमवगच्छन्निव स्वयमेव पुष्पपरा) स्त्वन्मुखमलंकरोति।

व्याकरण- आयते अक्षिणी यस्याः इति विग्रह बहुव्रीहि समासोत्तर समासान्तः बचप्रत्ययः, ततः षित्वाडीष प्रत्यय। आयताक्षी, सम्बोधने अम्बार्थेतिह्रस्वे आयताक्षि । विम्बमिवाधरः इति विम्बाधरः (उपमान पूर्वपद कर्मधारयः। कालहानेरित्यत्र कर्मणि बाच्छी, वेत्ति = विज्ञाने लटि रूपम्।

विशेष- कवि ने इस श्लोक में समुद्रतटवर्ती पवन का मानवीकरण कर उसमें म के नर्मसचिव की स्थिति का आरोप किया है। क्योंकि वह पवन सीता के अधरोष्ठ रे प्यासे और विलम्ब न सह सकने वाले राम के लिए स्वयं ही केतुकी पुष्प पराग से । सीता के मुख को अलंकृत कर देता है। इस प्रकार पवन का उद्दीपन रूप और दक्षिणी समुद्र तट पर केतुकी पुष्पों की अधिकता भी विदित होती है। यहाँ राम की इच्छा को मानो पवन जान गया था। इस प्रकार की सम्भावना करने कारण उत्प्रेक्षा अलंकार है।

एते वयं सैकतभिन्नशुक्तिपर्यस्तमुक्तापटलं पयोधेः ।

प्राप्ता मुहूर्तेन विमानवेगात्कूलं फलावर्जितपूगमालम् ॥१७॥

अन्वय-एते वयं सैकतभिन्नशुक्तिपर्यस्तमुक्तापटलं फलावर्जितपूगमालं पयोधेः कलं विमानवेगात् मुहूर्तेन प्राप्ताः।

शब्दार्थ - एते = ये। वयं = हम लोग। सैकतभिन्नशुक्तिपर्यस्तमुक्तापटलम् वालुकामय तट पर फूटी हुई सीपियों के द्वारा चारों ओर बिखरे हुये मोतियों के समूह सल्वाले। फलावर्जित पूगमालम् = फलों से झुके हुए सुपारी वृक्षों की पंक्ति वाले। पयोधेः समुद्र के। कूलं किनारे पर। विमानवेगात् = वायुयान की तेज गति के कारण।

अनुवाद-ये हम लोग (राम, सीता, लक्ष्मण आदि) वालुकामय तट पर फूटी हुई सीपियों के द्वारा बिखरे हुए मुक्ताफलों अर्थात् मोतियों के समूह वाले एवं फलों के कारण नीचे को झुके हुए सुपारी वृक्षों के समूह वाले समुद्र के (उत्तरी)

तट पर, वायुयान की संमतीव्रगति के कारण, थोड़ी ही देर में अर्थात् शीघ्र ही पहुँचे गए हैं।

शब्दार्थ-राम सीता से कहते हैं कि हम लोग विमान की तीव्र गति के कारण थोड़ी ही देर में समुद्र के उस तट पर आ गये हैं जहाँ समुद्र सीपियों से निकले हुए मोती बिखे हुये हैं और सुपारी वृक्ष फलभार से नीचे झुके हुये थे।

संस्कृत टीका-एते वयं रामसीतालक्ष्मणादयः; सैकतेषु वालुकामयतटे भिन्नाभ्यः स्फुटिताभ्यः शुक्तिभ्यः पर्यस्तानां परितो विकीर्णानां मुक्तानां मौक्तिकानां पटलानि समूहाः यस्मिंस्तत् - सैकतभिन्नशुक्तिपर्यस्तमुक्तापटलम्, फलैः पूगफलैरावर्जिताः आनमिताः पूगमाला पूगवृक्षसमूहो यस्मिंस्तत्, फलावर्जिताः आनमिताः पूगमाला यस्मिंस्तत्, फलावर्जितपूगमालम्, पयोधेः = समद्रस्य कूलम् = तटम् विष्णु नाम वायुयानस्य, वेगाम् तीव्रगतित्वात् मुहूर्तेनाल्पकालेनैव घटिकद्वयेन वा प्राप्ताः नेष्ट विकीर्ण मुक्ताफलोपेतं फलभारनमितपूगवृक्षोपेतं कूल विमानस्य तीव्र गत्य प

व्याकरण- सैक तम् - सिकता + भिद् भव तद्वित अण प्रत्ययः आदि वृद्धि । भिन्नाः + दकारस्य, प्रत्यय तकारस्य च नत्वे भिन्नम्, पर्यस्त - परि = अस् + क्त। पयो यिन्ते यस्मिन् तस्य- पयस् धा धातोः अधिकरणे कि प्रत्ययः, आ विमानवेगात्-अत्र होती पञ्चमी। प्राप्ताः प्र आप् + क्त। महतेन इथ तृतीया।

विशेष-भारत के दक्षिणी समुद्र तट पर आज भी सुपारियों के सुन्दरक यह भी स्पष्ट होता है कि पुष्पक विमान की गति बहुत तीव्र थी।

कुरुष्व तावत्करभोरु पश्चान्मार्गे मृगप्रेक्षिणि ! दृष्टिपातम् ।

एषा विदूरीभवतः समुद्रात्सकानना निष्पततीव भूमिः ॥१८॥

अन्वय-करभोरु ! मृगप्रेक्षिणि ! तावत् पश्चात् मार्गे दृष्टिपातं कुरु। विदूरी भवतः समुद्रात् एषा सकानना भूमिः निष्पतति इव ।

शब्दार्थ-करभोरु ! = हे करभ के सदृश जंघाओं वाली। तावत् = तब तक अर्थात् कुछ। पश्चात् = पीछे की ओर। मार्गे दृष्टिपातम् - दृष्टि का गिराना (देखना)। कुरु = करो। विदूरीभवतः = हो जा रहे। समुद्रात् = सागर से। एषा = यह। सकानना = वन के सहित पृथ्वी । निष्पतति इव = निकल सी रही है।

अनुवाद-हे करभोरु ! हे मृगनयनी (सीते) तनिक पीछे के रास्ते दृष्टिपात करो। उत्तरोत्तर दूर होते हुये समुद्र से, यह वन के सहित भूमि निकल प्रतीत हो रही है।

भावार्थ-करभ (मणिबन्ध से लेकर कनिष्ठिका पर्यन्त का भाव) सुन्दर जंघाओं वाली एवं मृग के सदान सुन्दर चितवन वाली सीते ! आप तनिक ओर दृष्टि डालिये, वन समेत यह भूमि, अधिकाधिक दूर होते हुये समु निकली हुई-सी प्रतीत होती है

संस्कृत टीका-पूगमाला पूगवृक्षसमूहो यस्मिंस्तत्, फलावर्जिताः आनमिताः पूगमाला यस्मिंस्तत्, फलावर्जितपूगमालम्, पयोधेः = समद्रस्य कूलम् = तटम् विष्णु नाम वायुयानस्य, वेगाम् तीव्रगतित्वात् मुहूर्तेनाल्पकालेनैव घटिकद्वयेन वा प्राप्ताः नेष्ठ विकीर्ण मुक्ताफलोपेतं फलभारनमितपूगवृक्षोपेतं कूल विमानस्य तीव्र

विशेष-भारत के दक्षिणी समुद्र तट पर आज भी सुपारियों के सुन्दरक यह भी स्पष्ट होता है कि पुष्पक विमान की गति बहुत तीव्र थी।

क्वचित्पथा सञ्चरते सुराणां क्वचिद्घनानां पततां क्वचिच्च ।

यथाविधो मे मनसोऽभिलाषः प्रवर्तते पश्य तथा विमानम् ॥१९॥

अन्वय-विमानं मे मनसः यथाविधः अभिलाषः तथा प्रवर्तते इति त्वम् पश्य, विचित् सुराणां पथा क्वचित् घनानां ववचित् च पततां (पथा) संचरते।

शब्दार्थ-यथाविधः जैसी। अभिलाषाः = इच्छा होती है। तथा = उसी प्रकार (उधर से)। प्रवर्तते = चलता है। पश्य = देखो। क्वचित् = कहीं। सुराणाम् - देवताओं के। पथा मार्ग से। क्वचित् = कहीं। घनानाम् = मेघों (के मार्ग से)। क्वचित् = कहीं।

अनुवाद - (सीते ! यह) विमान मेरे मन की इच्छा के अनुकूल (ही) चलता है देखो (यह) कहीं देव मार्ग से कहीं मेघ मार्ग से और कहीं पक्षियों के मार्ग से चलता है।

भावार्थ - राम कहते हैं कि हे सीते। यह विमान मेरी इच्छा के अनु देवमार्ग से कहीं मेघ मार्ग से और कहीं पक्षिमार्ग से चलता है अर्थात्, करता हूँ उसी प्रकार उसी मार्ग से चलता है।

संस्कृत टीका- (देवि सीते!) (इदम्) पुष्पकविमानम् से मनसः चित्तस्य यथाविधः यादृशः, अभिलाषः इच्छा भवति तवा तेनैव प्रकारेण मार्गेण, सञ्चरते याति, क्वचित् घनानां मेघानाम् पथा, क्वचिच्च पततां पि गच्छति, पश्य अवलोकयेदम् । इदं विमानं क्वचित् कुत्रचित् सुराणां देवान सञ्चरते। अतः इदम् में मनसोऽनुकूल गच्छतीति ।

संस्कृत सरलार्थ-रामः कथयित वैदेहि ! पश्य, इदं मे विमानम् में मने प्रयाति, अतः एवैदं क्वचित् देवमार्गेण याति, क्वचिन्मेघमार्गेण क्वचिच्च धावति। सर्वथैवेदं ममेच्छामनुसरति ।

व्याकरण-सञ्चरते- सम् उपसर्गपूर्वक चर् धातु से समस्तृतीयायु आत्मने पद लट् का प्रयोग हुआ है। अभिलाषः- अभ + लष् कान्तौ घञ् । यथाकि विधा (प्रकारः) यस्य सः। पतताम् - पतन्तीति पतन्तस्तेषाम् - पत् + शतृ ।

विशेष-कवि ने इसमें कभी बहुत ऊँचाई से कभी मध्य से और कभी से विमान के चलने का वर्णन करते हुये क्रमशः देव मार्ग, मेघ मार्ग और पक्षि मार्ग कल्पना की है।

असौ महेन्द्रद्विपदानगन्धिस्त्रिमार्गगावीचिविमर्दशीतः ।

आकाशवायुर्दिनयौवनोत्थानाचामति स्वेदलवान्मुखे ते ॥ २० ॥

अन्वय- महेन्द्रद्विपदानगन्धिः त्रिमार्गगावीचिविमर्दशीतः असौ आकाश मुखे दिनयौवनोत्थान् स्वेदलवान् आचामति ।

शब्दार्थ-महेन्द्रद्विपदानगन्धिः = इन्द्र के हाथी ऐरावत के मद से सुग त्रिमार्गगावीचिविमर्दशीतः = आकाश गंगा की लहरों के स्पर्श से शीतल। आ आकाशवायुः = आकाश पवन । ते मुखे = तुम्हारे मुख पर। दिनयौवनोत्थान् कारण उत्पन्न । स्वेदलवान् = पसीने की बूँदों को। आचामति = पी रहा है।

अनुवाद-इन्द्र के हाथी ऐरावत के मदजल से सुगन्धित आकाश गङ्गा बूँदों को पी रहा है अर्थात् सुखा रहा है।

भावार्थ- राम सीता से कहते हैं कि हे सीते ! तुम्हारे मुख पर मध्याह्न की गर्मी से उत्पन्न स्वेद कणों को यह वह आकाश वायु सुखा रहा है जो कि ऐरावत

के मदजल से सुगन्धित एवं आकाश गंगा की तरंगों के सम्पर्क से शीतल हो गया है।

संस्कृत टीका-महेन्द्रस्येन्द्रस्य यो द्विपः हस्ती ऐरावत स्तस्य दानस्य नदजलस्य महेन्द्रद्विपदानगन्धिः, त्रिभिर्मार्गैः गच्छतीति त्रिमार्गगा आकाशगङ्गा इव गन्धः यस्य सः = तस्याः आकाशगङ्गायाः बीचीनां तरंगाणां विमर्दनं संस्पणज शीतः शैत्ययुक्तः त्रिमार्गगावीचिविमर्दशीतः असौ आकाशवायुः नियत्वपनः तव = ते, मुखे आनने, दिनस्य यौवनं मध्याह्नः तस्मात् उत्थानुत्पन्नान् स्वदेलवान् स्वदे विन्दुन्, आचामति = हरति शोषयतोत्यर्थः ।

संस्कृत सरलार्थ-रामः कथयति, सीते! पश्य, मध्याह्न सूर्यातापेन तवानने समुत्पन्नान् स्वेदविन्दून् अयं स आकाशवायुः शौषयति यश्चास्ति ऐरावतमद जलगन्धिः एवञ्चाकाशगङ्गातरंगसम्पर्कशीतलः ।

व्याकरणादि-द्विपः = द्वाभ्यां मुखशुण्डाभ्यां पिबतीति द्विपः, द्वि पा पाने धातौः क प्रत्ययः, धातोराकार लोपः। दन्ती दन्तावलो हस्ती द्विरदोऽनेकपो द्विपः इत्यमरः । महेन्द्रद्विपदा नस्येव गन्धो यस्येति व्यधिकरणपदे बहुब्रीही 'उपमानाच्चेति समासान्तः इ प्रत्ययः- गन्धिः । त्रिमार्गगा = त्रिभिर्मार्गैः अच्छतीति त्रिमार्गगा अत्र आकाशवायुः वातीति वायुः = वा गतिगन्धनयोः धातोः औणादिक उण् प्रत्ययः, आतो युक् चिष्कृतोः इति युगागमः, आकाशे वायुः आकाशवायुः । दिनयौवनोत्थन् = दिनस्य यौवनं यौवनकालः यौवनपदेनात्र दिनस्थ मध्याह्नकालः लक्षणया लक्ष्येते। दिनयौवने उत्तिष्ठन्तीति दिनयौवनो त्यास्तान् दिनयौवनोत्थान्, अत्र दिनयौवन उद्+ स्था क प्रत्ययः। स्वेदलवान् = स्वेदस्य लवास्तान् स्वेदलवान्। स्त्रियां मात्रा ऋटिः पुंसि लंब लेशकाणर्णव इत्यमरः। आचामति = आङ् + चम् लट् तिप्, अत्र आङि चम् इति वक्तव्यम् इति वार्तिक नियसेन दीर्घः आचमतीत्यय लक्षणयात्र हरति, शोषयति वार्थः।

विशेष-राम ने सीता के मुख के मध्याह्न जन्म पसीने की बून्दों को सुखाने वाले आकाश पवन का वर्णन कर यह स्पष्ट कर दिया है कि विमान देवमार्ग में चल रहा था। यहाँ आकाश पवन का पसीने की बून्दों को सुखाकर श्रम हरण सामर्थ्य आकाश गंगा के स्पर्श से शीतल और ऐरावत के मद जल से सुगन्धित होने के कारण है। अतः साभिप्राय विशेषण होने के कारण परिकर अलंकार है।

करेण वातायनलम्बितेन स्पृष्टस्त्वया चण्डि ! कुतूहलिन्या ।
आमुञ्चतीवाभरणं द्वितीयमुद्भिन्नविद्युद्वलयो घनस्ते ॥ २१ ॥

अन्वय-चण्डि ! कुतूहलिन्या त्वया वातायनलम्बितेन करेण स्पृष्टः उद्भिन्नविद्युद्वलयः घनः ते द्वितीयम् आभरणम् आमुञ्चति इव । च त्वया तुम्हारे द्वारा (सीता द्वारा) । वातायनलम्बितेन खिडकी से बाहर।

शब्दार्थ- चण्डि ! हे कोपनशीले रूठ जाने वाली। कुतूहलिन्याको करेण हाथ के द्वारा। स्पृष्टः स्पर्श किया गया। उद्भिन्नविद्युद्वलयः चमक बिजली रूपी कंगन वाली। घनः मेघः। ते तुम्हारे (सीता के लिये)। द्विनं दूसरा। आभरणम्-आभूषण (कंगन) आमुञ्चति प्रदान करता है।

अनुवाद- हे कोपनशीले (सीते) कौतुकवती तुम्हारे द्वारा विमान के बाहर निकाले गये हाथ से स्पर्श किया गया, अतएव चमकती हुई बिजली रूप (कंगन) से युक्त, मेघ तुम्हें मानो दूसरा आभूषण प्रदान करती है।

भावार्थ-राम सीता से कहते हैं कि हे देवि सीते ! कौतूहल वंश विमान के गवाक्ष से निकालकर अपने हाथ से मेघ का स्पर्श किया तब चमक बिजली रूप कंगन को धारण करने वाले मेघ ने मानो तुम्हारे हाथ में दूसरा कंगन दिया हो। मेघ के साथ बिजली का होना स्वाभाविक ही है। कवि की कल्पना है³ बिजली ही उसका कंगन है। इस कंगन को उस मेघ ने सीता के द्वारा स्पर्श किये ज उनके हाथ में मानो पहना दिया था। एक कंगन तो उनके हाथ में था ही, यह बि दूसरा कंगन उनको मेघ ने अर्पित कर दिया था। अर्पण का कारण था सो कोपनशील होना, मानो मेघ जानता था कि सीता सहज ही रूठ जाने वाली है अर मनाने के लिये ही मानो उसने ऐसा किया था। जबकि सीता द्वारा समीपवर्ती मेघ का: करना उनके कौतूहल वश ही था। हाथ के द्वारा मेघ के स्पर्श किये जाने पर, मेघः बिजली का हाथ के चारों ओर गोलाकार चमक जाना भी स्वाभाविक ही है। कां यह अत्युत्तम उत्प्रेक्षा है।

संस्कृत टीका-चण्डि कोपनशीले ! कुतूहलमस्या अस्तीति कुतूहलिनं कुतूहलिन्या = कौतुकाविष्टया त्वया सीतया, वातायने विमानगवाक्षेला बहिरवस्त्रंसितेन, वातायनलम्बितेन करेण हस्तेन, स्पृष्टः = परामृष्टः, उद्भिन्न विदुः वलयं यस्य स उद्भिन्नविद्युद्वलयः प्रकटितविद्युत्कंकणः, मेघः = पयोधरः

ते द्वितीयं तवकरस्यकङ्गणातिरिक्माभरणमाभूषणम् आमुञ्च तीवार्पयतीवेत्युत्प्रेक्षा ।

संस्कृत सरलार्थ-रामः कथयति हे कोपनशीले वैदेहि ! मनोविनोदार्थिन्या विमानगवाक्षावसंस्त्रितेन हस्तेन स्पृष्टः अतः एवोद्भिद्याविभूतविद्युत्कंकणो मेन कोपनस्वभावभयभीतः सन्निव ते द्वितीय वलय मर्पयति।

व्याकरण-वातायनलम्बितेन - वातायने लम्बितः वातायनलम्बितः तेन,अयनम् वातायनं गवाक्षः। स्पृष्टः- स्पृश् + क्त। कुतूहलिन्या-कुतूहलमस्या आत विग्रहे कुतूहल शब्दात् "अतइनठनौ" सूत्रेण इनि प्रत्ययः स्त्रीत्वे डीप् कुतूहलिनी तु० बचने कुतूहलिन्या। उद्भिन्नं विद्युद्-लयः- विद्युत् एव वलयं विद्युद्वलयं उद्भिन्नं विद यस्यः सः (बहु०) आभरणम्-आ + भृ + ल्युट् । चण्डि चण्डते इति चडी-धातोः णिनि-डीप् । आमुञ्चति-आ + मुच्लू + लट्, शे मुचादीनामिति नुम् ।

विशेष-इस श्लोक में कवि ने सीता के लिए 'चण्डि' शब्द का प्रयोग किया है। "चण्डस्त्वत्यन्त कोपनः" इस अमर कोश के अनुसार चण्डि शब्द से अत्यन्त क्रुद्ध स्वभाववाली यह अर्थ विदित होता है। इस सम्बोधन की सार्थकता यह है कि मेघ सीता के क्रुद्ध स्वभाव के कारण ही मानो उसे विद्युत् बलय रूपी दूसरा आभूषण प्रदान कर उनके क्रोध को शान्त करने का प्रयत्न करता है। स्थिति यह है कि मेघ के मध्य से निकलते हुए विमान की खिड़की से जब सीता अपना हाथ बाहर निकाला है तो उसी समय मेघ में इस प्रकार बिजली चमकती है कि वह सीता के हाथ में दूसरे कंगन की प्रतीत होती है। इसीलिए कवि ने द्वितीय आभूषण की सम्भावना की है। यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार मुख्य एवं उसका उपकार विद्युद्वलय में रूपक है। इस प्रकार दोनों का अङ्गाङ्गिभाव संकर है।

अमी जनस्थानमपोढविघ्नं मत्वा समारब्धनवोटजानि ।

अध्यासते चीरभृतो यथास्वं चिरोज्झितान्याश्रममण्डलानि ॥ २२ ॥

अन्वय-अभी चीरभृतः जनस्थानम् अपोढविघ्नं मत्वा समारब्धनवोटजानि चिरोज्झितानि आश्रममण्डलानि यथास्वम् अध्यासते।

शब्दार्थ-अभी = ये। चीरभृतः वल्कलवस्त्रधारी (तपस्वी)। जनस्थानम् दण्डकारभ्य का विशेष भूभाग। अपोढविघ्नम् विघ्नरहित। मत्वा = मानकर।

समारब्धनवोटजानि = बनायी जा रही है नवीन झोंपड़ियाँ जिनमें ऐसे।
चिरौज्झितानि = बहुत काल से त्यागे हुए (रावणादि राक्षसों के भय से छोड़े हुए)।
आश्रममण्डलानि - आश्रम समुदायों को। यथास्व = अपने-अपने पूर्वाधिकार के अनुसार (जिस पर जिसका पहले अधिकार था उसी को)। अध्यासते निवास कर रहे हैं।

अनुवाद-ये वल्कलवस्त्रधारी तपस्वी दण्डकारण्य के विशेष भूभाग जन स्थान को (अब) विघ्नरहित मानकर बनायी जा रही है नवीन झोंपड़ियाँ जिनमें ऐसे (रावणादि राक्षसों के भय से) बहुत काल से त्यागे गये आश्रमों में अपने-अपने पूर्व अधिकारानुसार (पुनः) निवास कर रहे हैं।

भावार्थ-राम कहते हैं कि हे सीते, देखो, अब पुनः ये वल्कलवस्त्रधारी तपस्वी, जन स्थान को राक्षसों के विघ्नों से रहित जानकर, चिरकाल से त्यागे गये, अपने-अपने आश्रमों में पुनः नवीन झोंपड़ियाँ बनाकर रहने लगे हैं।

संस्कृत टीका-अभी पुरोदृश्यमानाः चीरभूतः वल्कलधारिणः (तपस्विनः) जनस्थानं दण्डकारण्यस्य भूभागविशेषम् अपोदविघ्नम् = विघ्नरहितम्। मत्वा ज्ञात्वा। समारब्धाः प्रारब्धाः नवाः नूतनाः उटजाः पर्णशाला येषु तानि-समारब्धनवोटजानि = निर्मायमाणनूतनपर्णशालानि चिरौज्झितानि रावणदिराक्षसभयाद् बहुकालात् परित्यक्तानि आश्रम मण्डलानि तपोवनस्थानानि, यथास्वं स्वमनतिक्रम्य यथापूर्वाधिकारमध्यास तेऽतितिष्ठन्ति स्वस्वाश्रमेषु पर्णकुटीः निर्माय तत्र सम्प्रति निर्विघ्नं निवसन्ति।

संस्कृत सरलार्थ- निर्विघ्नं जातम् इति ज्ञात्वा अत्रत्यास्तपस्विनः स्वस्वाश्रमेषु पुनः पर्णशाला निर्माय निवा।

व्याकरण-अपोदविघ्नम्-अपोदाः विघ्नाः यस्मात् तत् अपोदविघ्नम् (बहु०) समारब्धनवोटजानि समारब्धाः नवाः उटजाः येषु तानि (बहु०) । यथास्त्र-स्वमनतिक्रम (अव्ययी०) चिरौज्झितानि-चिरेणोज्झितानि (तृ० तत्पु०) अपोद सम्प्रसारण। चीरभूतः चीरं विभ्रतीति चीरभूतः चीर भू क्विप्, तुक् । मत्वा-मर + क्त्वा । समारब्ध सम् आरभक्त। उटजाः पर्णशालाः पर्णशालोटजोऽस्त्रियाम इत्यमरः । अध्यासते-अधि + आस् लट्, अस्य योगे मण्डलानीत्यत्र द्वितीया।

विशेष-दण्डकारण्य का जनस्थान मुख्यतः तपस्वियों का तपोवन था किन् रावण मारीच आदि राक्षसों के भय से वहाँ के तपस्वी अपने आश्रमों को छोड़ छोड़

भाग गये थे, अब रावण के विनाश से निर्विघ्न होने के कारण वे तपस्वी पुनः आश्रम बना का रहने लगे हैं। यहाँ राम ने व्यडय पद्धति से यह स्पष्ट कर दिया है कि हे सीते ! रावण को माले का मेरा उद्देश्य केवल तुम्हारी प्राप्ति ही नहीं था अपितु इन हजारों ऋषियों के साथ किये गये उसके अत्याचार भी थे।

सैषा स्थली यत्र विचिन्विता त्वां भ्रष्टं मया नूपुरमेकमुर्व्याम् ।

अदृश्यत त्वच्चरणारविन्दविश्लेषदुःखादिव बद्धमौनम्॥ २३ ॥

अन्वय-सा एषा स्थली यत्र त्वां विचिन्विता मया त्वच्चरणारविन्द विश्लेषदुःखार इव बद्धमौनम् उत्त्यां भ्रष्टम् एकं नूपुरम् अदृश्यत ।

शब्दार्थ-सा एषा = यह वही। स्थली = वनभूमि है। यत्र = जहाँ। त्वाम् तुमको (सीता को)। विचिन्विता = खोजते हुए। मया = मेरे द्वारा । त्वच्चरणारविन्दविश्लेषदुःखात् = तुम्हारे चरण कमल के वियोग जन्य दुःख के कारण। इव मानो। बद्धमौनम् = मौन धारण करने वाले। उर्व्याम् = पृथ्वी पर। भ्रष्टम् = गिरे हुए। एक नूपुरम् - एक नूपुर को (बिछिया)। अदृश्यत = देखा गया था।

अनुवाद-(हे सीते !) यह वही वनभूमि है जहाँ तुमको खोजते हुए मेरे द्वा तुम्हारे चरण कमल के वियोग जन्य दुःख के कारण (ही) मानो मौन धारण करने वाल भूमि पर गिरा एक नूपुर (बिछिया) देखा गया था (अर्थात् मुझे मिला था)।

भावार्थ-राम कहते हैं कि सीते देखो, अब हमारा विमान उस स्थली पर आ गया है जहाँ पर कि तुमको खोजते हुए मैंने तुम्हारे पैर से गिरे हुये एक नूपुर को देखा था, वह उस समय चुपचाप भूमि पर पड़ा था, ऐसा प्रतीत होता था कि मानो उसने तुम्हारे चरण कमल के वियोग के दुःख से ही मौन धारण कर लिया था।

संस्कृत टीका-सा = पूर्वानुभूता, एषा स्थली इयम् वनभूमिः (अस्ति) यत्र त्वां सीतां विचिन्विताऽन्विष्यता मया रामेण, त्वत् सीतायाः चरणारविन्दात् पादपङ्कजात् यो विश्लेषः वियोगस्तस्माद्दुःखात् त्वच्चरणारविन्द विश्लेषदुःखात् इव, बद्धं मौनं येन तत् तादृशं निःशब्दम्, उर्व्याम् = पृथिव्याम् भ्रष्टम् = पतितम्, एकम् नूपुरम् - मञ्जरीरम् 'मन्जीरो नूपुरोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः अदृश्यत दृष्टम्। मया लब्धमिति सारार्थः।

संस्कृत सरलार्थ-रामः कथयति - वैदेहि ! इयं पुरोदृश्यमाना पूर्वानुभूता सैव

स्थली (अकृत्रिमा भूमिः) दृश्यते, यत्र पूर्वं त्वाम न्विष्यता मया त्वच्च रशादधः पतित मेकं नूपुर लब्धम्, इदं तदानीं बद्धमौन मासीत्, सम्भाव्यते यदिदं तदानीं त्वच्चरण कमल वियोगदुःखादेव निःशब्द मासीत्।

व्याकरण-त्वच्चरणारविन्दविश्लेषदुःखात्- चरणमेव अरविन्दं चरणारविन्दम् तव चरणारविन्दमिति त्वच्चरणारविन्दं तस्मात् यो विश्लेषः त्वच्चरणारविन्दविश्लेषः तेन दुःखात् (तत्पु०) बद्धमौनम्- बद्धं मौनं येन तत् (बहु०) । स्थली - स्थल शब्दात् डीप् प्रत्यये स्थली-आकृत्रिमा भूमिः, विचिन्वता- विचिनोतीति विचिन्वन् तेन, वि चिञ् + लट् शतृ। विश्लेषवि + श्लिष्-धञ्। दुखादित्यत्र हेतौ पञ्चमी। मौनम्-मुने भावः कर्म वा मौनम्, मुनि + अण् मौनमभाषणम्। भ्रष्टम्- भ्रंश् + क्त। नूपुरम्-पादाङ्गदं तुलाकोटिमञ्जीरो नूपुरोऽस्त्रियाम् इत्य समरः। अदृश्यत- दृश् कर्मणिलङ् प्रथम पुरुषैक वचने।

विशेष-यहाँ उत्प्रेक्षाऽलंकार के द्वारा कवि ने नूपुर की निःशब्दता का अत्यन्त सुन्दर चित्रण किया है। भूमि पर गिरा हुए नूपुर इसलिए चुप है मानो वह दुःखी है कि सीताजी के चरण कमल से वह वियुक्त हो गया। इस प्रकार यहाँ हेतुत्प्रेक्षा अलंकार है। चरणारविन्द में रूपक अलंकार है।

त्वं रक्षसा भीरु ! यतोऽपनीता यं मार्गमेताः कृपया लता मे।

अदर्शयन्वक्तुमशक्नुवत्यः शाखाभिरावर्जितपल्लवाभिः ॥ २४ ॥

अन्वय-भीरु ! त्वं रक्षसा यतः अपनीता तं मार्ग वक्तु मशक्नुवत्यः एताः शताः आवर्जितपल्लवाभिः शाखाभिः कृपया में अदर्शयन्।

शब्दार्थ - आवर्जितपल्लवाभिः = झुके हुए पत्तों वाली। शाखाभिः शाखाओं द्वारा अ शब्दार्थ भीरु हे डरने वाली सीते ! त्वम्= तुम। रक्षसा राक्षस राय द्वारा। यतः जिधर से (जिस मार्ग से)। अपनीता = ले जाई गई थीं। तं मागम मार्ग को। वक्तुमशक्नुवत्यः बोल सकने में असमर्थ । एताः = इन। लताः त शाखारूपी हाथों के द्वारा। कृपया दयालुतापूर्वक । मे मुझे (राम को) ।

अनुवाद- हे भयशीले (सीते!) तुम रावण के द्वारा जिस मार्ग से (अपहृत क ले आई गई थीं) उस मार्ग को बोल सकने में असमर्थ इन लताओं ने (अपनी) झुके

दिखलाया था। पत्तों वाली शाखा रूपी भुजाओं के द्वारा कृपापूर्वक मुझे दिखलाया था।

भावार्थ-राम, सीता से कहते हैं कि रावण जिस दिशा से तुम को हरण कर गया था, उस दिशा की ओर इन लताओं ने अपनी शाखा रूपी भुजाओं द्वारा संकेत हुए मुझे वह मार्ग बता दिया था, यद्यपि ये लतायें बोलने में असमर्थ भी तथापि ये मनोव्यथा को जानती थीं अतएव इन्होंने संकेत द्वारा ही कृपापूर्वक मुझे वह मार्ग दिखला दिया था।

संस्कृत टीका- भीरु ! हे भयशीले ! त्वं = सीता, रक्षसा = - येन मार्गेण, अपनीता = अपहृत्यं नीता, तं मार्गेम् = वर्म, वक्तुम् = भाषिः अशक्नुवत्यः = असमार्थाः सत्यः, वागिन्द्रियाभावात् एताः पुरो दृश्यमानाः लताः वीरुका आवर्जिताः आनमिताः पल्लवाः पाणिसदृशपत्राणि याभिस्ताभिः आवर्जितपल्लवः शाखाभिः = भुजस्थनीयै विटपैः, कृपया = दयालुतया, मे = मह्यम्, रामायादर्शयन् मात्र असूचयन् इत्यर्थः। "शाखा वृक्षान्तरे भुजे" इति विश्वः ।

संस्कृत सरलार्थ-रामः कथयति, सीते ! त्वं रावणेन येन मार्गेण अपर वागिन्द्रियाभावात् मार्गं वक्तुं मसमर्थाः सत्यः एताः पुरो वर्तमाना लताः आनमितकिसल स्वकीयैः विटपैरेवासूचयन् ।

व्याकरण-भीरु-विभेतीति भीरुः ऊङुतः से ऊङ् होकर भीरु बना नदी स होकर सम्बोधन में ह्रस्व हो जाने से भीरु शब्द निष्पन्न होता है। यतः मैं तसि प्रत्यय वक्तुम्-वच् + तुमुन् । अशक्नुवन्त्यः- न शक्नुवन्त्यः इति अशक्नुवन्त्यः (नञ् तत्पुत आवर्जितपल्लवाभिः- आवर्जिताः पल्लवाः बाभिस्ताभिः (बहु०) अपनीता-अप + क्त + टाप् । आदर्शयन्-दृश णिच् लङ् प्रथम पुरुष बहुवचन् । अशक्नुवन्त्यः- स शक् + रन् + शतृ + डीप् ।

विशेष-इस श्लोक में कवि ने लताओं के द्वारा मार्ग निर्देशन का कार्य कर उनमें सजीवता का निर्देश किया है। वस्तुतः वृक्ष लतादिकों में वाक् पाणि, पादः इन्द्रियाँ यद्यपि नहीं होतीं किन्तु सुखदुःखानुभूति उन्हें भी होती है क्योंकि अन्तः उनमें होती है। जैसाकि मनु ने कहा है-"अन्तः संज्ञा भवन्त्येते सुख दुःखसमविन इसीलिए तो कालिदास की समस्त प्रकृति मानवीय व्यवहार और क्रिया कला समन्वित रहती है। कृपया शब्द के द्वारा राम ने अपनी असहाय दीन स्थिति की

ओर संकेत किया है कि इन लताओं ने मेरे ऊपर विशेष कृपा कर मार्ग का निर्देशन किया था अन्यथा सीते । तुम्हारा पता लगना कठिन था।

**मृग्यश्च दर्भाङ्करनिर्व्यपेक्षास्तवागतिज्ञं समबोधयन्माम्।
व्यापारयन्त्यो दिशि दक्षिणस्यामुत्पक्षमराजीनि विलोचनानि ॥ २५ ॥**

अन्वय-दर्भाङ्क रनिर्व्यपेक्षाः मृग्यः च उत्पक्षमराजीनि विलोचनानि दक्षिणस्यां दिशि व्यापारयन्त्यः तव अगतिज्ञं मां समबोधयन् ।

शब्दार्थ-दर्भाङ्क रनिर्व्यपेक्षाः = कुशों के अङ्कुरों में इच्छा रहित (कुशों को अब न चरने वाली)। मृग्यः = हरिणियों ने। उत्पक्षमराजीनि ऊपर उठी हुई विरौनी या पलकों वाले। विलोचनानि = नेत्रों को। दक्षिणस्यां दिशि - दक्षिण दिशा में (दक्षिण दिशा की ओर)। व्यापारयन्त्यः प्रवृत्त करती हुई अर्थात् दक्षिण की ओर चलाती हुई। तव = तुम्हारी (सीता की)। अगतिज्ञम् = गति को अर्थात् मार्ग को न जानने वाले। माम् = मुझको (राम को)। सम्बोधयन् = बतलाया था।

अनुवाद-कुशों के अङ्कुरों में इच्छा अर्थात् सीता हरण के दुःख से चरने का कार्य बन्द कर देने वाली हरिणियों ने भी ऊपर को उठी हुई पलकों वाले (अपने) नेत्रों की दक्षिण दिशा में (की ओर) प्रवृत्त कर तुम्हारे मार्ग को (तुम किधर गई इस को) न जानने वाले मुझे (राम को मार्ग) बतलाया था।

भावार्थ-राम, सीता से कहते हैं कि न केवल लताओं ने ही, हरिणियों ने भी कुशाङ्कुरों का खाना छोड़कर, अपने ऊपर उठी विरौनियों वाले नेत्रों को दक्षिण दिशा की ओर डालते हुए यह संकेत किया था कि रावण, सीता को इस ओर ले गया है।

संस्कृत टीका-दर्भाणां कुशानामङ्क रेषु अग्रभागेषु निर्व्यपेक्षाः निस्पृहाः (सीतापहरणदुखिताः सत्यः भक्ष्यकर्मणि निस्पृहाः) मृग्यः - मृगाङ्गनाश्च, पक्ष्मणां राजयः पक्ष्मराजयः उत्- ऊर्ध्वीकृताः पक्ष्मराजयः येषन्तानि उद्गतपक्ष्मपङ्क्तीनि विलोचनानि - नेत्राणि, दक्षिणस्यां दक्षिणनामिकायां दिशि दिशायां, व्यापारयन्त्यः प्रवर्तयन्त्यः तव = सीतायाः, गति मार्ग जनातीति गतिज्ञः न गतिज्ञः अगतिज्ञः तमगतिज्ञं मार्गानभिज्ञं मां राम समबोधयन् नेत्र चेष्टया सीतागमनमार्गसंबोधयन्नित्यर्थः ।

संस्कृत सरलार्थ - रामः कथयति, सीते । न केवलं लता एव अपितु हरिण्योऽपि कुशाङ्क रभक्षणपराङ्मुख्यः दक्षिण-स्यां दिशि स्वकीयानि समुन्नतपक्ष्मपङ्क्तिनी नेत्राणि प्रवर्तयन्त्यः त्वद्गमनमार्गं समबोधयन् ।

व्याकरण-दर्भाङ्क रनिर्व्यपेक्षाः- दर्भाणामङ्करास्तेषु निर्व्यपेक्षाः । अगतिज्ञम् - जानातीति शः, गाँत जानातीति गतिज्ञः न गतिज्ञः अगतिज्ञः तम् (नञ् तत्पु०) विशिष्टानि विशालानि लोचनानि तानि । व्यापारयन्त्यः वि आप णिच् निर्व्यपेक्षा-विशिष्टा अपेक्षा व्यपेक्षा निर्गता व्यपेक्षाः यासां ताः। विलोचनानि डीप् । गतिज्ञः-ज्ञा धातोः क प्रत्ययः।

विशेष- लताओं से सीतागमन के मार्ग का संकेत मिलने के पश्चात् राम के हरिणियों से सीतागमन के मार्ग का संकेत मिला। इस प्रकार प्रकृति का प्रत्येक उपाद चेतन या अचेतन भी राम के लिए हितकारी सिद्ध हो रहा है। यहाँ गम्योत्प्रेक्षा है क्योंकि हरिणियों के देखने में मार्ग बतलाने (समबोधयन) के रूप में सम्भावना व्यङ्ग्य है।

एतदिगरेर्माल्यवतः पुरस्तादाविर्भवत्यम्बरलेखि शृङ्गम् ।

नवं पयो यत्र घनैर्मया च त्वद्विप्रयोगाश्रु समं विसृष्टम् ॥ २६ ॥

अन्वय- माल्यवतः गिरेः अम्बरलेखि एतत् शृङ्गम्पुरस्तात् आविर्भवति यत्र घ नवं पयः मया च त्वद्विप्रयोगाश्रु समं विसृष्टम् ।

शब्दार्थ - माल्यवतः = माल्यवान् नामक । गिरैः = पर्वत का। अम्बरलेखिः आकाश को छूने वाला (अत्यन्त ऊँचा)। एतत् = यह। शृङ्गम् = शिखर (चोटी) पुरस्तात् = सामने । आविर्भवति = प्रकट हो रहा है (दीख रहा है)। यत्र = जहाँ। घरे = मेघों ने। नवं पयः = नवीन जल (प्रथम वर्षा जल)। मया च = और मैंने त्वद्विप्रयोगाश्रु = तुम्हारे वियोग के आँसू । समं = साथ-साथ। विसृष्टम् = गिराये थे।

अनुवाद-माल्यवान् नामक पर्वत का आकाश को छूने वाला (अत्यन्त ऊँच यह शिखर सामने दिखलाई पड़ रहा है यहाँ मेघों ने प्रथम वर्षा का जल और मैंने तुम्ह वियोग में आँसू एक साथ गिराये थे अर्थात् मेरे आँखों से अश्रु और मेघ से वर्षा की हूँ एक साथ ही भूमि पर गिरी थी।

भावार्थ-राम, सीता से कहते हैं कि यह वही माल्यवान् नामक पर्वत का शिख सामने दिखलाई पड़ रहा है जहाँ पर मेघों ने प्रथम वर्षा की बून्दें और मैंने मुम्हारे विये में आँसू गिराये थे।

संस्कृत टीका-माल्यवतः = एतन्नामकस्य गिरेः पर्वतस्य अम्बरलेखि अभ्रंल्लिए एतत् पुरोदृश्यमानं शृङ्ग शिखरं पुरस्तात् सम्मुखमात्रिर्भवति प्रकटीभवति, यत्रकूजन घनैर्मैर्घः नवं पयः प्रथमवर्षाजलम् मया रामेण च त्वद्विप्रयोगेण तब वियोगेन अ त्वद्वियोगाशु-समं सुगपदेव, विसृष्टम् = विमुक्तम् । अयमभिप्रायः सीतायाः वियोगानन्तरं प्रथमं घनं दृष्ट्वा रामोऽधैर्येणात्र माल्दा शृङ्गे प्रारोदीत् तदैव प्रावृङ् ऋऋतौ प्रारम्भे प्रथमोद विन्दवो न्यपतन् । इत्थं रामस्य नेत्राभ्याम मेघेभ्यश्च जलविन्दवः सहैव पतिताः इति ।

संस्कृत सरलार्थ-रामः सीतां कथयति, वैदेहि । पश्य, इदं तदेव माल्यवतो गिरेः शिखरं दृश्यते यत्र तव वियोगदः खेन ममाश्रूणि मेघेभ्यश्च वर्षाग्रविन्दवो युगपदेव न्यपतन् ।

व्याकरण- अम्बरलेखि- अम्बरं लिखति यत् तत् अम्बरलेखि- अम्बर लिख णिनि, विसृष्टम्-वि सृज् क्त। आविर्भवति आविस् + भू विप्रयोगः विप्र युज् घञ, तव विप्रयोगेन अश्रु त्वद्विप्रयोगाक्षु ।

विशेष-कवि ने यहाँ राम के हृदय में सीता वियोग जन्म करुणभाव का चित्रण करते हुए वियुक्तावस्था में गेज को उद्दीपक रूप में वर्णित किया है। यहाँ सहोक्ति नामक अलंकार है।

गन्धश्च धाराहतपल्वलानां, कादम्बमर्थोद्गतकेसरं च।

स्निग्धाश्च केकाः शिखिनां बभ्रुर्यस्मिन्नसहयानि विना त्वया मे ॥ २७॥

अन्वय-यस्मिन् धाराहतपल्वलानाम् गन्धः, अर्थोद्गतकेसरं कादम्बं च शिखिनां स्निग्धाः के काश्च त्वया बिना में असहयानि बभ्रुवः।

शब्दार्थ-यस्मिन् = जिस माल्यवान् पर्वत के शिखर पर। धाराहत पल्वलानाम् - वर्षा की धाराओं से ताड़ित अल्प जलाशयों का। गन्धः सुगन्ध। अर्थोद्गतकेसरम् आधे विकसित हुये किंजल्कों वाला। कादम्बं कदम्ब पुष्प । । शिखिनां = मयूरों

के। स्निग्धाः = मनोहर। केकाः मयूरध्वनि। त्वया विना तुम्हारे बिना। मे = मुझ राम को। असहयानि = असहनीय। बभूवः हो गये थे।

अनुवाद-जिस (माल्यवान् पर्वत के शिखरों) पर वर्षा की धाराओं से ताड़ित अल्पजलाशयो की सुगन्ध, आधे-आधे निकले हुये किंङ्जुल्क (केसर) वाले कदम्बपुष्प और मयूरों की मधुर ध्वनि (कूजन) (हे सीते!) तुम्हारे बिना मुझ राम को असह्य हो गई थी।

भावार्थ-राम, सीता से कहते हैं, कि इस माल्यवान् पर्वत के शिखर पर, प्रथम वर्षा की धाराओं से ताड़ित अर्थात् ग्रीष्मकाल से सूखे पड़े हुये और अब वर्षा के जल से सरस हुए अल्पजलाशयों की सुगन्ध, अर्धविकसित कदम्ब पुष्प और मयूरों की मधुर कूजन, (ये सब) तुम्हारे वियोग के कारण मुझे असह्य हो गई थीं।

संस्कृत टीका - यस्मिन् = माल्यवतः शिखरे, धाराभिः वर्षायाः धाराजलैः बाहतानां ताड़ितानां पल्वलानाम् = अल्पजलाशयानाम् धाराहतपल्वलानाम् - वृष्टिधाराताड़िताल्पज-लाशयानाम्, गन्धः = सुगन्धिः, अर्धोदगतकेसरम्, सुगन्धिः, अर्धमुद्रताः प्रकटिताः केसराः किब्जल्काः यस्मितत-कदम्बस्येदं कादम्बं नोपकुसुमं च, शिखिणां - बर्हिणां स्निग्धा मनोहराः केकाश्च ध्वनयश्च, त्वया सीतया विना मे रामायासहयानि बभूवुः समजायन्त ।

संस्कृत सरलार्थ-रामः कथयति, सीते ! त्वद्वियोगकाले माल्यवतः शिखरे वृष्टि जलजः पल्वलानां गन्धः, अधोद्भिन्नं नोपकुसुम मधुराः मयूर केकाश्च जातानि ।

व्याकरण- घराहतपल्लवानाम्- धाराभिः आहतानां पल्लवानाम् (तू० हन् क्त। कादम्बम्-कदम्बस्य विकारः इस अर्थ में कदम्ब शब्द से "ताय सूत्र से अण प्रत्यय होकर कादम्ब बना। फूल, फल वृक्ष के विकार ही होते हैं। केसराः यस्य तत् । उद्गत- उद्+ गम् + क्त। सोढ सोग्यानि सहयानि (सह 'कादम्ब' शब्द कदम्ब पुष्प वाची हुआ। अर्धोदगतकेसरम्- अर्धमुद्गताः सहयानि असहयानि (नञ् तत्प्०) । त्वा में 'विना' के योग के "पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम्" से तृतीया विभिक्त हुई है। शिखिनाम्-अस्त्येषान्ते शिखिनस्तेषाम्" शिखा + इनि ।

पूर्वानुभूतं स्मरता च यत्र कम्पोतरं भीरु ! तवोपगूढम् ।
गुहाविसारीण्यतिवाहितानि मया कथञ्चित् घनगर्जितानि ॥ २८॥

अन्वय-भीरु ! यत्र पूर्वानुभूतं कम्पोतरं तव उपगूढम् स्मरता मया गुहावि
घनगर्जितानि कथञ्चित् अतिवाहितानि ।

शब्दार्थ-भीरु ! = हे भयशीले सीते! यत्र जिस (पर्वत के शिखर पूर्वानुभूतं =
पहले अनुभव किया गया। कम्पोतः = अधिक कम्पनयुक्त। तरं - तुम्हारे (सीता
के) आलिङ्गन को। स्मरता = स्मरण करते हुए। मया = मेरे (ल द्वारा। गुहाविसार,
णि = गुफाओं से प्रतिध्वनित होने से विस्तार को प्राप्त। घनगर = मेघगर्जनों
को। कथञ्चित् = किसी प्रकार (जैसे तैसे अति कठिनाई से) अतिय = दुःखपूर्वक
सहे गये थे।

अनुवाद-हे भयशीले (सीते) जिस पर्वत शिखर पर पहले अनुभव कि अधिक
कम्पनयुक्त तुम्हारे आलिङ्गन को स्मरण करते हुए मेरे द्वारा (तुम्हारे कि
गुफाओं में प्रतिध्वनित होकर वृद्धि को प्राप्त हुई मेघ की गर्जनायें जिस किसी
ता कठिनाई से) सहन की गई थी।

भावार्थ - राम सीता से नहते हैं कि उस माल्यवान् पर्वत के शिखर पा
कम्पन प्रधान तुम्हारे आलिङ्गन का स्मरण करने वाले मेरे द्वारा, वियोगका
मेघगर्जनायें, जो गुफाओं में प्रतिध्वनित होकर और अधिक बढ़ जाती थीं, बड़ी
कठिनाई से सही गई थी।

संस्कृत टीका-हे भीरु ! भयशीले सीते ! यत्र माल्यवतः शिखरे, पूर्वा नभूतम्
-संयोग समये परिचितम्, कम्पोतरम् कम्प्रधानम्, तव सीतायाः,
उपगूढमालिङ्गनम्, स्मरता - चिन्तयता मया रामेण, गुहायां विसारीणि कन्दरायां
प्रतिध्वनिना प्रसारीणि धनानां मेघानां गर्जितानि घनगर्जितानि = मेघस्पनितानि,
कथञ्चित् येन केन प्रकारेणाति क्लेशेनातिवाहितानि = अतिगमितानि ।

संस्कृत सरलार्थ -रामः कथयति:- भयशीले सीते ! पुरा संयोगकाले तस्मिन्
पर्वत शृङ्गे घनगर्जितगाकर्ण्य भयातया त्वयाकृतं कम्प्रधानमालिङ्गनं चिन्तयता
माया तत्रैव वियोगकाले तान्येव गुहाप्रसारीणि धनगर्जितानि काठिन्ये नैव
यापितानि।

व्याकरण-पूर्वम् अनुभूतम् पूर्वानुभूतम् सुप्सुपेतिसमासः। कम्पोत्तरम्-कम्पः उत्तरः अस्मिन् तत् कम्पोत्तरम् । स्मरता-स्मृ + लट् शतृ तृतीयैक वचन। उपगूढम्- उप गृह क्त। गृहाविसारीणि- गुह्यायां गुहासु वा विसारीणि। घनगर्जितानि - घनानां गर्जितानि घनर्जितानि (ष० तत्पु०) विसारिणि वि + स् + णिनिः। अतिवाहितानि = अति वह णिच् + क्त।

विशेष - माल्यवान् पर्वत शिखर पर रहते हुए पहले राम ने मेघगर्जन से डरी हुई सीता के प्रगाढ़ आलिङ्गन के समय आनन्द का अनुभव किया था। बाद में सीता से वियुक्त होने पर मेघगर्जन के समय उन आलिङ्गनों की स्मृति आ जाने से राम को असह्य वेदना हुई और वही मेघगर्जन जो पहले आनन्दायक था अब उन्हें अतिशय कष्टकर प्रतीत हो रहा था। यहाँ सीता वियोग जन्य शोक में पूर्वानुभूत शृङ्गारात्मक आलिङ्गन का रमरण करुण रस में किसी भी प्रकार बाधक नहीं है अपितु उद्दीपक ही है।

आसारसिक्तक्षितिबाष्पयोगान्मामक्षिणोद्यत्र विभिन्नकोशैः ।

विडम्ब्यमाना नवकन्दलैस्ते विवाहधूमारुणलोचनश्रीः । । २९ ॥

अन्वय-यत्र विभिन्नकोशैः नवकन्दलैः आसारसिक्तक्षितिबाष्पयोगात् विडम्ब्यमाना ते विवाहधूमारुणलोचनश्रीः माम् अक्षिणोत् ।

शब्दार्थ-यत्र = जिस पर्वत शिखर पर। विभिन्नकोशैः खिली हुई कलियों वाले। नवकन्दलैः नवीन लाल वर्ण के कन्दली पुष्पों के साथ। आसारसिक्तक्षितिबाष्पयोगात् - मूसलाधार वर्षा से भीगी हुई पृथ्वी से उत्पन्न भाव के योग से। विडम्ब्यमाना - अलंकृत की जाने वाली। ते तुम्हारे (सीता के)। विवाहधूमारुणलोचनश्रीः = विवाहकालिक हवन के धुर्य से लाल नेत्रों की शोभा ने। माम् मुझ राम को। अक्षिणोत् पीड़ित किया था।

अनुवाद-जिस पर्वत शिखर पर खिली हुई कलियों वाले नवीन (ताजे) लाल वर्ण के कन्दली पुष्पों के साथ मूसलाधार वर्षा से भीगी हुई पृथ्वी से उत्पन्न भाप के सम्बन्ध से तुम्हारे अनुकूल की जाने वाली तुम्हारे विवाह कालिक यज्ञ के धुर्य है नेत्रों की शोभा ने मुझ राम को (अत्यन्त) पीड़ित किया था।

भावार्थ-राम सीता से कहते हैं कि माल्यवान् पर्वत के उस शिखर पर वियोग के समय वर्षाकाल में खिली हुई कलियों वाले लाल-लाल कन्दली साथ धारा सम्पात वृष्टि से सिक्त पृथिवी से (उत्पन्न) वाष्प के सम्बन्ध से अनेक द जाने वाली, तुम्हारे विवाह काल में धूयें से लाल वर्ण वाली नयन शोभा ने मुझे (कि कारण) अत्यधिक पीड़ित किया था। तात्पर्य यह है कि विवाह के समय यज्ञाग्नि से उठने वाले धूय से भगवती स्वभावतः लाल वर्ण के कन्दली पुष्प खिल जाते हैं, इन पुष्पों के साथ जब वर्षा नेत्र लाल हो गये थे। ये नेत्र संयोगकाल में राम के लिए सुखद थे। वर्षाक सिंचित पृथिवी से उत्पन्न वाष्प मिल जाता है, जब वह उसी दृश्य को उपस्थित क है जो कि विवाह काल में यज्ञाग्नि के धूयें से सीता के नेत्रों को अरुण कर देने वाला (कन्दली पुष्पों का स्मरण हो आया था, अतएव वे वियोगवश उस समय अधिक हुये थे। वियोग काल में वही नेत्रशोभा पीड़ित करने वाली बन गई थी। वस्तुतः विडम्ब्यमाना पद से कवि का तात्पर्य यहाँ स्मर्यमाण ही है, परस पद का प्रयोग न कर कवि ने यहाँ स्मरणालंकार को व्यङ्ग्य रखना ही उचित मः विडम्ब्यमाना का प्रयोग किया है।

संस्कृत टीका-यत्र-शृङ्गे, विभिन्नाः कोशाः येषान्ते तैः विभिन्नको विकसितकुङ् मलैः, नवकन्दलैः- नवानि च तानि कन्दलानि तैः (अरुप नवकन्दलीपुष्पैः, आसारः वषाजलधारासम्पातस्तेन सिक्ताया उक्षितायाः क्षितैः पृथि वाष्पः तस्य योगात् सङ्गतेः- आसारसिक्तक्षितिवाष्पयोगात्, (हेतोः) विडम्ब्यमन अनुक्रियमाणा, सादृश्यवशात् स्मर्यमाणेत्यर्थः। ते = तव सीतायाः, विवाहे (होमस्य धूमेन अरुणा रक्तवर्णा लोचनयोः नेत्रयोः श्रीः शोभा विवाह धूमारुणलो माम् रामम् अक्षिणोत्-अपीडयत् ।

संस्कृत सरलार्थ-रामः कथयति, सीते ! यत्र पर्वत शृङ्गे विकसित मुरु नवकन्दलीपुष्पाणि, एवं धारासम्पातोक्षितक्षितिवाष्पञ्चावलोक्य, तव विवाहकालीनपुन नेत्रशोभा संस्मृत्य तत्र वियोगकाले अहमति वियोगदुः खनन्वभवम् ।

व्याकरण-आसारः- धारा सम्पात आसारः इत्यमरः । सिक्ता सिन् टाप् । योगः = युज् + घञ् । अक्षिणोत्- क्षिणु + लङ् । विभिन्न-वि + भिद विडम्ब्यमाना- वि + डम्बू + यक् + मुक् + शान च् + टाप् । विवाह-वि घञ् । स्मरणालंकार व्यङ्ग्य है, और उपमालंकार वाच्य है, उपजाति छन्द है।

विशेष- इस श्लोक में स्मरणालंकार है क्योंकि कन्दली के लाल पुष्प की धारा से युक्त पृथ्वी की भाप मिलने से उन्हीं सीता के उन नेत्रों की शोभा आ गया था, जो विवाह के समय धुँए से लाल हो गये थे।

उपान्तवानीरवनोपगूढा न्यालक्ष्यपारिप्लव सारसानि ।

दूरावतीर्णा पिबतीव खेदादमूनि पम्पासलिलानि दृष्टिः ॥ ३० ॥

अन्वय-उपान्तवानीरवनोपगूढानि आलक्ष्यपारिप्लवसारसानि अमूनि पम्पासलिलानि रावतोर्णा दृष्टिः खेदात् पिबतीव ।

शब्दार्थ- खेदात् = से युक्त। अमूनि इन। पम्पासलिलानि पम्पा नामक सरोवर के जलों को। दूरावतीर्णा ढके हुए। आलक्ष्यपारिप्लवसारसानि = कुछ कुछ दिखलाई पड़ने वाले चञ्चल सारसों दूर (आकाश) से उतरी हुई। दृष्टिः वेदपूर्वक । पिवति इव -मानो पी रही है।

अनुवाद- (ही सीते!) पास में ही (विद्यमान) बेटों के जंगलों से ढँके हुए तथा) (दूर होने के कारण) कुछ-कुछ दिखलाई पड़ने वाले चञ्चल सारसों से युक्त इन पम्पा सरोवर के जलों को दूर (आकाश) से उतरी हुई (मेरी) दृष्टि खेदपूर्वक (कष्ट से) मानो पी रही है। अर्थात् दूर होने के कारण स्वल्प किन्तु सुन्दर दिखलाई पड़ने वाले जल का अत्युत्कण्ठा के साथ मेरी दृष्टि देख रही है और इसकी मनोहरता से मुग्ध होकर उसे छोड़ना नहीं चाहती है।

भावार्थ-राम सीता से कहते हैं, देवि ! इन पम्पासरोवर के जलों को, जो पार्श्वस्थ वानीरवनों से आच्छादित एवं कुछ-कुछ दिखलाई पड़ने वाले चञ्चल सारस पक्षियों से युक्त हैं, मेरी दृष्टि बड़ी उत्कृष्ठा के साथ देख रही है, मनोहरतावश वह इन्हें छोड़ना नहीं चाहती।

संस्कृत टीका-उपान्ते जलसमीपे तटप्रदेशे वा यानि वानीराणां वञ्जुलानां वनानि तैरुपगूढानि आच्छन्नानि - उपान्तवानीरवनोपगूढानि आ ईषद् लक्ष्या दृश्या, पारिप्लवाश्चञ्चलाः सारसाः एतन्नामकाः पक्षिणः येषु तानि आलक्ष्यपारिप्लवसारसानि अमूनि पुरोदृश्यमानानि पम्पायाः सलिलानि जलानि पम्पासरोवरजलानि (मे रामस्थ) दूरादवतीर्णा - दूरावतीर्णा - आकाशाद्भूतलं प्राप्ता

दृष्टिः खेदात् अवसादात् पिवतीवात्युष्कण्ठ्याऽवलोकयति न विहातुमुत्सहते इत्यर्थः ।

संस्कृत सरलार्थ - रामः कथयति सीते, इमानि पम्पासरोवरजलानि अतिमनोहराणि सन्ति, इमानि पार्श्वस्थवानीरवनैराच्छादितानि अथ चू ईषदालक्ष्यसारसपक्षिभिः युक्तानि सन्ति, अतएव मनोहरतामुग्धा मे दृष्टिनेदानीगिमानि परिहातुमिच्छति ।

व्याकरण-उपगूढानि- उप + गुह + क्त। आलक्ष्यपारिप्लवसारसानि-ईपल्लक्ष्या आलक्ष्याः (अव्ययी०) आलक्ष्याश्च पारिप्लवाश्च आलक्ष्यपारिप्लवाः (द्वन्द्व) आलस्याश्च पारिप्लवाश्च सारसाः येषु तानि (बहु०) । दूरावतीर्णा- दूरात् अवतीर्णा (पञ्च० लवत्पु०) अवतीर्णा अव तृ वत् टाप् ।

'विशेष- यहाँ बेंत की लताओं से घिरे हुए एवं पञ्चल सारसों से युक्त पम्पास ही न थी। इसलिए यहाँ का जल इतना मनोहर प्रतीत होता है कि उससे दृष्टि हटती ही न ने एकटक उत्कण्ठापूर्वक देखने में पीने की सम्भावना की है और उसको तर्कसंगत करू के लिए दूर से भूमि पर उतरने के कारण उत्पन्न जो थकान उससे ही मानो राम नेत्री। उस जल को पी रहे हैं। लोक में प्रायः देखा जाता है कि जब कोई व्यक्ति लम्बा रास्ता चल कर आता है। वह अत्यन्त प्यासा हो जाता है और दःखी भी। अतः उस समय बड़ी तत्परता में 'पीता है। उसी प्रकार दूर से उतरकर पम्पासरोवर तक दृष्टि को जाने में बड़ी थकान क गई थी इसलिए मानो वह पानी को पी रही है। इस प्रकार यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

अत्रावियुक्तानि रथाङ्गनाम्नामन्योन्यतोत्पलकेसराणि ।

द्वन्द्वानि दूरान्तरवर्तिना ते मया प्रिये ! सस्पृहमीक्षितानि ॥ ३१ ॥

अन्वय-प्रिये ! अत्र अन्योन्यदत्तीत्पल केसराणि अवियुक्तानि रथाङ्गनाम्नां इ ते दूरान्तरवर्तिना मया सस्पृहम् ईक्षितानि ।

शब्दार्थ-प्रिये! हे प्रिये सीते। अत्र इस पम्पासरोवर पर अन्योन्यदत्त त्पलकेसराणि = आपस में एक दूसरे को कमल केसर देने वाले। अवियुक्तानि वियोग रहित। रथाङ्गनाम्नाम् = चकवा चकवी के। द्वन्द्वानि = जोड़े को । ते

(सीता) से। दूरान्तवर्तिना = दूर विद्यमान। मया = मुझ राम के द्वारा। सस्पृहम्: अभिलाषा या स्नेहपूर्वक । ईक्षि तानि = देखे गये थे।

अनुवाद-हे प्रिये सीते ! इस पम्पासरोवर पर आपस में एक दूसरे को करन केसर देने वाले, वियोग रहित चकवा चकवी के जोड़े तुमसे दूर रहने वाले मेरे द्वा (अत्यन्त) अभिलाषा या स्नेहपूर्वक देखे गये थे। (अर्थात् परस्पर संयुक्त चकवा चर को देखकर तुम्हारे साथ संयोग के क्षणों का स्मरण हो जाने के कारण उनको देखना छ प्रिय लगता था।

भावार्थ-राम, सीता से कहते हैं कि जब मैं तुमसे वियुक्त था, उस समय मैंने सरोवर पर परस्पर कमल केसर का आदान-प्रदान करने वाले चकई चकवों के संग जोड़े को बड़ी स्पृहा अर्थात् उत्कण्ठा से देखा था। तात्पर्य यह कि परस्परानुरक्त अवियुक्त चक्राशकों के जोड़ों को देखकर उस समय मुझे यह याद आ गई थी कि लोग भी इसी प्रकार एक दिन मिलकर प्रेम से रहते थे और अपने ग्रास का आदान-किया करते थे, फलतः मैं उस समय उन्हें बड़ी उत्कण्ठा से देखता ही रह गया था।

संस्कृत टीका-प्रिये ! प्रेयसि सीते अत्र पम्पासरोवरो अन्योन्यस्मै परस्पर समर्पितानि उत्पलानां कमलानां केसराणि किञ्जल्काः यैस्तानि अन्योन्यदत्तेत्पलके।

भावार्थ-अपनी वियोगस्थिति का वर्णन करते हुए, राम, सीता से कहते हैं। अपने मनोहर पुष्प गुच्छों से अवनत अशोकलता को जो कि तुम्हारे ही समान तन्त्रों सीते ! उस समय तुम्हारे वियोग में सन्तप्त हृदय मैंने इस सरोवर तट पर खड़ा है। स्तोकनम्रा थी, साक्षात् तुम्हें ही समझ कर उसका आलिङ्गन करने ही वाला था कि लक्षण ने मुझे ऐसा करने से रोक दिया था।

संस्कृत टीका-स्तनौ इवाभिरामाभ्यां पयोधरसादृशमनोहराभ्यां स्तबकाम पुष्पगुच्छाभ्यामभिनग्रामवनतां-तन्वीं च दुर्बलां चेमां तटाशोकलतां तीरप्रान्ताशोकस्यला आलिङ्गितुमुत्सुकः साश्रुसहितः रूदन्नित्यर्थः अहं रामः सुमित्राया अपत्यं पुमान् सौमित्रिक तव प्राप्तिरिति त्वत्प्राप्तिः तस्याः बुद्ध्या सीता समुपलब्धेविधिया परिरब्धका सौमित्रिणा लक्ष्मणेन निषिद्धः निवारितः (नेयं सीता लतेति लक्ष्मणेन प्रतिबोधितः

संस्कृत सरलार्थ-रामः कथयति, सीते ! त्वद्वियोगसन्तप्तहृदयो या पम्पासरोवरतटाशोकलतामेवातिसादृश्यात् त्वामेवाभिमन्यमानस्तामालिङ्गितुकामो ऽभवम् २ नेयं सीता अपितु लतैवेति कथयन् लक्ष्मणेनाहं प्रतिवोधितः ।

व्याकरण-अशोकस्य लता अशोकलता तटे अशोकलता तटाशोकला स्तनाभिरामस्तबकाभिनम्राम् - स्तनौ इवाभिरामौ स्तनाभिरामौ कर्मधारय तौ च तौ स्तर ताभ्यामभिम्ना ताम्। त्वत्प्राप्तिबद्धया तव प्राप्तिस्त्वत्प्रप्राप्तिः तस्याः बुद्धया । एरेरव्युकामः परिरबधुं कामो यस्य सः (बहु०)। साश्रुः- अश्रुभिः सहितः इति साश्रुः। सौमित्रिण-सुमित्रायाः अपत्यं पुमान् सौमित्रिः- (सुमित्रा इज्) तेन। निषिद्धः - नि + लिए क्त।

विशेष-सीतावियोग में प्रकृति के उद्दीपक उपकरण लतादिक राम को अतिशय पीड़ित कर रहे हैं। कामभावना से चेतनाचेतन का भाव समाप्त हो जाता है, यह सवा मेघदूत में कालिदास ने लिखा है-

"कामार्ता हि प्रकृतिकृधाश्चेतनाचेतनेषु" फलतः राम को पुष्प गुच्छ से अवनत और क्षीण लता में सीता की भ्रान्ति हो जा है और वह आलिङ्गन के लिए प्रवृत्त हो जाते हैं। यहाँ लता में सीता की भ्रान्ति होने के कारण भ्रान्तिमान् अलंकार है।

प्रसंग-उत्तरोत्तर उत्तर की ओर बढ़ने वाले विमान से गोदावरी के सारस समुन दृष्टिगत हो रहे हैं-

अमूर्विमानान्तरलम्बिनीनां श्रुत्वा स्वनं काञ्चन किङ्किणीनाम् ।

प्रत्युद्वजन्तीव खमुत्पतन्त्यो गोदावरीसारसपंकतवस्त्वाम्।33 ।

अन्वय-विमानान्तरलम्बिनीनां काञ्चनकिङ्किणीनां स्वनं श्रुत्वा खम् उत्पतन्त्य अमूः गोदावरीसारसपंकतयः त्वां प्रत्यु व्रजन्ति इव ।

शब्दार्थ-विमानान्तरलम्बिनीनां विमान के खुले भागों में स्थान-स्थान पर प्लटकने वाली। काञ्चनकिङ्किणीनाम् = स्वर्णमयी क्षुद्र घण्टियों के। स्वनम् शब्द मे। श्रुत्वा = सुन कर। खम् आकाश की ओर। उत्पतन्त्यः = थे। गोदावरीसारसपंकतयः = गोदावरी नदी के सारसों की पंक्तियाँ। त्वां - तुम्हारी उड़ती हुई। अमूः -(सीता की)। प्रत्युद्वजन्ति इव = मानो अगवानी कर रही हैं।

अनुवाद-विमान के खुले भागों के स्थान-स्थान पर लटकने वाली स्वर्णमयी क्षुद्र घण्टियों के शब्द को सुनकर आकाश की ओर उड़ने वाली ये गोदावरी नदी के सारसों की पंक्तियाँ (सीते !) मानो तुम्हारी अगवानी कर रही है।

भावार्थ-राम, सीता से कहते हैं कि ये जो छोटी-छोटी स्वर्णघण्टियाँ विमान के खुले भागों से स्थान-स्थान पर लटक रही हैं, और विमान चलने से बजती हैं। इनके शब्द को सुनकर अपने समूह के कूजनध्वनि के भ्रम से, आकाश मार्ग में उड़ती हुई ये गोदावरी तौर पर विरण करने वाली सारस पंक्तियाँ ऐसी प्रतीत होती हैं कि मानो वे तुम्हारा स्वागत कर रही हों।

संस्कृत टीका-विमानस्य वायुयानस्यान्तरेषु अवकाशेषु लम्बिनीनां लम्बमानानां विमानान्तरलम्बिनीनाम्, काञ्चनकिङ्किणीनां क्षुद्रस्वर्णघण्टिकानाम्, स्वनं शब्दं श्रुत्वा (अन्यसारसानां शब्दभ्रमात्) खमाकाशं प्रति उत्पत्त्यः उड्डीयमानाः अमूः गोदावर्याः एतन्नाभिकायाः नृद्याः सरससानां पंक्तयः सारससमूह गोदतंबरीतीरविचरणीशीलाः सारसराजयः त्वां - सीतां प्रत्युद् ब्रजन्ति इव स्वागतार्थं पुरः आयान्तीवेत्युत्प्रेक्षा ।

संस्कृत सरलार्थ - रामः सीता कथयति यदाकाशयानावकाशेषु याः स्वर्ण क्षुद्रघाटिका अवलम्बवन्ते एवञ्च यानगत्या शब्दायन्ते एतासां ध्वनिं श्रुत्वा स्वयूथशब्दभ्रमादाकाशं मुत्पत्त्योपऽमूः गोदावरीतीरविचरणशीलाः सारसपंक्तियस्त्वां प्रत्युदगच्छन्तीव अर्थात् तव स्वागतार्थं समागच्छन्ति इव प्रतीयन्ते ।

व्याकरण-विमानान्तरलम्बिनीनाम्-विमानस्यान्तरेषु लम्बन्ते यास्ता, तासाम् (तत्पु० गर्भित बहु०)। काञ्चनकिङ्किणीनाम्-काञ्चनस्येदं काञ्चनकञ्चन शब्द से अण प्रत्यय, काञ्चनाः याः किङ्किण्यस्ताः काञ्चनकिङ्किण्यस्तासाम् । गोदावरीसारसपंक्तयः- गोदावर्याः सारसानां पंवतयः (ष० तत्पु०) लम्बिनी-लबि णिनि + डीप् । किङ्किणी- किङ्किणी क्षुद्रघण्टिका इत्यमरः । स्वनम् - स्वन शब्दे धातोः "स्वनहसोर्वेति अप प्रत्ययः। उत्पतन्त्यः उत् पत् + लट् शतृ डीप् ।

विशेष- यहाँ कवि ने विमान में स्वर्णकिङ्किणियों का उल्लेख कर जहाँ तत्कालीन समृद्धि का संकेत किया है वहीं आजकल के वायुयानों की मधुर संगीत ध्वनि का परिचय देकर यह स्पष्ट कर दिया है कि कालिदास के काल में भी भारत में वायुयान आदि वैज्ञानिक साधनों का प्रचलन था। यहाँ किङ्किणियों के

स्वर में सारसों के स्वर की भ्रान्ति होने से भ्रान्तिमान असं है और क्रियोत्प्रेक्षालंकार भी है।

एषा त्वया पेशलमध्ययापि घटाम्बुसंवर्धितबालचूता ।

आनन्दयत्युन्मुखकृष्णसारा दृष्टा चिरात्पञ्चवटी मनो मे ॥३४॥

अन्वय-पेशल मध्ययापि त्वया घटाम्बुसंवर्धितबालचूता उन्मुखकृष्णसारा चि दृष्टा एषा पञ्चवटी में मनः आनन्दयति।

शब्दार्थ-पेशलमध्ययापि क्षीणकटि प्रदेश वाली होने पर भी । त्वया = तुम्हारे (सीता के) द्वारा। घटाम्बुसम्बद्धितबालचूता = घड़ों के जल से जिनमें छोटे-आम के पौधे बड़े किये गये थे। उन्मुखकृष्णसारा = जहाँ पर हमें देखने के लिए ऊपर की मुख किये हुए हैं। चिरात् बहुत काल के बाद। दृष्टा = देखी गई। पञ्चवटी = यह पञ्चवटी। मे = मुझ राम के। मनः = दे रही है। (अतिशय प्रिय प्रतीत होती है।) मन को।

अनुवाद-क्षीण कटिप्रदेशवाली होने पर भी (भार हो सकने में असमर्थ तुम्हारे द्वारा घड़ों के जल से बड़े किए गये छोटे-छोटे आम के पौधों वाली (तथा) (देखने के लिए) ऊपर को मुख किये हुए कृष्णसार मृगों वाली, बहुत काल के बाद दे गई यह पञ्चवटी मेरे (राम के) मन को (अब) आनन्द दे रही है। अर्थात् इस देखकर मन आनन्द से भर रहा है।

भावार्थ-राम सीता से कहते हैं कि यह वही पञ्चवटी है जहाँ पर तुमने कृशेव होकर भी घड़ों से जल देकर आम के पौधों की संवर्द्धित किया था, यहाँ के ये कृष्णस मृग हमारे विमान के शब्द को सुनकर हमें देखने के लिए ऊपर की ओर मुख किए ज हैं, इस पञ्चवटी को आज मैं बहुत दिनों के बाद देख रहा हूँ, अतः यह मेरे मन को अप्रसन्न कर रही है।

संस्कृत टीका-पेशलमध्ययापि = क्षीणकटिप्रदेशयापि त्वया = सीतया, घटाम्बु संवर्धिता घटोदकैः = पोषिताः बालचूताः आमबालपादपाः यस्यां सा घटाम्बुसम्बर्धितबालचूता। उन्मुखकृष्णसारा, उन्मुखाः ऊर्ध्वाननाः कृष्णसाराः कृष्णमू यस्यां सा, चिरात् बहुकालानन्तरं दृष्टाऽवलोकितैषा। पञ्चवटी एतन्नामकं वनम् रामस्य मनः आनन्दयति आह्लादयति ।

संस्कृत सरलार्थ-रामः कथयति, सीते, इयं सैव पञ्चवटी दृश्यते यत्र कुशोद अपि त्वं घटजलैः आम्रवालपादपान पोषितवती । अत्रत्याः कृष्णसारमृगा विमानध्वनिमाका आवयो दर्शनाय ऊर्ध्वानना भूत्वा अवलोकयन्ति, चिरादहमद्येमां पञ्चवटी मवलोकया अतएवैयं मम मनः आनन्दयति ।

व्याकरण-पेशलं क्षीणत्वात् सुन्दर, मध्यं कटिभागः यस्याः सा तथा पेशालमध्यया (मह०) घटाम्बुसंवर्धितवालचूताः घटानामम्बूनि तैः संवर्धिताः बालचूताः यस्यां सा । संवर्धितं संम् वृद्ध्- णिच् क्त।

विशेष- यहाँ कवि ने पेशालमध्ययापि कहकर सीता की कोमलता का तथा से आम्रपादप जो पहले सीता के द्वारा सींचे गये थे, अतः आज वे उनके पुत्र से प्रतीत हो थे इसी लिए बहुत दिनों के बाद देखी गई पञ्चवटी राम को आनन्द दे रही है।

अत्रानुगोदं मृगयानिवृत्तस्तरङ्गवातेन विनीतखेदः ।

रहस्त्वदुत्सङ्गनिषण्णमूर्धा स्मरामि वानीरगृहेषु सुप्तः । । ३५ ॥

शब्दार्थ-अत्र = यहाँ पञ्चवटी में। अनुगोदम् = गोदावरी के समीप । मृगयानिवृत्तः = शिकार से लौटा हुआ। तरङ्गवातेन = (गोदावरी नदी की) तरङ्गों की हवा से। विनीतखेदः = परिश्रम रहित। रहः एकान्त में। त्वदुत्सङ्गनिषण्णमूर्धा = तुम्हारी गोद में सिर रखे हुए। वानीरगृहेषु = बेंतों के कुञ्जों में। सुप्तः सोया हुआ।

अनुवाद-मुझे यह स्मरण है कि यहाँ (पञ्चवटी में) गोदावरी के समीप शिकार से लौटने के बाद (नदी की) तरङ्गों की (शीतल) हवा से परिश्रम (थकान) रहित होकर मैं एकान्त में तुम्हारी गोद में सिर रखे हुए बेंतों के कुञ्जों में सोया था।

भावार्थ-राम कहते हैं, सीते! पञ्चवटी को देखकर मुझे यह बात याद आ रही है कि यहीं पर एक बार मैं गोदावरी नदी के समीप, शिकार से लौटकर, तथा नदी की जलतरंगों से थकान रहित होकर, वानीर कुञ्जों में तुम्हारी गोद में सिर रखकर सोया था।

संस्कृत टीका-अन्न पञ्चवट्याम् अनुगोदम् गोदायाः गोदावरीनद्याः समीपे, मृगयायाः आखेटात् निवृत्तः परावृत्तः तरङ्गाणां गोदावर्याः वीचीनां सम्पर्केण शीतलेन

वातेन वायुना, तरंगवातेन, विनीतः दूरीकृतः खेदः परिश्रमोऽध्वश्रमः यस्य सः तादृशोऽहं रहः एकान्ते त्वदुत्सङ्गे तव क्रोडे निषण्णो मूर्धा त्वदुत्सङ्गनिषण्णमूर्धा = त्वदुत्सङ्गं तव क्रोडे निषण्णो मूर्धा त्वदुत्सङ्गनिषण्णमूर्धा - त्वदुत्सङ्गं गनिहितमस्तकः वानीराणां पञ्चतुलानां गृहेषु कुब्जेषु - सुप्तः यानीरगृहेषु शधानः, इति पूर्वावस्थां स्मरामि ।

संस्कृत सरलार्थ-रामः कथयाती , सीते ! पञ्चवटीमबलोक्य अद्याहं स्मरामि यदेकदाहमत्र मृगयातो निवृत्तः गोदावरीजलतरङ्गविनीताध्वश्रमः वानीरकुञ्जेषु त्वदुत्सङ्गे शिरो निधाय सुप्त आसम् ।

व्याकरण-अनुगोदम्- गोदायाः समीपे इस विग्रह में "अन्यत्समया" इस सूत्र के अव्ययी भाव समास। मृगयानिवृत्तः मृगयायाः निवृत्तः (पं० तत्पु०) नि + वृत्त क्त. निवृत्तः । तरङ्गवातेन- तरङ्गाणां वातेन (ष० तत्पु०) विनीतखेदः- विनीतो खेदो यस्य (बहु०) विनीत- विनी क्त। रहः रह असुन् । त्वदुत्सङ्गनिषण्णमूर्धा-स सद् + क्त। "रदाभ्यां निष्ठातोः" से द को भी न होकर स् को ष होने पर ष्टुना ए'। उत्सङ्गः त्वदुत्सङ्ग (घ० तत्पु०) त्वदुत्सङ्गे निषण्णो मूर्धा येन सः (बहु०) निषण्ण-वि ष्टुत्व हुआ। सुप्तः स्वप् क्त व को उ सम्प्रसारण होकर सुप्त बना।

विशेष- यहाँ भी राम को पञ्चवटी के अतीत के क्षण याद आ रहे हैं जहाँ रहका उन्होंने शूर्पणखा का अङ्गभंग कराया था, खरदूषण और तिशरा की विशाल राक्षस सेना का संहार किया था।

भूभेदमात्रेण पदान्मघोनः प्रभंशयां यो नहुषं चकार ।

तस्याविलाम्भःपरिशुद्धिहेतोर्भौमो मुनेः स्थानपरिग्रहोऽयम् ॥३६॥

अन्वय-यो भू भेदमात्रेण नहुषम् मघोनः पदात् प्रभंशयाञ्चकार, आविलाम्भः परिशुद्धि हेतोः तस्य मुनेः अयं भौमः स्थानपरिग्रहः (अस्ति) ।

शब्दार्थ-यः = जिसने (अगस्त ऋषि ने) । भूभेदमात्रेण = भूकुटी को टेड़ करने मात्र से ही। नहुषम् = नहुष नामक राजा को। मघेनः = इन्द्र के । पदात् = पदवी से। प्रभंशयाञ्चकार = नीचे (पृथ्वी पर) गिरा दिया। आविलाम्भः परिशुद्धि हेतोः = मलिन जल की विशुद्धि करने वाले। तस्य मुनेः उस अगस्त मुनि का।

आयं = यह सामने दिखलाई पड़ने वाला। भौमः भूमि पर होने वाला। स्थानपरिग्रहः = आश्रम है।

अनुवाद-जिस (अगस्त्य ऋषि) ने अपनी भौहों के टेढ़ी करने से ही नहुष (राजा) को इन्द्र की पदवी से (देवाधिपतित्व से)। नीचे गिरा दिया था। मलिन जल की (वर्षा के गन्दे पानी की) शुद्धि के कारणभूत उन मुनि (अगस्त्य ऋषि) का यह भूमि पर स्थित आश्रम है। (अर्थात् स्वर्ग में तो उनका आश्रम है ही भूमि पर भी है।

भावार्थ-अगस्त्य मुनि के महत्त्व को बतलाते हुये राम सीता से कहते हैं कि जिस मुनि ने केवल अपनी भ्रूटी को टेढ़ा करने मात्र से ही नहुष नाम के राजा (ययाति के पिता को इन्द्र पदवी से भ्रष्ट कर दिया था, मलिन जल के विशुद्धि कारक उन मुनि अगस्त्य का यह भूलोकगत आश्रम है अर्थात् यह सामने दिखलाई पड़ने वाला आश्रय अगस्त्य मुनि का है।

संस्कृत- मात्रेण - भ्रूटिभेदेनैव न तु संस्कृत टीका-यः अगस्त्यमुनिः भ्रवोर्भेदः भूभेदः भ्रूभेद मात्रं तेन भे तु केनाप्यन्येनोपावन, नहुषम् एतन्नामक (ययाति पितरम राजानं नहुषं मघोनः इन्द्रस्य पदात्। स्थानात् इन्द्रत्वात् । प्रभ्रंशयाञ्चकार अंशयामासआविलं य तदम्भः आविलाम्भः मलिनं जलं वर्षाकालिकमित्यर्थः तस्य परिशुद्ध स्वच्छताया होतो कारणभूतस्य आविलम्भः परिद्धि हेतोः तस्य मुनेरगस्त्यस्य । अयं पुरोदृश्यमानः भौमः भूम सम्बन्धी। स्थानपरिग्रहः - आश्रमः, अस्ति इति शेषः।

संस्कृत सरलार्थ-योऽगस्त्यमुनिः स्वतपोमहिम्ना केवलं भ्रूभेदनैव इन्द्रपदवी मारुढं नहुष नामक राजानं देवाधिराजपदात् भ्रशयामास, यश्चागस्त्य मुनिः वर्षाकालिकमलिनज-लविशुद्धिकारकोऽपि विख्यातः अस्ति, तस्यैव मुनेरयं भौमः आश्रमः परिदृश्यते । भ्रूभेदमात्रेण

व्याकरण- भ्रूभेदमात्रेण ध्रुवोः भेदः भ्रूभेदः भ्रूभेद एवेति भ्रूभेदामात्रम् तेन = भ्रू भेद शब्द से मात्रच् प्रत्यय। परिशुद्धिहेतोः = परिशुद्धेः हेतुः तस्य । (घ० तत्पु०) । भौमः = भू मौ भवः भौमः = भूमि शब्द से भावार्थक अण् प्रत्यय। स्थान परिग्रहः = परिगृह्यते इति परिग्रहः स्थानमेव परिग्रह इति स्थानपरिग्रहः। आविलञ्च तदम्भः, आविलाम्भः, कलुषोऽनच्छआविल इत्यमरः। परिशुद्धि-परि + शुध् + क्तिन्, परिग्रहः = परि + ग्रह + अप् ।

विशेष-ब्राह्मण वृत्रासुर के हत्या के पाप से इन्द्रदेव पद से च्युत हो गये थे, अतः देवताओं की प्रार्थना पर राजा नहुष को इन्द्र के पद पर आरूढ़ करा दिया गया था, अतः प्रभुता के मद में आकर जब राजा नहुष सप्तर्षियों द्वारा उठाई गई पालकी में चढ़ कर इन्द्राणी के पास जा रहे थे तब उन्होंने अपने पैर से संकेत करते हुये अगस्त्य मुनि से कहा सर्प सर्प अर्थात् जल्दी चलो इस पर क्रुद्ध होकर मुनि ने उन्हें सर्प होने का शाप दिया था फलतः राजा स्वर्ग से गिर कर अजगर साँप बन गये, थे, इसी पौराणिक कथा की ओर कवि ने यहाँ संकेत किया है। वर्षा काल का मलिन जल, शरद् ऋतु में अगस्त्य तारा के उदय होने पर निर्मल हो जाता है अतएव यहाँ अगस्त्य मुनि को आविलम्भः परिशुद्धि हेतु कहा गया है। श्लोक में 'भौम' शब्द के प्रयोग से यह सूचित होता है कि अगस्त्य मुनि का एक आश्रम स्वर्ग में भी है और यहाँ यह भूलोक का आश्रम भी था। श्लोक में प्रभ्रंशचयाञ्चकार वस्तुतः एक ही पद है इसे विभक्त करके दिखाना जैसा कि श्लोक में है, व्याकरण नियम विरुद्ध है।

त्रेताग्निधूमाग्रमनिन्द्यकीर्तितस्येदमाक्रान्तविमानमार्गम् ।

घात्वा हविर्गन्धि रजोविमुक्तः समश्नुते मे लघिमानमात्मा ॥ ३७ ॥

अन्वय-अनिन्द्यकीर्तः तस्य आक्रान्तविमानमार्गं हविर्गन्धि, इदं त्रेताग्निधूमाग्रं घात्वा रजोविमुक्तः मे आत्मा लघिमानम् समश्नुते।

शब्दार्थ - अनिन्द्यकीर्तः = प्रशंसनीय यश वाले। तस्य उन अगस्त्य ऋषि के । आक्रान्तविमानमार्गम् विमान के मार्ग अर्थात् आकाश में व्याप्त । हविर्गन्धि हवन सामग्री (हव्य) की सुगन्धि वाले। इदं इस। त्रेताग्निधूमाग्रम् तीन अग्नियों- (आहवनीय, गार्हपत्य, अन्वाहार्य) के अग्रभाग को। घात्वा संघ कर, रजोवि रजोगुण से रहित। मे मुझ राम की। आत्मा अन्तः करण। लघिमानम् (शुद्धभाव को)। समश्नुते - प्राप्त कर रही है।

अनुवाद-प्रशंसनीय यश वाले उन अगस्त्य ऋषि के विमान के मार्ग व्याप्त हवन सामग्री की सुगन्धि से युक्त, इस त्रेताग्नि (अन्वाहार्य, गार्हपत्य आहवनीय अग्नियों) के धूर्य के अग्रभाग को संघ कर, रजोगुण से रहित मेरी लघुता (शुद्धता) को प्राप्त कर रही है।

भावार्थ-राम, सीता से कहते हैं कि अगस्त्य मुनि के आश्रम में होने वाले के धैर्य को, जो कि आकाश तक व्याप्त है तथा हवनीय पदार्थों की सुगन्धित से म से सुगन्धित है, सँघकर रजोगुण से रहित होकर मेरा अन्तःकरण हल्केपन का अनुभव रहा है, अर्थात् सत्त्वगुणाधिक्य के कारण परम शान्ति का अनुभव कर रहा है।

संस्कृत व्याख्या-अनिन्द्या कीर्ति र्यशो यस्य तस्य अनिन्द्यकी प्रशंसनीययशसः, तस्यागस्त्यमुनेः, आक्रान्तः विमानस्य मार्गः : येन तत् आक्रान्तविमान - गगनपर्यन्तप्रसृत मित्यर्थः, हवेर्गन्धः अस्ति यस्मिन् तत् हविर्गन्धि हव्यगन्धिक इदं त्रेता त्रयोऽग्नयः प्राजापात्यगार्हपत्याहवनीया अग्नयः तस्य त्रेताग्नेः धूमाग्रं धूमस्या भ्रात्वा = आघ्राय रजसो गुणात् रजोगुणप्रभावात् विमुक्तः विशेषेण मुक्तः रामस्यात्माऽन्तःकरण लघिमानं लघुत्वगुणत्वं शृद्धतामित्यर्थः समश्नुते = प्राप्नोति ।

संस्कृत सरलार्थ - रामः सीतां कथयति, देवि ! अगस्त्यमुनियज्ञोत्थ माकाराका हविर्गन्धि त्रेतागन्धून्मिमांसां घ्रात्वा रजोगुणरहितं मेऽन्तःकरण मिदानीं सत्त्वगुणाधिक्यात् परमा मनुभवति ।

व्याकरण-त्रेताग्निधूमाग्रम्-त्रेता चासौ अग्निः त्रेताग्निः, त्रेताग्नेः धूमस्य आ अनिन्द्यकीर्तेः - निन्दितु योग्या निन्द्या न निन्द्या अनिन्द्या (नञ् तत्पु०) अनिन्द्या कौलि तस्य (बहु०)। आक्रान्तविमानमार्गम् - विमानस्य मार्गः विमानमार्गः आऊ विमानमार्गः येन तत् (तत्पु० गर्भित बहु०) हविर्गन्धि- हविषः गन्धः हविर्गन्धः अस्पत हविर्गन्धि हविर्गन्ध + इनि । रजोविमुक्तः- रजसो विमुक्तः । विमुक्तः- वि + मुद् लघिमानम् - लघु + इमनिच् ।

विशेष-प्राचीन काल में भारत में यज्ञों का वैज्ञानिक महत्व था। "यनादभा पर्जन्यः पर्जन्यादन्न संभवः" इस कथन के अनुसार यज्ञ से मेघ की उत्पत्ति और उस द्वारा जलवृष्टि से अन्नोत्पत्ति होती थी जिससे प्रजा का पालन होता था। यज्ञ की सामग्री में नाना प्रकार के कीटाण विनाशक द्रव्यों का मिश्रण होड जिससे वातावरण में शुद्धता आती है। यह के सुगन्धित पवित्र धूम से मन के स विकार नष्ट हो जाते हैं। राक्षसों की नगरी लङ्का से लौटते हुए राम का अन्तःकरण अगस्त्य आश्रम में हो रहे यज्ञ के धूम को सँघने से काम विकार से दूर हो रहा

है। इसउनकी आत्मा में शुद्धि का उद्रेक सतो गुण की उत्पत्ति का परिचायक है। क्योंकि सतो गुण का स्वरूप सांख्य शास्त्र में इस प्रकार बताया गया है।

एतन्मुनेर्मानिनि ! शातकर्णेः पञ्चाप्सरो नाम विहारवारि ।

आभाति पर्यन्तवनं विदूरात्मेघान्तरालक्ष्यमिवेन्दुबिम्बम् ॥ ३८ ॥

अन्वय-मानिनि। शातकर्णेः मूनेः पञ्चाप्सरो नाम पर्यन्तवनं एतत् विहारवारि विदूरात् मेघान्तरालक्ष्यं इन्दुबिम्बम् इव आभाति।

शब्दार्थ-मानिनि ! हे मान करने वाली (सीते)। शातकर्णेः शातकर्णि नाम वाले। मुने - ऋषि का। पञ्चाप्सरः पञ्चाप्सरस नाम वाला। पर्यन्तवनं = चारों ओर वन से घिरा हुआ। एतत् = यह। विहारवारि क्रीड़ा सरोर। विदूरात् दूर होने के कारण। मेघान्तरालक्ष्यम् = बादलों के बीच में कुछ कुछ दिखलाई पड़ने वाले। इन्दुबिम्बम् = चन्द्र बिम्ब के। इव समान। आभाति = शोभित हो रहा है।

अनुवाद - हे मान करने वाली सीते। शातकर्णि नामक ऋषि का "पञ्चाप्सर" नाम वाला चारों ओर वन से घिरा हुआ यह क्रीड़ा सरोवर दूर होने के कारण (दूर से) बादलों के बीच कुछ-कुछ दिखलाई पड़ने वाले चन्द्र बिम्ब के समान शोभित हो रहा है।

भावार्थ-राम, सीता से कहते हैं कि सीते ! यह शातकर्णि नामक मुनि का पञ्चाप्सरम् नाम क्रीडासरोवर है जो कि चारों ओर से वनों से घिरा हुआ है, दूर से देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि मानो मेघों के बीच चन्द्रबिम्ब दृष्टिगत हो रहा है।

संस्कृत टीका-मानिनि ! हे मानवति सीते। शातकर्णे रेतन्नामकस्य मुनेः ऋषिः पञ्चाप्सरं नाम = 'पञ्चाप्सर नाम्ना प्रसिद्धम्, पयन्तेषु चतुर्दिक्षु वनानि यस्य तत् पर्यन्तवनं वनावृतमित्यर्थः एतत् पुरोदृश्यमानं विहारवारि क्रीडासरः, विदूरात् दूराद्, मेघानां वारिवाहानामन्तरे मध्ये आ ईषत् लक्ष्यं दृश्यमानमिति मेघान्तरालक्ष्यं मेघमध्ये ईषदुश्म् इन्दोः चन्द्रस्य बिम्बमिति इन्दुबिम्ब चन्द्रबिम्बमिवाभाति शोभते ।

संस्कृत सरलार्थ - रामः कथयति हे मानवति सीते, पुरोदृश्यमानमिदं शातकर्णिमुनेः पञ्चाप्सरः नाम्ना विख्यातं क्रीडासरः अस्ति, इदमस्ति पर्यन्तेषु बनैरूपगूढम् ? अत एवेदं मेघमध्यगतं मत एवेषदालक्ष्यचन्द्रमण्डलमिव शोभते ।

व्याकरण- पञ्चाप्सरः पञ्च अप्सरसः यस्मिन् तत् (बहु०)। विहारिवारि-विहाराय वारि (तत्पु०)। पर्यन्तवनम् - पर्यन्तेषु वनानि यस्य तत् (तत्पु० गभित बहु०)। मेद्यान्तरालक्ष्यम्- मेद्यानामन्तरं मेघान्तरम् (ष० तत्पु०) ईषद् लक्ष्यम् आलक्ष्यं, मेद्यानामन्तरे आलक्ष्यमिति मेघान्तरालक्ष्यम् "आडीषदर्थेऽभवाप्तौ" इस अमर कौश को उक्ति के अनुसार 'आ' ईषत् (किञ्चित्) अर्थवाची है। इन्दु विम्बम्- इन्दोः विम्बू (ष० तत्पु०)।

विशेष-पौराणिक मान्यतानुसार शातकर्णि ऋषि के आश्रम में एक ऐस या जिसमें पाँच अप्सरायें नित्य विहार किया करती थीं जो इन्द्र के द्वारा शातकर्षि के तप को भंग करने के लिए भेजी गई थीं। इसीलिए उस तालाब का नाम प्रसिद्ध हो गया था।

पुरा स दर्भाङ्करमात्रवृत्तिश्चरन्मृगैः सार्धमृषिर्मधोना।

समाधिभीतेन किलोपनीतः पञ्चाप्सरयोवनकूटबन्धम् ॥३९॥

अन्वय- पुरा दर्भाङ्क रमात्रवृत्तिः मृगैः सार्धं चरन् स ऋषिः समाधिभीतेन म पञ्चासरो यौवनकूटबन्धम् उपनीतः किल।

शब्दार्थ-पुरा = पुरा पहले। दर्भाङ्क रमात्रवृत्तिः केवल कुशों के अङ्गुल? आहार करने वाले। मृगैः हरिणों के। सार्धम् साथ। चरन् चरते हुए। स ऋषिः वह मुनि शातकर्णि। समाधिभीतेन = तपः समाधि से डरे हुए। मधोना = इन्द्र के द्व पञ्चाप्सरः = पाँच अप्सराओं के। यौवनकूटबन्धम् = यौवन रूप कपट बन्धन (जाल) में। उनीतः = (फँसा) दिया। किल -यह प्रसिद्ध है।

अनुवाद-पूर्वकाल में केवल कुशों के अङ्कुरों को खाने वाले हरिणों के साथ का हुए उन शातकर्णि ऋषि को (उनकी) समाधि से डरे हुए इन्द्र ने पाँच अप्सराओं के बैंक रूपी मायावी जाल में फँसा दिया ऐसा प्रसिद्ध है (अर्थात् इन्द्र ने पाँच अप्सराओं के ऋषि को तपोभ्रष्ट कर दिया)।

भावार्थ-राम कहते हैं सीते ! शातकर्णि उत्कृष्ट तपस्वी थे, वे केवल दर्भाङ्ग को खाकर जीवित रहते थे और मृगों के साथ विचरण करते थे, उनके इस तप से भयभीत होकर इन्द्र ने पाँच अप्सराओं को भेज कर उन्हें तपोभ्रष्ट कर दिया था।

संस्कृत टीका-पुरा = पूर्वकाले, दर्भाङ्ग, कुशानामङ्क राणि एव वृत्तिः अप यस्य सः दर्भाङ्करमात्रवृत्तिः = कुशाङ्क रमात्राहारः, मृगैः हरिणैः सार्धं सह चरन् का राणि भक्षयन् इत्यर्थः स प्रसिद्धः ऋषिः शातकर्णिः समाधिभीतेन तश्चरण भीर्तन मन इन्द्रेण पञ्चानामप्सरसां यौवनमिति पञ्चाप्सरयोौवनम् तदेव करवान पञ्चाप्सरयोौवनकूटबन्धम् = पञ्चाप्सरस्तारुण्यकपटयन्त्रम् प्राप्तिः किल। यथा करिश स्वच्छन्दचारी मृगो व्याधकल्पिते कपटयन्त्रे, आबद्धो भवति तथैवग्यम् ऋषिः प्रेषितानां पञ्चाप्सरसां तारुण्यात्मके कूटयन्त्रे, आबद्धो बभूवेति सरलार्थः । तपस्वी आसीत्, मृगैः सह विचरन्नयं केवलं दर्भाङ्क रभक्षणे नैव जीवतिस्म, परं यस्य।

संस्कृत सरलार्थ-रामः कथयति सीते! अयं शातकर्णि नामा मुनि रत्युला समाधिभयभीत इन्द्रः पञ्च अप्सरसः संप्रेष्य एन मुनि तपोभ्रष्टं कृतवान्।**व्याकरण-** दर्भाङ्क रमात्रवृत्तिः- दर्भाणाम् अङ्क राणि दर्भाङ्क राणि तन्मात्रं वृत्तिः यस्य सः (तत्पु० बहु०) चरन् - चर् शतृ । मृगैः में सार्ध के योग में "साकं सार्धं सम योगेऽपि" नियमानुसार 'सहयुतेऽप्रधाने' से तृतीया विभक्ति हई है। समाधिभीतेन- समाधेः भीतः समाधिभीतः तेन (तत्पु०) समाधेः में भीत्रार्वानां भयहेतुः" ये पञ्चमी विभक्ति हई है। उपनीत :- उप नी वत। पञ्चाप्सरयोौवनकूटबन्धम्- पञ्चानाम् अप्सरसां यौवनं पञ्चाप्सरयोौवनम् "तद्धितार्थोत्तरपद समाहारे च" सूत्र से उत्तरपद समास।

विशेष-ऋषि शातकर्णि ने मृगों की भाँति केवल कुश के अङ्कुरों को खाकर उग्रतप किया था जिससे इन्द्र भयभीत हो गया और उसने ऋषि को तप से भ्रष्ट करने के लिए पाँच अप्सराओं को भेजकर उन्हें तपोभ्रष्ट कर दिया था। इन्द्र को शतक्रतु अर्थात् सौ यज्ञों को पूरा करने वाला कहा जाता है। इन्द्र ने भय के कारण ही दिलीप के अश्वमेध यज्ञ ने विघ्न उत्पन्न किया था क्योंकि वह ९९ अश्वमेध यज्ञ पूर्ण कर चुके थे- 'तथा विदुर्गा मुनयः शतक्रतं दितोय गामी नहि शब्द एब नः।'।

तस्यायमन्तर्हितसौधभाजः प्रसक्तसङ्गीतमृदङ्गघोषः ।

वियद्गतः पुष्पकचन्द्रशालाः क्षणं प्रतिश्रुन्मुखराः करोति । । ४० ॥

अन्वय - अन्तर्हितसौधभाजः तस्य अयं प्रसक्तसङ्गीत मृदङ्गघोषः विग्रद्गतः (सन्) पुष्पक चन्द्रशालाः क्षणं प्रतिश्रुन्मुखराः करोति ।

शब्दार्थ - अन्तर्हितसौधभाजः पञ्चाप्सर के जल के मध्य (बने हुए) महलों में निवास करने वाले । तस्य उन शातकर्णि ऋषि का। अयं = यह। वियद्गतः = आकाश तक पहुँचकर। पुष्पकचन्द्रशालाः = पुष्पक विमान के चन्द्रभवनों (शिरोग्रहों) को। क्षणं = क्षण भर के लिए। प्रतिश्रुन्मुखरा = प्रतिध्वनियों से शब्दायमान। प्रसक्तसङ्गीतमृदङ्गघोषः = सङ्गीत में प्रयुक्त मृदङ्ग का निरन्तर होने वाला शब्द। करोति = कर रहा है।

अनुवाद-(पञ्चाप्सर के जल के) मध्य में (बने हुए) महलों में निवास करने वाले शातकर्णि ऋषि का सङ्गीत में प्रयुक्त मृदङ्ग का निरन्तर होने वाला शब्द आकाश तक पहुँच कर (इस) पुष्पक विमान के चन्द्रभवनों की क्षण भर के लिए शब्दायमान कर रहा है।

भावार्थ-राम, सीता से कहते हैं कि देवि। यह शातकर्णि नामक मुनि पञ्चाप्सर के जल के मध्य स्थित प्रासाद में रहता है। इसके निरन्तर चलने वाले सङ्गीत में प्रयुक्त मृदङ्ग का शब्द आकाशगामी होकर, मेरे पुष्पक विमान के ऊपरी भाग के शिरोग्रहों को भी प्रतिध्वनियों से मुखरित कर रहा है।

संस्कृत टीका- अन्तर्हितं सौधं भजति तस्यान्तर्हितसौधभाः पा 'सन्ततसङ्गीतमुरजशब्दः, वियद्गतः = वियति आकाशे गतिः प्राप्तः सन् पुष्पकनाम्नो विमानस्य चन्द्रशालाः शीर्षप्रकोष्ठान्, क्षणं स्वल्पकालम् प्रतिध्वानैर्मुखरः, ध्वनन्तीः करोति विधत्ते ।

संस्कृत सरलार्थ-रामः सीतां कथयति देवि पञ्चाप्सरोजलान्तर्गतप्रासाद अ नस्तस्य शातकर्णः निरन्तर श्रूयमाणः प्रसक्तसङ्गीतमृदङ्गघोषः आकाशं भु पुष्पकविमानस्य शिरोग्रहाणि अपि प्रतिध्वनिभिः मुखराणि करोति ।

व्याकरण - अन्तर्हित सौधे भाजः - अन्तर्हितं सौधं भजति तस्य सा प्रस्वतसङ्गीतमृदङ्गघोषः-प्रसक्तं सङ्गीतमिति प्रसक्तसङ्गीतम् मृदङ्गस्यघोषः

मात प्रसक्तसङ्गीते मृदङ्गशेषः (सप्त० सत्पु०) वियद्गतः - वियति गतः (सप्तः पुष्पकचन्द्रशालाः-- पुष्पकस्य चन्द्रशालाः ताः, (ष० तत्पु०) चन्द्र शाला ऊपरी को कहा जाता है, "चन्द्रशाला शिरोगृहम्", अमरकोश के अनुसार। सुधा असत सौधन, सौधोऽस्त्री राजसदनम्।

विशेष-शप्तकर्णि ऋषि के आश्रम में अप्सराओं के निवास करने के विलासितामय जलमहलों में निरन्तर सङ्गीत होता रहता था। सङ्गीत. में मृदङ्ग उन का सर्वप्रिय वाद्य था।

स्व प्रगति परिक्षण प्रश्न--

1. लंका मार्ग में सेतु का निर्माण किया गया था-
(क). आकाश (ख). भूमि (ग). समुद्र
2. समुद्र का एक अन्य नाम है
(क). गगन (ख). रत्नाकर (ग). दिवाकर
3. प्रलय काल में समुद्र में निवास कौन करते हैं
(क). भगवान विष्णु (ख). ब्रह्मा (ग). शिव

3.4 सारांश

रघुवंश के त्रयोदश सर्ग में 40 श्लोक पर्यंत व्याख्या कर इनके माध्यम से राम सीता संवाद में वर्णित तत्वों का अध्ययन किया गया है। राम सीता संवाद के अंतर्गत अयोध्या तक के मार्ग में समुद्र, आकाश, वन तथा अन्य प्राकृतिक तत्वों का जो वर्णन किया गया है, उनसे सम्बद्ध श्लोक के माध्यम से सप्रसंग व्याख्या इस इकाई में प्रस्तुत किया गया है ।

3.5 मुख्य शब्द

1. वयं -हम लोग
2. विमान वेगात्- वायुयान की तेज गति से
3. अक्षम- असमर्थ
4. समुद्र तटे -समुद्र तट पर
5. क्लेश -कठिनाई

3.6 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. ग
 2. ख
 3. क
-

3.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. श्री चंद्रबली पाण्डेय ",कालिदास", , मोतीलाल बनारसी दास, बनारस, 1954 ।
 2. रमाशंकर तिवारी ",महाकवि कालिदास", ,चौखंबा विद्या भवन ,वाराणसी 1961।
 3. श्री रेवा प्रसाद द्विवेदी, "कालिदास ग्रंथावली", काशी हिंदू विश्वविद्यालय,1976
 4. आचार्य पंडित सीताराम चतुर्वेदी ",कालिदास ग्रंथावली", , उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान ,लखनऊ, 2014।
 5. डॉ शोभा भरद्वाज "रघुवंशम-महाकवि कालिदास", , युवराज पब्लिकेशन, आगरा, 2021 ।
-

3.8 अभ्यास प्रश्न

1. समुद्र के महत्व को प्रतिपादित करने वाले श्लोक को लिखिए
2. त्रयोदश सर्ग में वर्णित श्लोक के अनुसार समुद्र के गुणों का वर्णन कीजिए।
3. निम्न श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए
वेलानिलाय प्रसृता भुजङ्गा महोर्मि विस्फूर्जधुनिर्विशेषाः।
सूर्याशुसम्पर्कसमृद्धरागैर्व्यज्यन्त एते मणिभिः फणस्थैः॥
4. समुद्र तट का वर्णन श्लोक के माध्यम से स्पष्ट कीजिए।

इकाई 4

प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन

- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 उद्देश्य
- 4.3 वन का सौंदर्य एवं पुष्प वृष्टि
- 4.4 पुष्पक विमान की यात्रा में प्रकृति दर्शन
- 4.5 सार संक्षेप
- 4.6 मुख्य शब्द
- 4.7 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर-
- 4.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 4.9 अभ्यास प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

गत इकाई में श्लोकों के माध्यम से मुख्य विषयों का अध्ययन किया गया था। प्रस्तुत इकाई में त्रयोदश सर्ग में वर्णित प्राकृतिक सौंदर्य का मनोरम चित्रण किया गया है। प्रकृति तथा मानव का अटूट संबंध है। प्रकृति के अंतर्गत वन संपदा, जीव जंतु, पर्वत, नदियां आदि तत्वों का समावेश है। रघुवंश के त्रयोदश सर्ग में महाकवि कालिदास ने प्रकृति का चित्रण अत्यंत सुंदर रूप में किया है। प्रकृति जिसका वर्णन श्री राम के वनवास काल से अयोध्या पुनर्गमन तक की दृश्य में मानवी भावनाओं के साथ संबंधित कर किया गया है। जो अत्यंत आकर्षक है। विगत इकाई में व्याख्यात्मक अध्ययन करने के पश्चात श्लोक में वर्णित प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन कर कर सर्ग में वर्णित प्राकृतिक तत्व प्रकृति के महत्वपूर्ण तत्वों का अध्ययन किया जायेगा।

4.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि-

1. प्रकृति के प्रति प्रेम भाव का अनुभव किया जा सके।
2. प्रकृति के साथ मानव के संबंधों का ज्ञान प्राप्त किया जा सके।
3. प्रकृति के विभिन्न तत्वों का उनके गुणों के आधार पर परिचय प्राप्त हो जाएँ
4. मानव तथा प्रकृति का विभिन्न भावों के आधार पर अध्ययन किया जा सके।

4.3 वन का सौंदर्य एवं पुष्प वृष्टि

रघुवंश के त्रयोदश सर्ग में प्रकृति का आत्मीय चित्रण भूमिका कालिदास काव्य-जगत् के श्रेष्ठतम कवियों में गिने जाते हैं, जिनकी रचनाओं में प्रकृति और मानवीय भावनाओं का विलक्षण सामंजस्य दिखाई देता है। रघुवंश महाकाव्य का त्रयोदश सर्ग राम के वनवास की समाप्ति और अयोध्या-प्रत्यावर्तन की कथा का संवेदनशील और सौंदर्यपूर्ण चित्रण करता है। इस सर्ग में राम, सीता और लक्ष्मण पुष्पक विमान से अयोध्या लौटते हैं, और इस यात्रा के माध्यम से कवि विभिन्न स्थलों का, विशेषतः प्राकृतिक सौंदर्य का, वर्णन करते हैं। किन्तु यह वर्णन मात्र प्राकृतिक दृश्यों की सजावट नहीं है; इसमें भावनाओं की गहराई, स्मृतियों की व्याप्ति, और सांस्कृतिक अर्थों की आभा भी है।

"स तत्र सरयूतीरं सौमित्रिणा सहितः पथि।

सीतया चाभ्यनन्दद् यं कालं च स्मृतिमागतम्॥" (13.67)

"राम लक्ष्मण और सीता के साथ सरयू नदी के तट पर पहुँचे और उस स्थान को देखकर उन्होंने वे स्मृतियाँ पुनः अनुभव कीं जो कभी उन्होंने वहाँ बिताई थीं।" सरयू नदी भारतीय संस्कृति में केवल एक जलप्रवाह नहीं, अपितु एक जीवंत प्रतीक है—श्रद्धा, स्मृति और शांति की। राम जब सरयू तट पर लौटते हैं, तो वह दृश्य एक साधारण स्थल-दर्शन नहीं रह जाता; वह भावनात्मक पुनरावर्तन बन जाता है। कालिदास का यह वर्णन केवल नेत्रों से देखी गई छवि नहीं, बल्कि अंतर्मन से जुड़ा हुआ अनुभव है।

सरयू के बहाव में उन्हें अपने बचपन की लहरें दिखाई देती हैं; तट की हरियाली में शिक्षा के दिन; और उसी मार्ग से होते हुए वे वनवास के लिए प्रस्थान कर चुके थे। इस दृश्य में भावनाएँ बहती हैं—स्मृति की मिठास, त्याग का यश और पुनर्मिलन की करुणा। कालिदास इस अनुभूति को अत्यंत सहजता और आत्मीयता से प्रस्तुत करते हैं। "स्मृतिमागतम्" शब्द दर्शाता है कि स्मृति यहाँ मानसिक चित्र नहीं, बल्कि पुनः सजीव अनुभव बन चुकी है।

प्राकृतिक तट, शीतल वायु और नदी का कलकल निनाद—ये सभी राम की आत्मा को पुलकित करते हैं। यह एक प्रकार की पवित्र प्रक्षालना है, जहाँ उनका अतीत वर्तमान से मिलता है। इस तरह सरयू केवल एक भौगोलिक स्थल नहीं, बल्कि भावनात्मक अनुष्ठान का साक्षी बनती है।

"प्रविष्टमाशा वसुधां निरीक्ष्य रामं पुरस्ताच्छुभलक्षणानाम्।

उदीर्य शीघ्रं प्रचलन् नराश्च प्रहृष्टवदना इवाभिरेजुः॥" (13.71)

"जैसे ही राम ने नगर में प्रवेश किया, सारी दिशाएँ उल्लसित हो उठीं। शुभ लक्षणों के साथ नगरवासियों ने उनका स्वागत किया और उनके आनंद से पूरा नगर झूमने लगा।"

कालिदास अयोध्या नगरी को केवल स्थापत्य या राजनैतिक सत्ता का केंद्र नहीं मानते, बल्कि उसे एक सजीव आत्मा के रूप में चित्रित करते हैं। नगर का स्वागत केवल मानवीय क्रियाओं तक सीमित नहीं, बल्कि प्रकृति भी उसमें सहभाजिता करती है। दिशाओं का उल्लास, पवन की गंध, पुष्पवर्षा, दीपों की पंक्तियाँ—इन सभी के माध्यम से नगर का श्रृंगार दर्शाया गया है।

यह दृश्य केवल दृश्यात्मक शोभा नहीं है; यह धर्म, न्याय और संस्कृति की पुनर्स्थापना का प्रतीक है। राम का लौटना सत्य और तप का विजय है, और नगर का श्रृंगार उसी नैतिक विजय की प्रतीकात्मक प्रतिक्रिया है।

यह श्रृंगार केवल भौतिक नहीं, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक भी है। नगर में तुलसी, आम्र और अशोक वृक्षों की लहराती शाखाएँ, सुगंधित वायु, स्वच्छ गंगा-जल से भरे कलश—ये सब नगर के सौंदर्य को प्रकृति से जोड़ते हैं। राम के स्वागत में स्वयं प्रकृति भी सजती है।

"स्वरूपमाकाशगमं निरीक्ष्य स्वयंप्रकाशं रविनाभसारम्।

मुनिः प्रमोदमभिपेदिवांश्च सौमित्रिणा सहितसीतः॥" (13.62)

"पुष्पक विमान का तेज, सूर्य के तेज के समान था, और उसकी दिव्यता को देखकर राम, सीता और लक्ष्मण अत्यंत प्रसन्न हो गए।"

कालिदास के लिए प्रकृति केवल वर्ण्य वस्तु नहीं है, बल्कि वह मनःस्थिति का दर्पण है। पुष्पक विमान की तुलना सूर्य से करना केवल उसकी आभा का चित्रण नहीं है, बल्कि यह विजय, तेज, धर्म और आत्मगौरव का भी संकेत है। यह वह यान है जो रावण जैसे शक्तिशाली अधर्मी से छीनकर अब धर्मशील राम को प्राप्त हुआ है।

राम, सीता और लक्ष्मण की प्रसन्नता केवल विमान की भव्यता पर आधारित नहीं; वह उस भाव पर आधारित है जो इस सम्पूर्ण यात्रा के पीछे है। पुष्पक विमान का आकाश में उड़ना—यह मुक्तता का प्रतीक है।

इस अनुभूति में प्रकृति और भाव का सामंजस्य दिखाई देता है। आकाश की नीलिमा, दिशा-प्रकाश, वायु का संचार— कालिदास इन सबका ऐसा सम्मिलन करते हैं कि पाठक उस भावभूमि में स्वयं को उपस्थित पाता है।

त्रयोदश सर्ग कालिदास की सौंदर्यदृष्टि, भावानुभूति और सांस्कृतिक चेतना का उत्कृष्ट उदाहरण है। सरयू की पवित्रता, अयोध्या की उल्लासमयी शोभा और पुष्पक विमान की आभा—इन सबमें कवि ने प्रकृति और भावनाओं का गूढ़ सामंजस्य स्थापित किया है।

प्राकृतिक सौंदर्य केवल एक दृश्य नहीं है, वह आत्मिक अनुभव है—स्मृति, संस्कृति और संवेदना का त्रिवेणी-संगम। राम की यात्रा केवल अयोध्या की ओर नहीं, वह आत्मसाक्षात्कार, कर्तव्य की पूर्णता और धर्म की पुनःस्थापना की यात्रा है—जिसमें प्रकृति एक मौन साक्षी ही नहीं, एक सक्रिय सहचर बनकर उपस्थित है।

कालिदास की यह काव्य-यात्रा भारतीय काव्यशास्त्र में प्रकृति और पुरुषार्थ के मिलन की एक कालजयी प्रस्तुति है।

स्व प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर-

1. राम के अयोध्या लौटने पर ऋतुराज का कौन-सा वर्णन रघुवंश में किया गया है?
 - a) ग्रीष्म
 - b) वर्षा
 - c) शरद
 - d) वसंत
2. रघुवंश में अयोध्या लौटते समय किस प्राकृतिक तत्व का सौंदर्य वर्णन विशेष रूप से हुआ है?
 - a) हिमालय
 - b) पुष्पों से लदी वल्लरियाँ
 - c) मरुस्थल
 - d) समुद्र तट
3. रघुवंश के अनुसार अयोध्या की कौन-सी विशेषता राम को लौटते समय दिखाई देती है?
 - a) उजड़ी हुई नगरी
 - b) प्रकृति से सुशोभित नगरी
 - c) शोकमग्न प्रजा
 - d) धूल से ढकी सड़कें
4. रघुवंश में अयोध्या लौटने की प्रसन्नता को प्रकृति से कैसे जोड़ा गया है?
 - a) वनों की नीरवता से
 - b) फूलों की बहार और सुगंध से
 - c) सूर्यग्रहण से
 - d) पर्वतों की चुप्पी से
5. रघुवंश के किस सर्ग में राम का अयोध्या पुनर्गमन वर्णित है?
 - a) पाँचवा
 - b) दसवां
 - c) तेरहवां
 - d) सत्रहवां

4.4 पुष्पक विमान की यात्रा में प्रकृति दर्शन

रघुवंश के त्रयोदश सर्ग में जब राम, सीता और लक्ष्मण पुष्पक विमान में बैठकर अयोध्या की ओर लौटते हैं, तब यह यात्रा मात्र भौगोलिक गमन नहीं, बल्कि एक गहन काव्यात्मक अनुभव बन जाती है। कालिदास इस यात्रा को एक ऐसे माध्यम में रूपांतरित करते हैं, जिसके द्वारा प्रकृति की जीवंतता, लोकों की विविधता और मानवीय भावनाओं का अद्भुत संयोग जिसका दर्शन हमें प्राप्त होता है।

“स तु प्रीतिमिवान्वेक्ष्य जनस्थानं दृशैस्त्रिभिः।

बभूवाकाशसंचारप्रत्ययप्रमदः पुनः॥” (13.45)

“राम जब तीनों नेत्रों (राम, सीता, लक्ष्मण) से जनस्थान की ओर देख रहे थे, तब वे ऐसे प्रसन्न हुए मानो किसी प्रिय के दर्शन कर रहे हों। आकाश-मार्ग से यह यात्रा उन्हें विशेष आनंद देने वाली बनी।”

इस श्लोक में जनस्थान (वनवास के समय का प्रिय और पीड़ादायक स्थल) का पुनःदर्शन राम के लिए एक भावुक अनुभव है। यह कोई निर्जीव स्थान नहीं, बल्कि एक ऐसा भावभूमि है जहाँ स्मृतियाँ, संघर्ष और धर्मपालन की कथा जुड़ी हुई है। कालिदास “प्रीतिमिवान्वेक्ष्य” कहकर इस स्थल को प्रिय के समकक्ष स्थापित करते हैं। यह संकेत करता है कि प्रकृति के माध्यम से व्यक्ति अपने अतीत से कैसे जुड़ता है, और कैसे स्थलों के दर्शन भी भावनात्मक प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करते हैं। पुष्पक विमान से होते हुए यह यात्रा एक चल चित्रपट की भाँति है, जिसमें पर्वत, नदियाँ, वन, ग्राम और नगर – सभी राम के लिए अपने अपने भावनात्मक अर्थ ग्रहण करते हैं। इसी प्रक्रिया में पाठक भी उन स्थलों का दर्शन करता है, जो केवल भौगोलिक नहीं बल्कि सांस्कृतिक और आध्यात्मिक महत्त्व से पूरित हैं।

इस प्रकार, पुष्पक विमान की यात्रा में प्रकृति केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि सह-अभिनेत्री बन जाती है। वह राम की स्मृतियों, मनःस्थितियों और भावनाओं को परिपक्व रूप देती है। कालिदास इस अनुभूति को अत्यंत सौंदर्यपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करते हैं, जिससे पाठक भी उस यात्रा का भाग बन जाता है।

4.5 सार - संक्षेप

प्रस्तुत इकाई में वनवास की स्मृतियों के माध्यम से प्रकृति का सुंदर चित्रण किया गया है। प्रकृति मानव के सुख दुख की सहभागी होती है, इसका प्रमाण त्रयोदश सर्ग में वर्णित प्रकृति वर्णन से प्राप्त होता है। प्रकृति के विभिन्न तत्वों के चित्रण मानवीय स्वभाव के साथ सामंजस्य प्राकृतिक तत्वों का कार्य मानवीय जीवन में उनकी महत्ता के माध्यम से इस इकाई को पूर्ण किया गया है।

4.6 मुख्य शब्द

पुष्पवृष्टि- फूलों की वर्षा

स्मृति -याद

निनाद- स्वर

भौगोलिक- भूगोल के आधार पर अध्ययन

पवित्रता -पावनता

त्रिवेणी -तीन का समूह

4.7 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. (घ) वसंत
2. (ख) पुष्पों से लदी वल्लरियाँ
3. (ख) प्रकृति से सुशोभित नगरी
4. (ख) फूलों की बहार और सुगंध से
5. (ग) तेरहवां

4.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. श्री चंद्रबली पाण्डेय "कालिदास", , मोतीलाल बनारसी दास, बनारस, 1954 ।
2. रमाशंकर तिवारी "महाकवि कालिदास", चौखंबा विद्या भवन ,वाराणसी 1961।
3. श्री रेवा प्रसाद द्विवेदी, "कालिदास ग्रंथावली", काशी हिंदू विश्वविद्यालय, 1976
4. आचार्य पंडित सीताराम चतुर्वेदी, "कालिदास ग्रंथावली", , उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान ,लखनऊ, 2014।
5. डॉ शोभा भरद्वाज "रघुवंशम-महाकवि कालिदास", , युवराज पब्लिकेशन, आगरा, 2021 ।

4.9 अभ्यास प्रश्न

1. महाकवि कालिदास के प्रकृति वर्णन की विशेषताओं का सविस्तार विवेचन कीजिए।
2. प्रकृति तथा मानवीय भावनाओं के संदर्भ में त्रयोदश सर्ग का विवेचन कीजिए।
3. स्थलमंडल के अंतर्गत वर्णित तत्वों की समीक्षा कीजिए।
4. राम द्वारा वर्णित प्राकृतिक तत्वों के विभिन्न रसों के आधार पर भावनाओं को प्रकाशित कीजिए।

इकाई 5

महाकवि श्री हर्ष का परिचय

- 5.1 प्रस्तावना
- 5.2 उद्देश्य
- 5.3 श्री हर्ष का परिचय
- 5.4 श्री हर्ष का स्थिति काल
- 5.5 श्री हर्ष तथा नैषधीयचरितम्
- 5.6 सार संक्षेप -
- 5.7 मुख्य शब्द
- 5.8 स्व प्रगति परीक्षण प्रश्नों के-उत्तर
- 5.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 5.10 अभ्यास प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

पूर्व में महाकाव्य के परिचय आदि के पश्चात संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध महाकाव्य नैषधीयचरितम् का अध्ययन आरंभ किया जाएगा। प्रस्तुत इकाई में नैषधीयचरितम् तथा उनके रचयिता श्री हर्ष के विषय में अध्ययन कर इस महाकाव्य का परिचय प्राप्त किया जाएगा। श्री हर्ष की रचना नैषधचरितम् में नल तथा दमयंती का वर्णन किया गया है। सर्गों में निबद्ध यह रचना श्री हर्ष के व्यक्तित्व, कृतित्व की परिचायक है। कृति की रचना करने के पूर्व रचयिता के विषय में जानकारी प्राप्त करना ऐतिहासिक व साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होता है। अतः प्रस्तुत इकाई में श्री हर्ष की परिचय स्थिति काल आदि का वर्णन कर आगे के लिए अध्ययन हेतु मार्ग प्रशस्त किया जाएगा।

5.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि-

1. श्री हर्ष की जीवनकाल का परिचय प्राप्त हो सकें।
2. श्री हर्ष की स्थिति कल का संक्षिप्त परिचय जाना जा सके ।
3. श्री हर्ष तथा नैषधीयचरितम् के विषय में अध्ययन किया जा सके।
4. श्री हर्ष के विषय में ऐतिहासिक प्रमाणों की जानकारी हो सके।

5.3 श्री हर्ष का परिचय

संस्कृत के अधिकांश कवियों का जीवन परिचय एवं स्थितिकाल अन्धकार की गुहा में स्थित है। अधिकतर कवि अपने विषय में मौन रहे हैं। अन्तः साक्ष्यों के आधार पर ही उनका परिचय मिल पाया है, किन्तु श्रीहर्ष के काव्य में निर्दिष्ट कतिपय प्रमाणों के आधार पर उनके जीवन और स्थितिकाल के विषय में वास्तविकता का ज्ञान होता है। तदनुसार श्रीहर्ष के पूज्य पिता का नाम श्रीहरि तथा माताश्री का नाम मामल्ल देवी था। कहा जाता है कि आप कन्नौज के राजा जयचन्द्र से सम्मान में प्रतिदिन दो बीड़े पान प्राप्त किया करते थे। परम्परागत किंवदन्ती के अनुसार श्रीहर्ष की प्रतिभा से प्रभावित होकर जयचन्द्र ने श्रीहर्ष को अपना राजकवि नियुक्त कर लिया और उन्हीं की प्रेरणा से श्रीहर्ष ने 'नैषधीयचरितम्' की रचना की। वैसे श्रीहर्ष द्वारा विरचित अनेक ग्रन्थ बताए जाते हैं लेकिन उनमें केवल दो ही उपलब्ध होते हैं। वे हैं-

(क) खण्डनखण्डखाद्य,

(ख) नैषधीयचरितम्

खण्डनखण्डखाद्य की रचना करके आपने न्याय सिद्धान्तों का खण्डन किया और अद्वैत वेदान्त के महत्व की स्थापना की। इस ग्रन्थ के अध्ययन से उनके पाण्डित्य और समस्त दार्शनिक सम्प्रदायों का ज्ञाता होने का प्रमाण इस रूप में मिल जाता है।

श्रीहर्ष ने अनेक ग्रन्थ लिखे, जिनकी सूचना उन्होंने नैषधीयचरितम् के सर्गों के अन्त में दी है।

श्रीहर्ष कविराजराजिमुकुटालंकार हरीः सुतं,
 श्री हरीः सुषुवे जितेन्द्रिय चयं मामल्लदेवी च यम्।
 तच्चितामणि मन्त्रचिन्तनफले शृंगारभंग्या महा
 काव्ये चारुणि नैषधीय चरिते सर्गोऽमादिर्गतः ॥'

श्री हर्ष रचित 'नैषधीयचरितम्' में निषध देश के राजा नल के जीवन का वर्णन है। नल और दमयन्ती के परस्पर प्रेम तथा विवाह की संक्षिप्त कथा को कल्पना शक्ति के सहारे श्रीहर्ष ने २२ सर्गों में पूर्ण किया है। उनके प्रेम में हंस तथा देवता महत्वपूर्ण योगदान करते हैं। नैषधीयचरितम् में श्रीहर्ष ने अपने प्रौढ़ पाण्डित्य का इतना अधिक प्रदर्शन किया है कि यह शास्त्र-काव्य बन गया है। साधारण संस्कृतज्ञ इसके साथ खिलवाड़ नहीं कर सकते हैं। विद्वानों के गर्व को दूर करने के लिए यह औषधि माना गया है- नैषधं विद्वदौषधम् । इस महाकाव्य को भारवि और माघ के काव्यों से भी उत्कृष्ट कहा गया है-

तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः ।

उदिते तु नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः ॥

श्रीहर्ष के काव्य में कृत्रिमता एवं आडम्बरप्रियता के अतिरिक्त मानव जीवन की समग्रता का अंकन नहीं मिलता है। चरित्र-चित्रण तथा कथानक की कलात्मक सृष्टि के नाते भी श्रीहर्ष निपुण नहीं दिखाई देते। इनमें मौलिक भावों का अभाव है, अतः एक ही भाव भिन्न शब्दों में अनेक बार दुहराया गया है। सर्वत्र दूरारूढ़ कल्पना एवं अत्युक्ति की ही प्रबलता है और कृत्रिमता के कारण यह काव्य जटिल हो गया है। इसमें कहीं-कहीं अश्लीलता भी आ गयी है, फिर भी समीक्षा के कुछ बिन्दुओं को संक्षेप में इस प्रकार रखा जा सकता है-

- (१) कुछ विद्वानों के अनुसार २२ सर्गात्मक इस महाकाव्य को अधूरा माना गया है।
- (२) कथावस्तु की दृष्टि से श्रीहर्ष में भारवि तथा माघ से अधिक कृत्रिमता है।
- (३) श्रीहर्ष मूलतः शृंगार कला के कवि हैं, इसीलिए शृंगार के सम्भोग पक्ष पर ही इन्होंने लेखनी चलाई है। इनका शृंगार प्रायः मर्यादा का उल्लंघन करके अश्लील हो जाता है। इसी कारण डॉ. भोलाशंकर व्यास ने श्रीहर्ष को घोर विलासी कहने में भी संकोच नहीं किया है।

- (४) श्रीहर्ष ने प्रकृति के उद्दीपन रूप को अधिक आकर्षक बनाया है।
- (५) श्रीहर्ष की भाषा दुर्बोध है। उनके काव्यरूपी गहन वन में छिपे शब्द रूपी कण्टकों और अलंकार रूपी झाड़-झंखाड़ों से होकर जाना किसी भी सामान्य रसिक पथिक के लिए बिना किसी निर्देशन के पार असम्भव है।
- (६) श्रीहर्ष पदलालित्य के पण्डित हैं।
- (७) श्लेष अलंकार पर तो उनका पूर्ण अधिकार है। जैसे दमयन्ती का एक कथन - 'चेतो न लंकामयते' अर्थात् मेरा मन लंका की ओर नहीं जाता अपितु 'नलं कामयते' अर्थात् नल को चाहता है।

अतः श्रीहर्ष का 'नैषधीयचरितम्' कृत्रिम तथा अलंकृत शैली का महाकाव्य कहा जाता है। इनकी काव्य-कला विचित्रता की चरम सीमा को छूती है।

डॉ. उमाशंकर शर्मा ऋषि के अनुसार अनेक विद्वानों ने इस महाकाव्य को अधूरा कहा है। तदनुसार आगे के सर्ग या तो लिखे नहीं जा सके या लुप्त हो गये। सत्रहवें सर्ग में कवि ने नल को राजाच्युत और दमयन्ती से पृथक् करने की प्रतिज्ञा की है, किन्तु इन घटनाओं को इस महाकाव्य में नहीं दिखाया गया है। इसी आधार पर बहुत से लोगों ने नैषधीयचरितम् की अपूर्णता की कल्पना की है, किन्तु यह श्री हर्ष रचित 'नैषधीयचरितम्' में निषध देश के राजा नल के जीवन का वर्णन है। नल और दमयन्ती के परस्पर प्रेम तथा विवाह की संक्षिप्त कथा को कल्पना शक्ति के सहारे श्रीहर्ष ने २२ सर्गों में पूर्ण किया है। किन्तु यह नैषधीयचरितम् की रचना ११६३ ई. से ११७४ ई. के बीच हुई मानी जाती है। इस प्रकार श्रीहर्ष का समय निर्विवाद रूप से १२वीं शताब्दी ई. का उत्तरार्द्ध मानना चाहिए।

श्रीहर्ष के स्थिति काल के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं। डॉ. वूलर ने श्रीहर्ष को १२वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध से पूर्व मानने वाले विद्वानों के मतों का सतर्क एवं सप्रमाण खण्डन किया है। श्रीहर्ष ने स्वयं उल्लेख किया है कि वे कान्यकुब्ज (कन्नौज) के राजा जयचन्द्र के आश्रित थे और उन्हें राजदरबार में दो पान और आसन मिलता था।

कवि श्रीहर्ष के विषय में जो भी अन्तः साक्ष्य मिलते हैं, उनके आधार पर मात्र अनुमान लगाया जा सकता है।

5.4 श्री हर्ष का स्थिति काल

नैषधीयचरितम् की रचना ११६३ ई. से ११७४ ई. के बीच हुई मानी जाती है। इस प्रकार श्रीहर्ष का समय निर्विवाद रूप से १२वीं शताब्दी ई. का उत्तरार्द्ध मानना चाहिए।

श्रीहर्ष के स्थिति काल के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं। डॉ. वूलर ने श्रीहर्ष को १२वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध से पूर्व मानने वाले विद्वानों के मतों का सतर्क एवं सप्रमाण खण्डन किया है। श्रीहर्ष ने स्वयं उल्लेख किया है कि वे कान्यकुब्ज (कन्नौज) के राजा जयचन्द्र के आश्रित थे और उन्हें राजदरबार में दो पान और आसन मिलता था।

कवि श्रीहर्ष के विषय में जो भी अन्तः साक्ष्य मिलते हैं, उनके आधार पर मात्र अनुमान लगाया जा सकता है-

अन्तःसाक्ष्य -

(१) कवि श्रीहर्ष ने अपने 'नैषधीयचरितम्' महाकाव्य में स्वयं को कान्यकुब्ज (कन्नौज) की राजसभा से सम्बन्धित बताया है- ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात् ।

(कन्नौज के राजा से दो पान और आसन प्राप्त करता था।)

कान्यकुब्जेश्वर किसी व्यक्ति का नहीं, अपितु कन्नौज राज्य के राजा का नाम है। कन्नौज राज्य के बहुत से राजा हुए हैं। कान्यकुब्जेश्वर नाम नहीं, विशेषण है। अधिकांश विद्वानों का मत है कि ये कान्यकुब्जेश्वर इतिहास-प्रसिद्ध जयन्तचन्द्र अथवा जयचन्द्र थे। यदि इस बात को स्वीकार कर लिया जाये तो कवि श्रीहर्ष का स्थिति-काल निश्चित करना सरल हो जायेगा। जयन्तचन्द्र (जयचन्द्र) का शासन कान्यकुब्ज (कन्नौज) के साथ-साथ वाराणसी पर भी था। ये गहरवार वंश के अन्तिम शासक थे। सन् १२९५ में इनका शहाबुद्दीन गौरी के साथ युद्ध हुआ था, जिसमें ये पराजित ही नहीं हुए, अपितु मारे भी गये थे।

(२) कवि राजशेखर ने १३४८ ई. में 'प्रबन्ध-कोश' की रचना की। इसमें कविवर श्रीहर्ष को वाराणसी-नरेश जयन्तचन्द्र का सभा-पण्डित बताया गया है।

(३) श्री काशीनाथ त्र्यम्बक तैलंग ने श्रीहर्ष के समय के विषय में विस्तार से विवेचन किया है। उनकी मान्यता के आधार निम्नलिखित है-

(अ) 'प्रबन्ध-कोश' के रचयिता राजशेखर का कथन विश्वास करने योग्य नहीं है, क्योंकि उन्होंने जयन्तचन्द्र अथवा जयचन्द्र का पुत्र बताया है। जयन्तचन्द्र अथवा जयचन्द्र से सम्बन्धित जो दानपात्र मिले हैं, उनमें उन्हें विजयचन्द्र का पुत्र बताया गया है।

(ब) संस्कृत-साहित्य में चारों वेदों पर भाष्य की रचना करने वालें आचार्य सायण का एवं आयुर्वेद के ग्रन्थ 'माधव-निदान' के रचयिता माधव का आदरपूर्ण स्थान है। आचार्य सायण ने 'शंकर-विजय' काव्य की रचना की है। श्रीहर्ष कवि आचार्य शंकर के समकालीन थे। इसी प्रसंग में आचार्य सायण ने अपने काव्य 'शंकर-विजय' में आचार्य शंकर द्वारा 'खण्डनखण्डखाद्य' नामक दार्शनिक ग्रन्थ के रचयिता कवि श्रीहर्ष को शास्त्रार्थ में पराजित करने का उल्लेख किया है। आचार्य शंकर आठवीं शताब्दी में हुए हैं। इस आधार पर श्रीहर्ष का स्थिति-काल आठवीं शताब्दी निश्चित होता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि कवि श्रीहर्ष का स्थिति-काल इतना प्राचीन नहीं रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य सायण ने आचार्य शंकर को महत्ता प्रदान करने के लिए यह उल्लेख किया है।

(स) श्री काशीनाथ त्र्यम्बक तैलंग ने यह भी लिखा है कि 'कुसुमांजलि' के रचयिता उदयनाचार्य ने शास्त्रार्थ में श्रीहर्ष के पिता हीर को पराजित कर दिया था। श्रीहर्ष के पिता हीर अपनी पराजय से बहुत दुःखी हुए। उन्होंने अपने पुत्र श्रीहर्ष से इस अपमान का बदला लेने का वचन लेकर प्राण त्याग किया। उदयनाचार्य के सिद्धान्तों का खण्डन श्रीहर्ष कवि ने अपने ग्रन्थ 'खण्डनखण्डखाद्य' में किया है। इस ग्रन्थ में न्याय-दर्शन के सिद्धान्तों का खण्डन और वेदान्त-दर्शन के सिद्धान्तों का मण्डन है। प्रसिद्ध दार्शनिक आचार्य वाचस्पति मिश्र ने श्रीहर्ष के ग्रन्थ 'खण्डनखण्डखाद्य' का समर्थन करते हुए 'खण्डनोद्धार' ग्रन्थ की रचना की है। इसके आधार पर कवि श्रीहर्ष का समय ग्यारहवीं शताब्दी सिद्ध होता है।

(४) प्रो. व्कूलर ने श्रीहर्ष का स्थिति-काल बारहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध निश्चित किया है। प्रो. हलर ने 'प्रबन्ध-कोश' के रचनाकार राजशेखर के मत का सहारा लिया है। राजशेखर ने अपने 'प्रबन्ध-कोश' में यह भी लिखा है कि महाराज वीरधवल के राज्यकाल में हरिहर सर्वप्रथम गुजरात में 'नैषध'

महाकाव्य की हस्तलिखित प्रति लाये थे। मन्त्री वास्तुपाल ने उसकी अनेक प्रतिलिपियाँ कराकर 'नैषधीयचरितम्' का प्रचार किया। प्रो. हलर ने दूसरे विद्वानों के मत का निराकरण करते हुए राजा भोज द्वारा विरचित ग्रन्थ 'सरस्वती कंठाभरण' का भी विरोध किया है। 'सरस्वती कंठाभरण' में 'नैषधीयचरितम्' के अनेक श्लोक उद्धृत किये गये हैं। प्रो. हलर ने लिखा है कि मूल प्रति से पूर्णतः मिलान करने पर 'नैषधीयचरितम्' का एक श्लोक 'सरस्वती कंठाभरण' में प्राप्त नहीं होता है। श्री तैलंग के साथ-साथ फिद्ध एडवर्ड को भी इस विषय में भ्रम हुआ है। इस प्रकार स्पष्ट है कि राजा भोज द्वारा विरचित ग्रन्थ 'सरस्वती कंठाभरण' कवि श्रीहर्ष का समय निर्धारित करने में सहायता नहीं कर सकता। इसके आधार पर कवि श्रीहर्ष के विषय में जो निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है, वह सर्वथा भ्रान्त है। उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

(५) प्रो. ग्राइस का मत-प्रो. हलर के मत का खण्डन प्रो. ग्राइस ने किया है। उनके अनुसार कन्नौज के राजा जयचन्द्र दिल्ली-नरेश पृथ्वीराज चौहान के समकालीन थे। पृथ्वीराज चौहान के राजकवि चन्दवरदायी थे, जिन्होंने 'पृथ्वीराज रासो' की रचना की है। उसमें श्रीहर्ष कवि का नाम कालिदास से भी पूर्व उल्लिखित है। 'पृथ्वीराज रासो' का वह अंश इस प्रकार है-

नररूप पंचम्म श्रीहर्षसारं, नलै रायकंठं दिनेपद्म हारं।

छठं कालिदासं सुभाषा सुबद्धं, जिनै बागबानी सुबानी सुबद्धं।

कियो कालिका मुख वासं सुसद्धं, जिनै सेतु बंध्यो सु भोजप्रबंधम्।

इसके आधार पर श्रीहर्ष का समय महाकवि कालिदास से भी पूर्व सिद्ध होता है। इस क्रम पर विश्वास नहीं किया जा सकता, क्योंकि कालिदास का समय ईसा से पूर्व का माना जाता है।

कालिदास और श्रीहर्ष काव्य-रचना की दृष्टि से दो सर्वथा विरुद्ध विन्दु हैं। कालिदास सरल काव्य-भाषा और रस-प्रधान रचना के लिए प्रसिद्ध हैं। उन्होंने कलापक्ष में अलंकारों पर ध्यान दिया है। उनके अलंकार अर्थालंकार अधिक हैं।

शब्दालंकारों का प्रयोग उन्होंने अर्थालंकारों की अपेक्षा कम किया है। कालिदास ने कविता के भावपक्ष पर अधिक ध्यान दिया है।

इसके विपरीत श्रीहर्ष का समय भाषा-चमत्कार में विश्वास रखता था। उस समय के कवि क्लिष्ट भाषा का अत्यधिक प्रयोग करते थे। 'वृहत्त्रयी' के तीन महाकाव्यों भारवि का 'किरातार्जुनीयम्', माघ का 'शिशुपाल वध' और श्रीहर्ष का 'नैषधीयचरितम्' में 'नैषधीयचरितम्' ही सबसे अधिक चमत्कारपूर्ण है। इसके पंचनली प्रकरण में एक श्लोक के पाँच-पाँच अर्थ होते हैं।

वे. वरदाचार्य ने श्रीहर्ष का स्थिति-काल बारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध स्वीकार किया है। अपना यह मत उन्होंने 'संस्कृत-साहित्य का इतिहास' में पृष्ठ १२७ पर व्यक्त किया है। इसी प्रकार डॉ. सत्यनारायण पाण्डेय ने भी अपने ग्रन्थ 'संस्कृत साहित्य की आलोचना' नामक इतिहास में इसी प्रकार का मत व्यक्त किया है। आचार्य बल्देव उपाध्याय ने भी अपने 'संस्कृत का इतिहास' में जयचन्द्र के पिता विजयचन्द्र से जयचन्द्र तक का शासन-काल सन् ११५६ ई. से ११९३ ई. स्वीकार किया है। महाकवि श्रीहर्ष जयन्तचन्द्र अथवा जयचन्द्र के सभापण्डित थे, अतः उनका स्थिति-काल ईसा की बारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध ही मानना उचित है। एक लोकतान्त्रिक का सिद्धान्त है, "अल्पमत की अपेक्षा बहुमत मान्य होता है।" अधिकांश विचारकों ने श्रीहर्ष का स्थिति-काल बारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना है, अतः श्रीहर्ष का स्थिति-काल सन् ११५० ई. से १२०० के मध्य स्वीकार करना ही उचित है।

स्व प्रगति परीक्षण प्रश्न-

1. श्रीहर्ष का जन्म किस वंश में हुआ था?
 - a) गुप्त वंश
 - b) मौखरि वंश
 - c) वर्धन वंश
 - d) पाल वंश
2. श्रीहर्ष का जन्म किस स्थान पर हुआ था?
 - a) थानेसर
 - b) कन्नौज
 - c) प्रयाग

- d) पाटलिपुत्र
3. श्रीहर्ष के पिता का नाम क्या था?
- a) प्रभाकरवर्धन
b) राज्यवर्धन
c) आदित्यसेन
d) नरसिंहवर्मन
4. श्रीहर्ष का जन्म किस शताब्दी में हुआ था?
- a) 5वीं शताब्दी
b) 6वीं शताब्दी
c) 7वीं शताब्दी
d) 8वीं शताब्दी
5. श्रीहर्ष किस धर्म के अनुयायी थे?
- a) बौद्ध धर्म
b) जैन धर्म
c) वैदिक धर्म
d) प्रारंभ में वैदिक, बाद में बौद्ध धर्म

5.5 श्री हर्ष तथा नैषधीयचरितम्

महाकवि श्रीहर्ष ने अनेक साहित्यिक, दार्शनिक, व्याकरण सम्बन्धी तथा आलोचनात्मक ग्रन्थों की रचना की है, परन्तु उनके यश का राजमहल, 'नैषधीयचरितम्' महाकाव्य पर आधारित है। इस महाकाव्य को संक्षेप में 'नैषधम्' भी कहा जाता है। इस सूक्ति का अर्थ है-"श्रीहर्ष द्वारा रचित महाकाव्य 'नैषधीयचरितम्' विद्वानों के लिए औषधि है। तात्पर्य यह है कि विद्वान् ही उसका रसास्वादन कर सकते हैं।"

नैषध अथवा नैषधीयचरितम् की गणना बृहत्त्रयी (किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम् और नैषधीयचरितम्) में की जाती है। इन तीनों को विशाल महाकाव्य स्वीकार किया जाता है।

श्रीहर्ष संस्कृत साहित्य के सर्वाधिक चमत्कारी कवि हैं। कालिदास की गणना सर्वश्रेष्ठ रसवादी कवियों में की जाती है तथा श्रीहर्ष सर्वश्रेष्ठ चमत्कारी कवि माने

जाते हैं। कालिदास ने सरल भाषा में काव्य-रचना की है और रसानुभूति को प्रधानता दी है। संस्कृत भाषा का साधारण ज्ञान रखने वाला व्यक्ति भी कालिदास के महाकाव्यों-रघुवंश, कुमारसंभव का, रसास्वादन कर सकता है। चमत्कारवादी कवि चमत्कार में विश्वास करते हैं। वे भाषा और भाव दोनों को इतना दुरुह बना देते हैं कि विद्वानों को भी उनका अर्थ समझने में परिश्रम करना पड़ता है। चमत्कारवादी कवियों की परम्परा भारवि कवि से आरम्भ होती है। भारवि ने रसानुभूति की अपेक्षा चमत्कार को प्रधानता दी है। भारवि के महाकाव्य 'किरातार्जुनीयम्' की अपेक्षा माघ द्वारा विरचित महाकाव्य 'शिशुपालवधम्' अधिक क्लिष्ट है। श्रीहर्ष कवि द्वारा विरचित महाकाव्य 'नैषधीयचरितम्' में तो चमत्कारवाद और क्लिष्टता चरम सीमा को भी पार कर गयी है।

नैषधीयचरितम् की क्लिष्टता का अनुमान इसी से लगाया जाता है कि इसका एक सर्ग पंचनली कहलाता है। दमयन्ती के स्वयंवर में नल के साथ ही इन्द्र, अग्नि, यम और वरुण भी गये। चारों देवताओं- इन्द्र, अग्नि, वरुण और यम को ज्ञात था कि दमयन्ती नल से प्रेम करती है और स्वयंवर में उसी का वरण करेगी, किन्तु वे चाहते थे कि दमयन्ती उन्हें पति-रूप में स्वीकार करे, इसलिए वे चारों देव भी नल का रूप बनाकर स्वयंवर में गये और नल के समीप जाकर बैठ गये। अब वहाँ पाँच नल उपस्थित थे। सभी राजाओं का परिचय सरस्वती देवी स्वयं दे रही थीं। जब वह इन पाँचों नलों के समीप आयीं तो उन्होंने इन्द्र का परिचय जिन श्लोकों में दिया, उनका अर्थ इन्द्र और नल दोनों के पक्ष में लगाया जा सकता था। महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग में आगामी सर्ग के कथानक की सूचना होती है। इस नियम का निर्वाह 'नैषधीयचरितम्' के प्रत्येक सर्ग में हुआ है।

महाकाव्य के आरम्भ में मंगलाचरण किया जाता है जो नमस्कार, आशीर्वाद अथवा कथावस्तु का निर्देशक होता है। मंगलाचरण मुख्य कथा का मार्ग प्रशस्त करता है। श्रीहर्ष कवि ने अपने महाकाव्य 'नैषधीयचरितम्' में कथावस्तु का निर्देशात्मक मंगलाचरण किया है।

महाकाव्य में संध्या, सूर्योदय, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिवस, प्रातः, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, घट-ऋतु, वन, सागर, नगर, युद्ध, यात्रा, अभ्युदय, विजय, जलक्रीड़ा, संयोग, वियोग, उद्यान-विहार, विवाह, मन्त्र, पुत्र, मुनि, स्वर्ग,

यज्ञ आदिक विविध विषयों का वर्णन होता है। श्रीहर्ष कवि ने अपने महाकाव्य 'नैषधीयचरितम्' में इनमें से अधिकांश का वर्णन किया है। वन एवं सरोवर का वर्णन तो इसके प्रथम सर्ग में ही है। वन के अशोक वृक्ष का वर्णन उदाहरण के रूप में प्रस्तुत है-

**अशोकमर्थान्वितनामताशया,गतान् शरण्यं गृहशोधिनीध्वरान् ॥
अमन्यतावन्तमिवैष पल्लवैः, प्रतीष्टकामज्वलदसजालकम् ॥**

(उस विरही नल ने कोमल पत्तों के द्वारा कामदेव के जलते हुए से अस्त्र-समूह को अपने अंगों पर लेने वाले अशोक वृक्ष को, अर्थ के अनुरूप नाम वाला होने की आशा से शरण देने में समर्थ निकट आये हुए, पत्नियों के शोक से त्रस्त, वियोगी पथिकों की रक्षा करता हुआ-सा माना।)

महाकाव्य का नामकरण उसके कथानक, नायक, कवि अथवा किसी अन्य व्यक्ति के नाम के आधार पर होता है, किन्तु सर्गों का नामकरण सर्गगत कथा के आधार पर ही होना चाहिए।

श्री हर्षकवि ने इस महाकाव्य का नाम राजा नल के नाम पर किया है जो इस महाकाव्य का नायक है। राजा नल निषध देश का राजा था। 'नैषध' शब्द का अर्थ है- निषध से सम्बन्धित, 'नैषधीय' शब्द का अर्थ है-नैषध का। इस प्रकार इस महाकाव्य का नाम 'नैषधीयचरितम्' राजा नल से सम्बन्धित है। महाकवि श्रीहर्ष ने अपने सर्गों को कोई नाम नहीं दिया है।

महाकाव्य का मुख्य उद्देश्य चतुर्वर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से एक की प्राप्ति होना है। इसमें धर्म तथा न्याय की विजय और अन्याय का विनाश होना चाहिए। श्रीहर्ष कवि के महाकाव्य 'नैषधीयचरितम्' में काम की उपलब्धि वर्णित है। राजा नल को पत्नी के रूप में दमयन्ती प्राप्त होती है, जो उसकी प्रेयसी थी।

इन सभी लक्षणों के साथ-साथ कवि को इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिए कि वह अपने महाकाव्य की समाप्ति के द्वारा मानवों के लिए कोई आशापूर्ण सन्देश अवश्य दें। जो लक्षण आचार्य विश्वनाथ द्वारा 'साहित्य-दर्पण'

में दिये गये हैं और ऊपर जिनका विवेचन किया गया है, वे लक्षण लगभग सभी महाकाव्यों में रहते हैं। जिन महाकाव्यों में कतिपय अन्य विशेषताएँ भी यदि समाविष्ट होती हैं, तो महाकाव्य के इन लक्षणों में ही समाविष्ट मानी जाती हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि 'नैषधीयचरितम्' शास्त्रीय लक्षणों से युक्त एवं

सर्वांगपूर्ण महाकाव्य है। इसकी कथा महाभारत के वन-पर्व से ली गयी है, जिनका विस्तार कविवर श्रीहर्ष ने २२ सर्गों में किया है। के श्लोक दोहरे अर्थ वाले हैं। उनका अर्थ इन देवों के साथ ही नल के पक्ष में भी लगाया जा सकता है। जब सरस्वती जी नल का परिचय देने लगीं तो उन्होंने जो श्लोक बोले उनका अर्थ पाँच प्रकार से किया जा सकता है। वे श्लोक नल के साथ-साथ इन्द्र, अग्नि, वरुण और यम पर भी घटित होते हैं। संस्कृत साहित्य में नैषधीयचरितम् का पंचनली प्रकरण एकमात्र ऐसा स्थल है, जिसमें एक श्लोक के पाँच अर्थ होते हैं। इस प्रकार के महाकाव्य का आनन्द विद्वान् ही ले सकते हैं, साधारण पढ़ा-लिखा व्यक्ति नहीं ले सकता। डॉ. विश्वम्भर नाथ द्विवेदी ने श्रीहर्ष के महाकाव्य नैषधीयचरितम् अथवा नैषधम् को 'विद्वदौषधम्' सिद्ध करते हुए लिखा है- "भारतीय समालोचकों ने नैषधीयचरितम् महाकाव्य को ज्ञान के विशाल कोष के रूप में प्राप्त किया, जिसमें न केवल महाकाव्य की ही, अशेष विशेषताएँ समुपलब्ध होती हैं, अपितु विविध विधाओं, शास्त्रों, पुराणों, दर्शनों एवं मानवीय संवेदनाओं का भी यथेष्ट ज्ञान विद्यमान है। इससे महाकवि श्रीहर्ष के अगाध पाण्डित्य का अनुमान सहज ही लग जाता है।" प्रसिद्ध टीकाकार सुधी विद्याभर नैषध महाकाव्य के सत्रहवें सर्ग की समाप्ति पर श्रीहर्ष के वैदुष्य विषयक प्रशस्ति-पत्र को मुद्रांकित करते हुए लिखते हैं-

"अष्टौ व्याकरणानि तर्क-निवहः साहित्यसारौ नयो,
वेदार्थावगतिः पुराणपठितिर्यस्यान्य शास्त्राण्यपि।
नित्यं स्युः स्फुरितार्थ दीपविहताज्ञाना-धकाराण्यसौ,
व्याख्यातुं प्रभवत्यमुं सुविषयं सर्गः सुखेः कोविदः ॥"

डॉ. सुशील कुमार डे ने भी "नैषध को विद्वदौषधम्' सिद्ध करने के हेतु स्वीकार किया है-"इसे तो मानना ही पड़ेगा कि नैषधचरित केवल एक वैदुष्यपूर्ण काव्य ही नहीं है, अपितु अनेक प्रकार से परम्परागत ज्ञान का भण्डार है और

किसी भी व्यक्ति को उस समस्त ज्ञान से पूर्ण सुसज्जित होकर ही इसमें (नैषध में) प्रवेश करना चाहिए।"

संस्कृत-साहित्य में दर्शन-शास्त्र को सबसे अधिक क्लिष्ट माना जाता है। महाकवि श्रीहर्ष एक अच्छे दार्शनिक भी थे और उन्होंने अपनी दार्शनिकता का समावेश अपने महाकाव्य 'नैषध' में किया है। इस विषय में डॉ. चण्डीप्रसाद शुक्ल ने लिखा है- "नैषध विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों के मार्मिक विषयोलेखों से भरा पड़ा है। श्रीहर्ष समस्त दर्शनों के अद्वितीय विद्वान् थे। उन्होंने दर्शनों का केवल ज्ञान ही नहीं प्राप्त किया था, अपितु श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन द्वारा दर्शन को अपने जीवन का ही अंग बना लिया था। उनकी अपने प्रति 'समाधि में आनन्द सागर परब्रह्म का साक्षात्कार करना है (यः साक्षात् कुरुते समाधिषु परं ब्रह्म प्रमोदार्णवम्'। केवल गवर्वोक्ति नहीं, तथ्योक्ति भी थी, क्योंकि ब्रह्म के सत्, चित् तथा आनन्द तीनों प्रकार के स्वरूप का साक्षात्कार हुए बिना किसी मेधावी पुरुष से भी समस्त ज्ञान-कोष का ऐसा स्फुरण (प्रकाश) असम्भव था। अपने 'खण्डनखण्डखाद्य' में श्रीहर्ष ने अदृश्य तर्कों के बल से प्रति-तन्त्र सिद्धान्तों का उन्हीं की उक्तियों से खण्डन करते हुए वेदान्त-सम्मत अद्वैत ब्रह्मा की स्थापना की है। नैषध में प्रायः सभी दर्शनों के विभिन्न सिद्धान्तों का उल्लेख पाया जाता है, जिससे ऐसा मालूम पड़ता है, मानो श्रीहर्ष नैषध को विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों का एक परिचय-ग्रन्थ बनाना चाहते थे।"

अपनी व्युत्पत्ति का चमत्कार कवि-श्रेष्ठ श्रीहर्ष ने 'नैषधीयचरितम्' महाकाव्य में पूर्णरूपेण प्रस्तुत किया है। इस सम्बन्ध में अनेक दन्तकथाएँ प्रचलित हैं। कुछ विद्वान् स्वीकार करते हैं कि कला और विद्या की देवी सरस्वती ने स्वयं आग्रह करके श्रीहर्ष को ऐसी काव्य-रचना की प्रेरणा दी थी जो उनके पाण्डित्य के पूर्ण प्रदर्शन का आधार प्रतीत न हो। माता सरस्वती का उद्देश्य यह था कि अन्य विद्वान् उसे समझने में समर्थ हो सकें। कारण यह भी था कि श्रीहर्ष ने वेदान्त दर्शन के जिस ग्रन्थ 'खण्डनखण्डखाद्य' की रचना की थी, उसे समझने में विद्वान् भी असमर्थ थे। इतना होने पर भी 'नैषधीयचरितम्' महाकाव्य कवि श्रीहर्ष के दुर्धर्ष पाण्डित्य का उदाहरण है। कवि श्रीहर्ष ने स्वयं स्वीकार किया है कि इसमें उन्होंने जान-बूझकर कुछ ऐसी ग्रन्थियों का निवेश किया है, जिससे अपने आपको पण्डित समझने वाले इसके साथ छेड़छाड़ करने का साहस न कर सकें। जिन

लोगों ने श्रद्धा और सेवा का आधार लेकर गुरु की आराधना करते हुए विद्याध्ययन किया है, वे ही इस ग्रन्थ अर्थात् 'नैषधीयचरितम्' की ग्रन्थियों को शिथिल करके इसे समझ सकेंगे। सज्जन रसिक ही इसकी रस-धारा में अवगाहन करने में समर्थ होंगे। कवि श्रीहर्ष की यह स्वीकृति निम्नलिखित पद्य के रूप में है-

ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वचित्क्वचिदपि न्यासिप्रयत्नान्मया।

प्राज्ञमन्यमना हठेन पठिती माऽस्मिन् खलः खेलतु ॥

श्रद्धाऽऽरागुरु श्लथीकृत दृढग्रन्थिः

समासादय-त्वेतत्काव्य-रसोर्मि-मज्जन सुखं व्यासज्जनं सज्जनः ॥

डॉ. उमाशंकर शर्मा ऋषि के अनुसार, "राजशेखर सूरि के प्रबन्ध-कोश में श्रीहर्ष की एक उक्ति संकलित है, जिसमें उन्होंने कहा है कि मेरी वाणी सुकुमार प्रमेय वाले साहित्य, के क्षेत्र में तथा दृढ न्यायशास्त्र की ग्रन्थियों से पूर्ण तर्क के क्षेत्र में समान क्रीड़ा करती है। वस्तुतः इस काव्य में भी कवि ने अपने इस वचन का निरन्तर पालन किया है, जिसमें नैषधीयचरितम् एक ओर रसात्मकता के प्रकर्ष पर है, तो दूसरी ओर वैदुष्य के शिखर पर भी विराजमान है। जिन विद्वानों को अपने पाण्डित्य के अभिमान के रूप में कोई रोग हो, तो उनका अहंकार-निवारण इस महाकाव्य के आनन्द के अनावरण के क्रम में अवश्य हो जायेगा। 'भागवत पुराण' के विषय में जिस प्रकार 'विद्यावतां भागवते परीक्षा' की उक्ति प्रचलित है, उसी प्रकार उक्त संदर्भ में 'नैषधं विद्वदौषधम्' यह उक्ति चल पड़ी। इस महाकाव्य में विशेष योग्यता पाना विविध शास्त्रों के अवगाहन का परिचायक है। इसमें व्याकरण, न्याय, सांख्य, वैशेषिक, योग, वेदान्त, मीमांसा, चार्वाक, जैन, बौद्ध आदि दर्शनों के कठिन सिद्धान्तों का यत्र-तत्र वर्णन है।" कवि श्रीहर्ष ने महाकाव्य 'नैषधीयचरितम्' के विषय में कठोरता और कोमलता की जो बात कही है, वह उनके शब्दों में इस प्रकार है-

साहित्ये सुकुमार वस्तुनि दृढन्याये ग्रहग्रन्थिले ।

तर्क वा मयि संविधातरि समं लीलायते भारती ॥

'नैषधीयचरितम्' महाकाव्य के विषय में डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सैना का अभिमत इस प्रकार है, "इनके काव्य में कृत्रिमता एवं आडम्बरप्रियता के अतिरिक्त मानव जीवन की समग्रता का अंकन नहीं मिलता। केवल श्रृंगार का एकदेशीय चित्रण अधिक है। चरित्र चित्रण तथा कथानक की कलात्मक सृष्टि के नाते भी

श्रीहर्ष निपुण नहीं दिखाई देते।" श्रीहर्ष ने अपने महाकाव्य 'नैषधीयचरितम्' में वेद, व्याकरण, छन्द-शास्त्र, ज्योतिष, शिक्षा, सामुद्रिक शास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्वशास्त्र अर्थात् संगीत, नाटक, अलंकारशास्त्र, रत्न विज्ञान, कामशास्त्र, पाकशास्त्र, पुराणेतिहास, दर्शन, राजनीति आदि सभी विद्याओं का समावेश किया है। इस प्रकार के महाकाव्य का आनन्द लेने के लिए और समझने के लिए भी इन सभी विद्याओं का ज्ञान होना आवश्यक है। इन सब विद्याओं का ज्ञान रखने वाला निश्चित रूप से विद्वान् कहलायेगा। एक तथ्य यह है कि 'नैषधीयचरितम्' के अध्ययन से प्रत्येक व्यक्ति (पण्डित और सामान्य ज्ञान युक्त दोनों) के ज्ञान में वृद्धि होगी। जिस प्रकार औषधि रोग का विनाश करके शक्ति बढ़ाती है, उसी प्रकार श्रीहर्ष द्वारा विरचित महाकाव्य 'नैषधम्' अथवा 'नैषधीयचरितम्' भी विद्वत्ता का विस्तार करने के कारण औषध सिद्ध होता है।

इस आधार पर स्वीकार किया जाना चाहिए- "नैषधं विद्वदौषधम्" । महाकाव्यों में नैषध की स्थिति: श्रीहर्ष चमत्कारवादी कवियों में अन्तिम ही नहीं, सर्वश्रेष्ठ भी माने जाते हैं। काव्य-रचना में रसानुभूति की अपेक्षा चमत्कार को प्रधानता देना भारवि कवि से आरम्भ हुआ। उन्होंने अपने महाकाव्य 'किरातार्जुनीय' में चमत्कार-प्रदर्शन आरम्भ किया। 'शिशुपालवध' महाकाव्य के रचयिता महाकवि माघ ने इसे आगे बढ़ाया। नैषधीयचरितम् महाकाव्य के रचयिता श्रीहर्ष तक पहुँचते-पहुँचते यह चमत्कार-प्रदर्शन इतना अधिक बढ़ गया कि काव्य की परिभाषा 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' अर्थात् रसात्मक वाक्य ही काव्य है, की सर्वथा उपेक्षा होने लगी। चमत्कार-प्रदर्शन और विद्वत्ता में श्रीहर्ष कवि इतने उत्कृष्ट हैं कि भारवि और माघ दोनों उनके सामने कहीं नहीं ठहरते। इसी को लक्ष्य करके किसी आलोचक ने निम्नलिखित सूक्ति की रचना की-

तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः,

उदिते तु नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः ।

अर्थात् भारवि की शोभा तभी तक है, जब तक माघ का उदय नहीं हुआ और जब नैषध काव्य का उदय हो गया तो कहाँ माघ और कहाँ भारवि ? तात्पर्य यह है कि जब माघ कवि के महाकाव्य 'शिशुपालवध' की रचना नहीं हुई थी, तब तक वह प्रकाश में नहीं आया था, तब तक भारवि को अपने चमत्कार-प्रदर्शन के लिए प्रशंसा प्राप्त होती रही थी। जिस प्रकार सूर्य की तीव्रता तभी तक

रहती है, जब तक माघ का मास नहीं आ जाता। माघ मास के आते ही सूर्य की तीव्रता समाप्त हो जाती है, उसी प्रकार माघ कवि के 'शिशुपालवध' महाकाव्य के चमत्कार-प्रदर्शन को देखकर विद्वान् भारवि कवि द्वारा रचित महाकाव्य 'किरातार्जुनीय' की कलात्मकता को भूल गये। जब 'नैषधीयचरितम्' महाकाव्य विद्वानों के सामने आया तो उन्होंने 'किरातार्जुनीय' महाकाव्य के रचयिता भारवि और 'शिशुपालवध' महाकाव्य के रचयिता माघ कवि को भुला दिया। इस सूक्ति का तात्पर्य श्रीहर्ष कवि को भारवि और माघ से तथा नैषधीयचरितम् को किरातार्जुनीय और शिशुपालवध की अपेक्षा अत्यधिक श्रेष्ठ सिद्ध करना है। अतः यह वर्णन प्रस्तुत है- ग्रन्थ की रचना द्वारा स्वयं को दार्शनिक विद्वान् अद्वैतवादी के रूप में भी प्रतिष्ठित किया है। न्याय-शास्त्र की स्थापना करने वाले गौतम ऋषि के विषय में उन्होंने घोषित किया है-

"मुक्तये यः शिलात्वाय शास्त्रमूचे सचेतसाम् ।

गौतमं तमवेक्ष्यैव यथावित्थ तथैव सः।"

श्रीहर्ष विद्वता की दृष्टि से अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। श्रीहर्ष का अपनी भाषा और शैली पर असाधारण अधिकार है। श्रीहर्ष की प्रमुख विशेषता यह है कि वे सुकुमार एवं मनोरम पर-रचना में पूर्ण समर्थ एवं दक्ष हैं। श्रीहर्ष अपने पद-लालित्य के लिए भी प्रसिद्ध हैं। यह कहने में किसी को कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि श्रीहर्ष की वैदर्भी रीति कालिदास की वैदर्भी रीति के समान प्रसाद गुण-युक्त प्रतीत नहीं होती है। इसके विपरीत कुछ ऐसे श्लोक भी 'नैषधीयचरितम्' में हैं जो भाषा की दृष्टि से कालिदास के छन्दों के समान कहे जा सकते हैं। 'नैषधीयचरितम्' के प्रथम सर्ग में हंस के विलास का जो प्रसंग है, वह वैदर्भी रीति का सुन्दर उदाहरण कहा जा सकता है। नैषध महाकाव्य में वैदर्भी रीति की प्रधानता का एक कारण इसके नायक नल की प्रेयसी दमयन्ती का विदर्भ राज्य की राजकुमारी अर्थात् 'वैदर्भी' होना है। श्रीहर्ष ने स्वीकार किया है-

धन्यासि वैदर्भी गुणैरुदारै-र्यया समाकृष्यत नैषधोऽपि।

वैदर्भी रीति के अतिरिक्त कवि श्रीहर्ष ने 'नैषधीयचरितम्' महाकाव्य में गौडी रीति का भी यत्र-तत्र प्रयोग किया है।

डॉ. अखिलेश पाठक ने भी स्वीकार किया है- "कवि का भाषा पर असाधारण अधिकार है। उन्होंने अनुप्रास के प्रयोग द्वारा यह सिद्ध किया है। कवि की शैली

अलंकृत शैली है। इसका उदात्त रूप नैषध में देखने को मिलता है। श्रीहर्ष की कल्पना-शक्ति विलक्षण है। वे भावों के उचित निर्वाह एवं संयोजन तथा उपयुक्त एवं सुन्दर शब्द-विन्यास, कल्पना की ऊँची उड़ान और प्राकृतिक रमणीय दृश्यों के चित्रण में अपनी तुलना नहीं रखते हैं। अलंकृत शैली के उद्भावक महाकवि भारवि का प्रकाश तभी तक सहृदयों को रंजित करने वाला रहा, जब तक माघ का उदय नहीं हुआ। माघ, भारवि को भी बहुत पीछे छोड़कर अपने अनुपम काव्य-वैभव से सहृदयों को प्रभावित कर सके, किन्तु नैषध के उदित होने पर भारवि तथा माघ दोनों ही प्रभावहीन हो गये।"

डॉ. उमाशंकर शर्मा ऋषि के अनुसार, "श्रीहर्ष के काव्यगत वैशिष्ट्य के अनेकानेक उपादनों में इनके पद-लालित्य का बहुत आदर है। प्रसाद गुण और माधुर्य भाव तो इनकी कृति में प्राचुर्य प्राप्त किये ही हुए हैं। अनुप्रास, श्रुति-मधुर पदावली का विन्यास पद-पद पर मिलता है, चाहे प्रथम पद्य को ही क्यों न रखें ?

जैसे-

निपीय यस्य क्षितिरक्षिणः कथाः, तथाद्रियन्ते च बुधास्सुधामपि।

शृंगार तथा अन्य कमनीय रसों में भी यह महाकाव्य अनुस्यूत है। नैषधीय चरितम श्री हर्ष की काव्यकला तथा विद्वता का प्रतीक हैं ।

5.6 सार - संक्षेप

श्री हर्ष अपनी रचना ने नैषधीयचरितम के लिए संस्कृत साहित्य में एक विशेष स्थान पर प्रतिष्ठित है। श्री हर्ष की जन्म, व्यक्तित्व, काल आदि का अध्ययन ऐतिहासिक व साहित्यिक दृष्टि से किया गया है। जन्म आदि का वर्णन करने से नैषधीयचरितम के अध्ययन का प्रथम चरण पूर्ण किया गया है।

5.7 मुख्य शब्द

1. पांडित्य- विद्वता
 2. वैशिष्ट्य-विशिष्टता
 3. माधुर्य- गुण का एक भेद
 4. प्राचुर्य- पर्याप्त
 5. श्रुति- सुनना
-

5.8 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. (c) वर्धन वंश
 2. (a) थानेसर
 3. (a) प्रभाकरवर्धन
 4. (b) 6वीं शताब्दी (लगभग 590 ईस्वी में)
 5. (d) प्रारंभ में वैदिक, बाद में बौद्ध धर्म
-

5.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ देवर्षि सनाढ्य शास्त्री, नैषधीयचरितम् - श्रीहर्ष, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 1985।
2. श्री शेषराज शर्मा रेग्मी, नैषधीयचरितम्-श्रीहर्ष, चौखंभा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2008।
3. डॉ श्यामलेश कुमार तिवारी, नैषधीयचरितम्- श्रीहर्ष, चौखंभा सुरभारती प्रकाशन , 2017।
4. डॉ शोभा भारद्वाज, नैषधीय चरितम् - श्रीहर्ष, युवराज पब्लिकेशन, 2021 ।

5.10 अभ्यास प्रश्न

1. श्री हर्ष का जन्म कब और कहाँ हुआ था।
 2. श्री हर्ष की प्रमुख रचनाएं कौन सी हैं।
 3. श्री हर्ष के जीवन का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
 4. श्री हर्ष किस राजा के दरबारी कवि थे।
-

इकाई 6

नल का स्वरूप

- 6.1 प्रस्तावना
- 6.2 उद्देश्य
- 6.3 नल का तेज
- 6.4 नल का रूप सौंदर्य
- 6.5 नल का सांस्कृतिक स्वरूप
- 6.6 सारांश
- 6.7 मुख्य शब्द
- 6.8 स्व -प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
- 6.9 संदर्भ ग्रन्थ
- 6.10 अभ्यास प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

गत इकाई में श्रीहर्ष के परिचय के पश्चात नैषधीय चरितम् के नायक का परिचय दिया जाएगा। प्रस्तुति इकाई में नैषधीयचरितम् के अनुसार नल के स्वरूप का अध्ययन किया गया है। श्री हर्ष की रचना ने नैषधीय चरितम् में नल का वर्णन नायक के रूप में किया गया है। नल तथा दमयंती के कथा पर आधारित इस रचना में नल के स्वरूप का वर्णन विभिन्न दृष्टिकोण से वर्णित है। मुख्य गुणों के आधार पर नल के स्वरूप का वर्णन प्रस्तुत इकाई में किया गया है। श्री हर्ष के परिचय के पश्चात नैषधीयचरितम् के अध्ययन का द्वितीय चरण काव्य के नायक का स्वरूप चित्रण किया जाना उचित है। अतः नल के स्वरूप का चित्रण उनके गुण, सौंदर्य सांस्कृतिक ऐतिहासिक दृष्टिकोण से किया गया है। आगे की इकाइयों में श्लोकों आदि के माध्यम से महाकाव्य की कथा का अध्ययन किया जाएगा।

6.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि-

1. नल के तेज का ज्ञान प्राप्त किया जा सके।
2. नल के स्वरूप की विशेषताओं का अध्ययन किया जा सके।
3. नल के स्वरूप का सांस्कृतिक ऐतिहासिक दृष्टिकोण से ज्ञान प्राप्त किया जा सके ।
4. नायक की गुणों के आधार पर नल के स्वरूप को जाना जा सके।

6.3 नल का तेज

भारतीय संस्कृत महाकाव्य परंपरा में तेज और प्रभा किसी पात्र के बाह्य सौंदर्य से अधिक उसकी आत्मिक गुणवत्ता, नैतिक ऊँचाई और नायकत्व की दीप्ति का प्रतीक मानी जाती है। श्रीहर्षकृत “नैषधीयचरित” में राजा नल को न केवल रूपवान और गुणसम्पन्न बताया गया है, बल्कि उनकी तेजस्विता और प्रभा को अत्यंत मार्मिकता और सौंदर्य के साथ व्यक्त किया गया है। नल का तेज उस दिव्य आभा का प्रतिनिधि है, जो उन्हें सामान्य मानवों से भिन्न करता है, बल्कि देवताओं के समकक्ष स्थान प्रदान करता है। उनका व्यक्तित्व आलोक, ऊर्जा, विवेक और नैतिक ओज से युक्त है।

कवि श्रीहर्ष नल के विषय में शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्तर पर तेज का प्रयोग कर एक आदर्श नायक की छवि निर्मित करते हैं। जो निम्नानुसार हैं-

1. तेज की परिकल्पना: शारीरिक से आत्मिक तक तेज का अर्थ केवल दीप्ति या प्रकाश नहीं है। तेज वह आंतरिक शक्ति है, जो व्यक्ति की दृष्टि, वाणी, आचरण और प्रभाव में प्रकट होती है। प्रभा उस तेज की बाह्य अभिव्यक्ति है। नल की तेजस्विता उनके मुख की कान्ति, शरीर की आभा, नेत्रों की चमक और उनकी उपस्थिति से परिवेश पर पड़ने वाले प्रभाव में झलकती है।

कवि श्रीहर्ष नल के चेहरे की तुलना इन्दुमौलि (शिव के मस्तक पर स्थित चंद्रमा) से करते हैं:

“ज्योत्स्नाशीतलमिन्दुमौलिवदनं नानारसालङ्कृतं”

(उनका मुख चंद्रमा की शीतलता लिए हुए है, परंतु उसमें विविध रसों का भी आलंकरण है।)

यह श्लोक केवल मुख के सौंदर्य की बात नहीं करता, अपितु उस शीतल तेज की ओर संकेत करता है, जो उग्र न होकर सौम्य होता है – जो सम्मोहक भी है और शांति देने वाला भी। यह तेज नल के राजसी आभामंडल, नैतिक गरिमा और भावनात्मक संतुलन का संकेतक है।

2. नल का तेज और वातावरण पर प्रभाव- नल की उपस्थिति मात्र से परिवेश आलोकित हो उठता है। श्रीहर्ष ने अनेक स्थलों पर यह संकेत दिया है कि नल की उपस्थिति निराकार ऊर्जा की भांति कार्य करती है – जैसे किसी स्थान पर प्रकाश फैल जाए। जब नल सभा में प्रवेश करते हैं, तो अन्य राजाओं और गणों की दृष्टि उनके तेज में आकर्षित हो जाती है। यह तेज सामान्य शरीर की दीप्ति नहीं, बल्कि नेतृत्व की ओजस्विता, धैर्य की स्थिरता और आत्मविश्वास की पराकाष्ठा है।

“नरपतिनमनयनप्रणम्यमानं प्रतापमयूखमिव”

(राजाओं की नमित दृष्टियों से अभिवंदित, जैसे कोई दीप्त प्रतापमय सूर्य हो) यहाँ नल की छवि सूर्य के समान प्रस्तुत की गई है, जिसका तेज दूसरों को अनायास ही नम्र कर देता है। यह धर्माधिष्ठित तेज है – जो पराक्रम से नहीं, आत्मगौरव और संयम से उत्पन्न होता है।

3. नल का तेज और नायकीय आदर्श- संस्कृत साहित्य में नायकत्व का एक प्रमुख लक्षण होता है – तेजस्विता। तेज वह गुण है, जिससे नायक सामान्य पुरुष से भिन्न होता है। नल में यह गुण अत्यंत प्रखरता से विद्यमान है। वे जहाँ उपस्थित होते हैं, वहीं सभी की दृष्टियाँ उनकी ओर खिंच जाती हैं। उनकी वाणी में ओज है, भावों में प्रभाव है, और निर्णयों में दृढ़ता है।

नल का तेज उनके शील, व्रत, निष्ठा और धर्मपालन से बढ़ता है। वह केवल शारीरिक या बाह्य नहीं, बल्कि उनका तेज उनके कर्तव्यों के प्रति समर्पण, नीति में निपुणता और करुणा में साहस से उपजा है। यही कारण है कि दमयंती को जब सपने में नल का दर्शन होता है, तो वह केवल सुंदर पुरुष नहीं, बल्कि तेजस्वी राजा को देखती है, जिससे वह सहज रूप से प्रभावित होती है।

4. तेज और प्रभा में संतुलन:- नल में उग्रता नहीं, सौम्यता है नल की विशेषता कई बार तेज का अर्थ उग्रता, भयंकरता या ताप से लिया जाता है, लेकिन श्रीहर्ष की शैली में नल का तेज सौम्यता से युक्त है। वह शिव की तरह है – चंद्रमा के समान शीतल, पर भीतर से ऊर्जा-संपन्न। इस सौम्यता से युक्त तेज ही उन्हें अन्य नायकों से भिन्न करता है। उनकी प्रभा मात्र दर्शकों को चकाचौंध नहीं करती, वह आश्वस्ति, आकर्षण और सुरक्षा का भी संचार करती है।

यह सौम्य तेज ही दमयंती को आकृष्ट करता है। नल के तेज में नारी विरोधी प्रभुत्व नहीं, बल्कि सहधर्मिता की गरिमा है। यह तेज केवल पुरुषत्व का प्रदर्शन नहीं करता, वह नारी की गरिमा को सम्मानित करता है।

5. आत्मिक तेज: धर्म, संयम और व्रत की दीप्ति नल की तेजस्विता केवल प्राकृतिक या वंशानुगत नहीं है। वह उनके चरित्र और आत्मसंयम का परिणाम है। जब वे वन में कष्ट भोगते हैं, पत्नी के साथ त्याग करते हैं, और धोखा खाने के बाद भी धैर्य और धर्म से विचलित नहीं होते – तब उनका तेज और अधिक प्रखर होता है। नल का यह आत्मिक तेज ही उन्हें देवताओं से भी श्रेष्ठ बनाता है।

"धर्मेण जयति तेजसा नलः"

(धर्म और तेज के सहारे ही नल विजय को प्राप्त करते हैं)

यहाँ तेज और धर्म की सहसंलग्नता दर्शाई गई है। श्रीहर्ष के अनुसार, तेज वही टिकता है जो धर्म से उत्पन्न हो – अन्यथा वह केवल क्षणिक ताप है।

6. तेज की सांस्कृतिक व्याख्या: प्रतीक और अनुकरणीयता भारतीय संस्कृति में तेज केवल भौतिक नहीं होता, वह सांस्कृतिक और दार्शनिक भी होता है। राम, कृष्ण, भीष्म, विदुर, युधिष्ठिर, बुद्ध – सभी तेजस्वी माने गए हैं, पर सभी का तेज अलग प्रकृति का रहा है। नल का तेज धार्मिकता और प्रेम पर आधारित है। वह उस राजा का तेज है, जो युद्ध कर सकता है, परंतु पहले क्षमा, विवेक और सहनशीलता को अपनाता है। नल का तेज शुद्ध, निःस्पृह और आत्मानुशासित है। वह समाज को यह शिक्षा देता है कि शक्ति और प्रकाश का प्रयोग विनम्रता और सन्मार्ग में होना चाहिए।

7. नल के तेज में नारी मन का आकर्षण: नल की तेजस्विता दमयंती जैसे सूक्ष्म हृदय वाली नारी को सबसे पहले प्रभावित करती है। जब वह उनका स्वरूप स्वप्न में देखती है, तब केवल सौंदर्य नहीं, बल्कि उनके तेज का प्रभाव उसके अंतःकरण

को स्पर्श करता है। यह तेज, नल के व्यक्तित्व में अंतर्निहित सत्यनिष्ठा, धैर्य, और प्रेमशीलता का प्रतिफल है।

दमयंती के लिए नल पुरुषोत्तम हैं, क्योंकि उनके तेज में उत्कर्ष और संवेदना का समन्वय है। यही कारण है कि देवताओं द्वारा उनके रूप की नकल करने पर भी वह असली नल को पहचान लेती है – क्योंकि तेज की सच्ची अनुभूति केवल रूप से नहीं, भाव से होती है।

8. काव्यशिल्प और अलंकार में तेज का चित्रण- श्रीहर्ष ने तेज और प्रभा के वर्णन में अनुप्रास, उपमा, रूपक, यमक आदि अलंकारों का प्रयोग किया है। उनका काव्यशिल्प उच्चकोटि का है, और उन्होंने नल के तेज को वर्णन करने के लिए प्रकृति के उज्ज्वल प्रतीकों जैसे सूर्य, चंद्रमा, दीप, विद्युत, कमल, सिंह, शंख आदि का प्रयोग किया है। नल का तेज और प्रभा केवल नायक की सुंदरता या काव्य-चमत्कार का साधन नहीं, बल्कि एक नैतिक आदर्श, धार्मिक चेतना और राजसत्ता की मर्यादा का प्रतीक है। श्रीहर्ष ने नल के तेज का ऐसा चित्रण किया है, जो उन्हें केवल नायक नहीं, बल्कि जीवनमूल्य का संवाहक बना देता है। उनकी तेजस्विता उनके संपूर्ण व्यक्तित्व की दीप्ति है – जो सौंदर्य, धर्म, नीति, प्रेम, करुणा और शक्ति का समन्वय है। यह तेज आज भी साहित्य, संस्कृति और दर्शन में प्रेरणा का स्रोत बना।

स्व प्रगति परीक्षण प्रश्न-

1. 'नैषधीय चरितम्' महाकाव्य के रचयिता कौन हैं?
 क) कालिदास ख) भास
 ग) श्रीहर्ष घ) भवभूति
2. 'नैषधीय चरितम्' में किस राजा की कथा वर्णित है?
 क) राम ख) युधिष्ठिर
 ग) नल घ) रघु
3. नैषधीय चरितम् में नल किस राज्य का राजा है?
 क) विदर्भ ख) निषध
 ग) अयोध्या घ) अवन्ती
4. नल की पत्नी का क्या नाम था?
 क) तारा ख) सीता
 ग) दमयन्ती घ) सती
5. नैषधीय चरितम् किस प्रकार की काव्य-रचना है?
 क) खंडकाव्य ख) महाकाव्य
 ग) गीतिकाव्य घ) नाटक
6. नल और दमयन्ती की कथा मूलतः किस पुराण में वर्णित है?
 क) शिव पुराण ख) विष्णु पुराण
 ग) महाभारत घ) रामायण
7. नैषधीय चरितम् में नल की विशेषता क्या है?
 क) वह कुशल योद्धा है
 ख) वह अत्यंत सुंदर एवं धर्मनिष्ठ राजा है
 ग) वह राक्षसों से युद्ध करता है
 घ) वह तपस्वी है
8. निम्न में से कौन नैषधीय चरितम् में वर्णित नहीं है?
 क) इंद्र ख) वरुण
 ग) युधिष्ठिर घ) अग्नि

6.4 नल का रूप सौन्दर्य

संस्कृत साहित्य में नायक का स्वरूप केवल शारीरिक सौंदर्य तक सीमित नहीं होता, वह एक समग्र व्यक्तित्व का द्योतक होता है, जिसमें बाह्य आकर्षण के साथ-साथ गुण, तेज, और धर्मसंपन्नता भी सम्मिलित होती है। नैषधीयचरित के नायक नल, इस दृष्टि से आदर्श पुरुष के रूप में प्रतिष्ठित हैं। कवि श्रीहर्ष ने उनके रूप सौंदर्य का चित्रण इतनी मार्मिकता, सूक्ष्मता और कलात्मकता से किया है कि नल केवल एक पात्र न होकर सौंदर्य और नैतिक गरिमा का प्रतीक बन जाते हैं।

नल का सौंदर्य केवल नेत्रों को नहीं, हृदय को भी प्रभावित करता है। उनके रूप में ऐसा कुछ है जो मनुष्य होते हुए भी दिव्यता का आभास कराता है। यह लेख नल के इसी रूप सौंदर्य की विविध स्तरों पर विश्लेषणात्मक व्याख्या प्रस्तुत करता है।

1. जन्मजात सौंदर्य: “प्रकृतिसुन्दरं वपुः”

श्रीहर्ष आरंभ में ही स्पष्ट करते हैं कि नल का रूप “प्रकृतिसुन्दरं” है – अर्थात् उनका सौंदर्य स्वाभाविक, सहज और जन्मजात है।

“तस्य प्रकृतिसुन्दरं वपुः”

यहाँ “प्रकृति” शब्द नल के स्वरूप की सहजता को दर्शाता है। उनके सौंदर्य में कोई कृत्रिमता नहीं है। वह न श्रृंगार से उत्पन्न है, न ही बाह्य आडंबर से – यह सौंदर्य उनकी आत्मा और शरीर दोनों से झलकता है।

यह जन्मजात दिव्यता ही उन्हें देवताओं से भी श्रेष्ठ बनाती है। नल का शरीर केवल आकर्षक नहीं, संपूर्णता का प्रतीक है – जिसमें सौंदर्य के साथ संतुलन, लय और माधुर्य भी है।

2. अंगवर्णन: सौंदर्य की सूक्ष्म संरचना

कवि ने नल के रूप का वर्णन करते समय शरीर के विविध अंगों का अत्यंत सूक्ष्मता से चित्रण किया है। यह केवल अलंकारिक नहीं, चित्रात्मक है – जैसे हम एक चित्रकार की तूलिका से उकेरे गए चित्र को देख रहे हों।

नेत्र – नल के नेत्र कमलदल के समान वर्णित हैं।

“कमलायतेक्षणः” – उनके नेत्र विशाल, कोमल और सौम्य हैं।

मुखमंडल – उनका मुख पूर्णचंद्र के समान है, जिसमें शीतलता और तेज का सम्मिलन है। “मुखं चन्द्रवदनं” – उनके चेहरे में आकर्षण और दिव्यता एकसाथ हैं।

काया – उनका शरीर सुवर्ण के समान दमकता है।

“काञ्चनसन्निभतनु” – जैसे स्वर्ण से गढ़ा हुआ शरीर।

केश – उनके केश घने, नीले और तरंगित हैं, जो उनकी युवावस्था और उर्जस्विता के प्रतीक हैं।

यह वर्णन केवल भौतिक सौंदर्य की प्रशंसा नहीं, बल्कि कवि की अद्भुत काव्यदृष्टि का परिचायक है, जो अंगों के माध्यम से व्यक्तित्व को दर्शाता है।

3. सौंदर्य और नायकीय गरिमा- नल का सौंदर्य केवल आकर्षण का विषय नहीं, बल्कि राजसी गरिमा से युक्त है। उनके रूप में सौंदर्य और धैर्य, विनम्रता, प्रताप और शिष्टाचार का अद्भुत संतुलन है। यही कारण है कि जब वे किसी सभा में प्रवेश करते हैं, तो उनका व्यक्तित्व सभी का ध्यान खींच लेता है।

उनके अंगों का संतुलन और मुद्रा की गरिमा इस बात को दर्शाते हैं कि सौंदर्य और नेतृत्व परस्पर पूरक हैं। वे केवल दर्शनीय नहीं, माननीय भी हैं।

4. नल का रूप: दमयंती की दृष्टि से दमयंती के स्वप्न में जब नल का दर्शन होता है, तो वह केवल एक सुंदर पुरुष को नहीं, बल्कि एक दिव्य पुरुष को देखती है। यह सौंदर्य इतना प्रभावी है कि वह दवताओं को ठुकरा देती है और नल का स्वयंवर चुनती है।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि दमयंती का हृदय सौंदर्य से आकर्षित तो होता है, परंतु वह रूप के पीछे छिपे गुणों को भी भाँप लेती है। यह रूप केवल नेत्रों को लुभाता नहीं, मन को बाँधता है।

“स्वप्नदृष्टं वपुः स्मराम्यहम्” – (मैं स्वप्न में देखे उस रूप को स्मरण करती हूँ)

दमयंती की यह स्मृति बताती है कि नल का सौंदर्य केवल दृश्य नहीं, अनुभूति योग्य है।

5. सौंदर्य का संयम और शील- नल के रूप में सौंदर्य के साथ संयम और शील भी समाहित है। वे अपनी रूप-संपन्नता से अभिमान नहीं करते। यह सौंदर्य

विनम्रता और मर्यादा से युक्त है। उनका चाल-चलन, वाणी, दृष्टि – सबमें उदारता और संकोच का भाव है।

यही कारण है कि नल का सौंदर्य कभी उच्छृंखल नहीं होता, वह सुसंस्कृत और आदर्श है। श्रीहर्ष ने नल को एक ऐसा रूप दिया है, जो समाज में नैतिक आदर्श का वाहक बनता है।

6. सौंदर्य और देवता-समानता

नल का रूप इतना प्रभावशाली और दिव्य है कि स्वयं देवता भी उसका अनुकरण करने का प्रयास करते हैं। स्वयंवर में जब देवगण नल का रूप धारण करते हैं, तब भी दमयंती असली नल को पहचान लेती है। इसका कारण केवल रूप नहीं, बल्कि उस रूप में समाहित गरिमा, तेज और भाव की सजीवता है।

“रूपं तु सममेव सर्वदेवानां कृत्वा नलं समानं प्राप्य”

(देवताओं ने नल जैसा ही रूप बनाया यह प्रसंग दर्शाता है कि नल का सौंदर्य केवल शरीर तक सीमित नहीं, उसमें ऐसी जीवंतता और आत्मता है जो देवताओं के कृत्रिम सौंदर्य में नहीं है।

7. नल का रूप: सांस्कृतिक और साहित्यिक प्रतीक

भारतीय साहित्य में सौंदर्य का चित्रण सदैव धर्म, शिष्टता, और आदर्शों से जुड़ा रहा है। नल का रूप सौंदर्य केवल काव्य की चमत्कारिता नहीं, बल्कि समाज को एक आदर्श पुरुष की छवि देने का प्रयास है। वह सौंदर्य जो केवल लुभाता नहीं, बल्कि प्रेरित करता है।

नल का शरीर लालित्य, संतुलन, दृढ़ता और कोमलता का मिश्रण है। यह रूप केवल युवा आकर्षण नहीं, बल्कि एक राजा के धर्म और मर्यादा का प्रतिरूप है।

8. श्रीहर्ष की काव्यशैली और रूप चित्रण

नैषधीयचरित के कवि श्रीहर्ष अलंकारों के सम्राट माने जाते हैं। उन्होंने नल के रूप का वर्णन करते समय अनेक अलंकारों का प्रयोग किया है:

उपमा अलंकार – “मुखं चन्द्रवदनं”, “नेत्र कमलसमानं”

रूपक अलंकार – “सुवर्णतनु”, “प्रभामय विग्रह”

अनुप्रास – नल के रूप के वर्णन में ध्वनि और लय का अद्भुत सामंजस्य

इन काव्यशैलियों से नल के सौंदर्य का चित्र पाठक के सम्मुख सजीव हो उठता है।

नल का रूप सौंदर्य केवल बाह्य आकर्षण तक सीमित नहीं है। श्रीहर्ष ने उन्हें एक ऐसे दिव्य पुरुष, राजसी नायक, और आदर्श मानव के रूप में चित्रित किया है, जिनका सौंदर्य स्वाभाविक, संयमित और अर्थपूर्ण है।

उनका सौंदर्य केवल देखने योग्य नहीं, अनुभव करने योग्य है। वह प्रेरणादायी है, अनुकरणीय है, और संस्कृत साहित्य की नायकीय परंपरा में अमिट छवि के रूप में स्थायी बना रहता है।

नल के सौंदर्य का यह चित्रण केवल एक कथा का भाग नहीं, बल्कि मानव सौंदर्य की संस्कृतिक और नैतिक व्याख्या है – जो आज भी उतना ही प्रासंगिक और प्रेरक है।

6.5 नल का सांस्कृतिक स्वरूप

संस्कृत महाकाव्य केवल कथा नहीं होते; वे भारतीय संस्कृति की मूलभूत धारणाओं, आदर्शों और नैतिक मूल्यों के संवाहक भी होते हैं। श्रीहर्षकृत नैषधीयचरित ऐसा ही एक महाकाव्य है, जिसमें नल और दमयंती की कथा के माध्यम से कवि ने आदर्श मानव के स्वरूप की प्रतिष्ठा की है। इस काव्य का नायक, राजा नल, केवल रूपवान और तेजस्वी नहीं, बल्कि संस्कृतिक दृष्टि से एक आदर्श पुरुष का प्रतीक भी है।

उनका स्वरूप न केवल शारीरिक सुंदरता का प्रतिनिधित्व करता है, बल्कि एक ऐसी व्यापक संस्कृति का द्योतक है, जिसमें नर-श्रेष्ठता, धर्मपरायणता, शिष्टता, और मर्यादा प्रमुख मूल्य हैं। इस लेख में हम विश्लेषण करेंगे कि नल का व्यक्तित्व कैसे भारतीय संस्कृति में पुरुषार्थ चतुष्टय और आदर्श पुरुष की परिकल्पना को मूर्त रूप प्रदान करता है।

1. नल: नरश्रेष्ठ की अवधारणा- नल का रूप सौंदर्य केवल आंखों को लुभाने वाला नहीं है; वह एक ऐसी छवि प्रस्तुत करता है जो भारतीय मानस में नरश्रेष्ठ – सर्वोत्तम पुरुष – के रूप में अंकित हो जाती है। “प्रकृतिसुन्दरं वपुः” के माध्यम से कवि यह स्पष्ट करते हैं कि उनका सौंदर्य कृत्रिम नहीं, बल्कि स्वाभाविक है। यह प्राकृतिक सौंदर्य दर्शाता है कि नल ईश्वरदत्त गुणों से युक्त हैं – उनमें कोई विकृति नहीं, केवल सृष्टि की उत्कृष्टता है।

नल के शरीर, हावभाव, चाल, दृष्टि और वाणी – इन सबका समन्वय एक ऐसे पुरुष का चित्र प्रस्तुत करता है जो केवल राजा नहीं, राष्ट्र की आत्मा है। वे न केवल अपने राज्य के संरक्षक हैं, बल्कि संस्कृति के संवाहक भी हैं।

2. सांस्कृतिक आदर्शों का प्रतिनिधित्व- भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों में धर्म, सत्य, त्याग, शील, और प्रेम जैसे आदर्श अत्यंत महत्वपूर्ण माने गए हैं। नल का स्वरूप इन सभी गुणों को एकत्रित रूप में प्रस्तुत करता है।

धर्म – नल न्यायप्रिय हैं, धर्म का पालन करते हैं और अपने कर्तव्य से कभी विमुख नहीं होते। वे राजा हैं, परंतु अहंकार रहित हैं।

सत्य – वे अपने वचनों के प्रति प्रतिबद्ध हैं, झूठ और छल से दूर रहते हैं। उनके शब्दों में वज्र-सा स्थायित्व है।

त्याग – अपनी कठिनाइयों के समय वे कभी क्षोभ में नहीं आते; विपत्तियों में भी वे अपने धर्म का त्याग नहीं करते। यह रामत्व का गुण है।

शील – उनका आचरण मर्यादित है; स्त्रियों, प्रजाजनों, शत्रुओं – सबके प्रति उनका व्यवहार शिष्ट और संयत है।

प्रेम – दमयंती के प्रति उनका प्रेम केवल आकर्षण नहीं, एक आध्यात्मिक बंधन है। यह प्रेम त्याग, समर्पण और विश्वास से ओतप्रोत है।

इस प्रकार, नल केवल नायक नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक आदर्श की जीवित मूर्ति हैं।

3. रूप का प्रतीकात्मक महत्व- नल का रूप सौंदर्य केवल सतही सौंदर्य नहीं है, बल्कि वह उनके भीतर स्थित गुणों का बाह्य प्रतिबिंब है। उनका तेजस्वी शरीर उनकी आत्मिक महानता का द्योतक है।

उदाहरण के लिए:

“काञ्चनसन्निभतनुः” – उनके शरीर की तुलना सुवर्ण से की गई है। सुवर्ण भारतीय संस्कृति में पवित्रता, स्थायित्व और दिव्यता का प्रतीक है।

“कमलायतलोचनः” – कमल जैसे नेत्र करुणा, शीतलता और व्यापक दृष्टि के प्रतीक हैं।

इस प्रकार, नल के प्रत्येक शारीरिक गुण किसी गूढ़ सांस्कृतिक अर्थ की ओर संकेत करते हैं।

4. त्रेतायुगीन आदर्शों का प्रतिरूप

नल त्रेतायुगीन आदर्शों के प्रतीक हैं। यह युग राम और सीता का युग था – जिसमें धर्म और मर्यादा सर्वोच्च थे। नल भी इसी परंपरा के वाहक हैं। उनकी कथा में रामत्व की प्रतिछाया स्पष्ट दिखती है – जैसे वनवास, पत्नी का साथ, कठिनाई में धर्मपरायणता। यही कारण है कि नल को राम के समकक्ष नायक माना जाता है।

दमयंती की निष्ठा और प्रेम भी सीता की तरह अतुलनीय है। इस प्रकार नल और दमयंती मिलकर त्रेतायुगीन आदर्श पति-पत्नी संबंध का पुनः सजीव चित्र प्रस्तुत करते हैं।

5. समाज की दृष्टि में आदर्श पुरुष

नल एक ऐसे पुरुष का रूप हैं, जिसकी कल्पना समाज करता है। वे केवल योद्धा या राजा नहीं हैं, बल्कि:

एक आदर्श पुत्र – जो पूर्वजों की प्रतिष्ठा बनाए रखता है।

एक आदर्श पति – जो पत्नी के साथ दुख-सुख में समान भाव से चलता है।

एक आदर्श मित्र – जो सहयोगी, सहृदय और विश्वसनीय है।

एक आदर्श प्रशासक – जो न्याय, करुणा और नीति से शासन करता है।

उनकी यह बहुआयामी छवि उन्हें एक सांस्कृतिक आदर्श पुरुष बना देती है – जो भारतीय लोकमानस में मर्यादा पुरुषोत्तम की संज्ञा प्राप्त करता है।

6. देवताओं से श्रेष्ठ: रूप और आत्मा का मिलन

स्वयंवर के प्रसंग में जब देवता नल का रूप धारण कर उपस्थित होते हैं, तब भी दमयंती असली नल को पहचान लेती है। इसका कारण केवल नल का रूप नहीं, बल्कि उस रूप में व्याप्त आत्मिक सजीवता और तेज है, जो देवताओं में नहीं थी।

“रूपं तु सममेव सर्वदेवानां... नलं समानं प्राप्य”

(देवताओं ने नल जैसा रूप धारण किया)

यह प्रसंग दर्शाता है कि मानव में, यदि गुण, तेज, और धर्म हो तो वह देवताओं से भी श्रेष्ठ हो सकता है। नल इसी आदर्श का उदाहरण हैं – रूप और आत्मा का अद्भुत समन्वय।

7. प्रतीकात्मक संदर्भों में नल की उपस्थिति

नल का चरित्र केवल एक ऐतिहासिक या पौराणिक कथा नहीं है, वह भारतीय संस्कृति के प्रतीकात्मक मानस में समाहित है। वे:

पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) के संतुलन का प्रतीक हैं।

राजधर्म और गृहस्थ धर्म के समन्वय का मूर्त रूप हैं।

स्त्री-पुरुष समानता के पक्षधर हैं – दमयंती से प्रेम करते हैं, परंतु उसे स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने का अवसर देते हैं

उनका चरित्र एक दर्शन बन जाता है – जो आज के समाज के लिए भी उतना ही प्रासंगिक है।

8. आधुनिक संदर्भों में नल का सांस्कृतिक मूल्य

आज के समाज में जब नैतिक मूल्यों का संकट है, तब नल जैसे चरित्र हमें स्मरण कराते हैं कि सौंदर्य केवल शारीरिक नहीं, चारित्रिक भी होता है।

उनकी जीवनगाथा प्रेरणा देती है कि:

कठिनाई में भी धर्म का साथ नहीं छोड़ना चाहिए। सच्चा प्रेम, त्याग और विश्वास पर आधारित होता है। आदर्श नेतृत्व शक्ति के प्रदर्शन में नहीं, सेवा और न्याय में होता है

इस प्रकार, नल का चरित्र केवल पठन की वस्तु नहीं, जीवन के अनुकरणीय सिद्धांत का प्रतीक है

नल का स्वरूप नैषधीयचरित में केवल रूप और तेज का चित्रण नहीं है; वह एक समूची सांस्कृतिक चेतना का प्रतीक है। वे वह पुरुष हैं जो भारतीय परंपरा में श्रेष्ठतम के रूप में देखे गए हैं – सौंदर्य में दिव्य, आचरण में मर्यादित, और हृदय से करुणाशील।

उनका व्यक्तित्व, भारतीय संस्कृति में पुरुष आदर्श की परिकल्पना को सजीव करता है। वह केवल एक काव्य नायक नहीं, बल्कि संस्कृति के आदर्श पुरुष, नरश्रेष्ठ और मर्यादा के प्रतीक बन जाते हैं।

इस प्रकार, नल की छवि युगों-युगों तक भारतीय मानस में एक दीप्त, सजीव और प्रेरणामयी प्रतीक बनी रहेगी।

6.6 सार संक्षेप

नैषधीय चरितम् में नल के स्वरूप का अत्यंत मनोरम चित्रण किया गया है। श्री हर्ष ने नायक की दृष्टि से नल में विद्यमान गुणों को प्रकाशित करते हुए उनके स्वरूप का वर्णन किया गया है। प्रस्तुति इकाई में उन्हें प्रकाशित कर नल के स्वरूप का वर्णन किया गया है। नल में तेज, बुद्धिमत्ता दमयंती पर उनके प्रभाव आदि के माध्यम से नायक तथा राजा दोनों की दृष्टि से नल के स्वरूप का अध्ययन किया गया है।

6.7 मुख्य शब्द

सौंदर्य- सुंदरता

शौर्य -वीरता

गुण - विशेषताएं

पुरुषार्थ चतुष्टय - धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष

पौराणिक -पुराने से संबंधित

6.8 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. उत्तर: ग) श्रीहर्ष
2. उत्तर: ग) नल
3. उत्तर: ख) निषध
4. उत्तर: ग) दमयंती
5. उत्तर: ख) महाकाव्य
6. उत्तर: ग) महाभारत
7. उत्तर: ख) वह अत्यंत सुंदर एवं धर्मनिष्ठ राजा है
8. उत्तर: ग) युधिष्ठिर

6.9 संदर्भ सूची

1. डॉ देवर्षि सनाढ्य शास्त्री, नैषधीय चरितम - श्रीहर्ष, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 1985।
 2. श्री शेषराज शर्मा रेग्मी, नैषधीयचरितम-श्रीहर्ष, चौखंभा सुरभारती प्रकाशन, वाराणशी, 2008।
 3. डॉ श्यामलेश कुमार तिवारी, नैषधीयचरितम- श्रीहर्ष, चौखंभा सुरभारती प्रकाशन 2017।
 4. डॉ शोभा भारद्वाज, नैषधीय चरितम - श्रीहर्ष, युवराज पब्लिकेशन, 2021
-

6.10 अभ्यास प्रश्न

1. नल के स्वरूप की वर्णन कीजिए।
2. नल के चरित्र की विशेषताओं को प्रकाशित कीजिए।
3. दमयंती की दृष्टि में नल में विद्यमान गुणों का विस्तार विवेचन कीजिए।
4. नायक की दृष्टि से नल का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।

इकाई 7

नैषधीय चरितम के प्रथम सर्ग के 1 से 35 श्लोकों की व्याख्या

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 नैषधीय चरितम के प्रथम सर्ग के 1 से 35 श्लोकों की व्याख्या

7.4 सार संक्षेप -

7.5 मुख्य शब्द

7.6 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर-

7.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

7.8 अभ्यास प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

नैषधीय चरितम के नायक की स्वरूप का अध्ययन कर हम इनके प्रथम सर्ग के श्लोकों का व्याख्या सहित अध्ययन करेंगे। प्रस्तुत इकाई में नैषधीय चरितम के प्रथम सर्ग से श्लोकों की व्याख्या की जाएगी। श्री हर्ष की परिचय तथा नल की स्वरूप वर्णन के पश्चात् इस विषय के व्याख्यात्मक पक्ष का अध्ययन किया जाएगा। नैषधीय चरितम के प्रथम सर्ग के 35 श्लोक तक नल की स्वरूप का वर्णन किया गया है। श्लोकों की व्याख्या के माध्यम से नल के स्वरूप का अध्ययन किया जाएगा।

7.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि-

1. श्लोक के माध्यम से नल के स्वरूप का अध्ययन किया जा सके ।
2. श्लोक की व्याख्या का अध्ययन किया जा सके।
3. श्लोक के अन्वय आदि के माध्यम से व्याख्या करने में समर्थ हो सके।
4. श्लोकों के साथ भावार्थ के ज्ञान में मैं समर्थ हो सकें।
5. श्लोक के माध्यम से नल के स्वरूप का अध्ययन किया जा सके

7.3 नैषधीय चरितम् के प्रथम सर्ग के 1 से 35 श्लोकों की व्याख्या

निपीय यस्य क्षितिरक्षिणः कथाः,
 तथादियन्ते न बुधाः सुधामपि।
 नलः सितच्छत्रित कीर्तिमण्डलः,
 स राशिरासीन्महसां महोज्ज्वलः ॥ १ ॥

अन्वय-यस्य क्षितिरक्षिणः कथाः निपीय बुधाः सुधाम् अपि तथा न आद्रियन्ते। सितच्छत्रित कीर्तिमण्डलः महोज्ज्वलः सः नलः महसां राशिः आसीत्।

शब्दार्थ-यस्य = जिसकी, राजा नल की। क्षितिरक्षिणः = धरती की रक्षा करने वाले की। कथाः = कथाओं को, सम्बन्धित कहानियों को। निपीय = पीकर, सुनकर, पान करके। बुधाः = देवगण, विद्वान्। सुधाम् अपि = अमृत को भी। तथा = उस प्रकार, उसके समान। न आद्रियन्ते = आदर नहीं देते हैं, आदर नहीं करते हैं। सितच्छत्रित कीर्तिमण्डलः = अपनी कीर्ति के मण्डल को, अपनी विशाल कीर्ति को श्वेत राजपत्र बना लिया है, जिसने। महोज्ज्वलः = उत्सवों से देदीप्यमान। सः नलः वह नल। महसाम् = तेजों की। राशिः = ढेर, समूह। आसीत् = था।

प्रसंग-सन्दर्भ- प्रस्तुत श्लोक महाकवि श्रीहर्ष प्रणीत नैषधमहाकाव्यम् के प्रथम सर्ग से उद्धृत है, जिसमें मङ्गलाचरण किया जा रहा है। काव्यपरम्परानुसार ग्रन्थ के प्रारम्भ में काव्य की निर्विघ्न परिसमाप्ति के निमित्त मङ्गलाचरण आदि का किया जाना आवश्यक माना जाता है। महाकवि ने "कर्कोटकस्य नागस्य दमयन्त्या नलस्य च। ऋतुपर्णस्य राजर्षेः कीर्तनं कलिनाशनम्।" उक्ति के अनुसार नल की कथा कीर्तन को कलिका नाशक होना प्रसिद्ध माना है। यहाँ पर शिष्टाचारानुसार किसी विशिष्ट देवतादि का नमस्कारादि रूप मङ्गल नहीं किया गया है किन्तु "कर्कोटकस्य नागस्य • कलिनाशनम्" तथा "पुण्यश्लोको नलो राजा पुण्यश्लोको युधिष्ठिर।" पुण्यश्लोका व वैदेही पुण्यश्लोको जनार्दनः। वचनों के अनुसार नल-कथा के कीर्तन को ही विशिष्ट वस्तुनिर्देशात्मक मङ्गलाचरण रूप में महाकवि श्रीहर्ष ने माना है। महाकवि ने नलकथा को अमृत से भी अधिक श्रेष्ठ सिद्ध करते हुए उसे प्रस्तुत किया है।

हिन्दी अनुवाद-धरती की रक्षा करने वाले जिस नल की कथाओं को कानों से पीकर अर्थात् पूर्णरूप से सुनकर विद्वान् अथवा देवगण अमृत का भी आदर नहीं करते हैं, उस राजा नल ने अपनी उज्ज्वल कीर्ति को ही श्वेत राजछत्र बना लिया था। उत्सवों से देदीप्यमान वह नल तेजों की राशि अर्थात् महाप्रतापी था।

हिन्दी व्याख्या-राजा नल के विषय में अनेक कथाएँ प्रचलित थीं। उन्हें सुनकर धरती के विद्वान् और बुद्धिमान् पुरुष ही नहीं, स्वर्ग के देवता भी तृप्त होते थे। वे नल की कीर्ति-कथाओं के सामने अमृत का भी आदर नहीं करते थे। नल की यशोगाथाएँ सुनने में अमृतपान से भी अधिक आनन्द था, क्योंकि राजा नल की कथा का भलीभाँति अस्वादन करके व्यक्ति विशेष के कलियुग में उत्पन्न पापों का नाश हो जाता है अथवा जिस राजा नल की कथा का पान कर विद्वज्जन अथवा देवगण सुधामय अर्थात् चन्द्रमा का भी उतना आदर नहीं करते। जितना राजा नल की कथा का, जिसने अपने शुभ कीर्ति मण्डल को श्वेतपत्र बनाया, ऐसे अति तेजस्वी तथा उत्सवों से देदीप्यमान राजा नल हुए। वे राजा नल अपने चतुर्दिग्व्यापी कीर्तिसमूह से उज्ज्वल चरित्र वाले थे।

कवि का मानना है कि राजा नल की कथा अमृत की अपेक्षा कहीं अधिक मधुर थी, साथ ही अत्यधिक शृङ्गार रसमय थी। इसी कारण दमयन्ती ने इन्द्रादि देवताओं को त्यागकर नल को ही वरण करना अधिक उपयुक्त समझा होगा।

संस्कृत व्याख्या - यस्य = धारानरेशस्य नलस्य। क्षितिरक्षिणः = पृथ्वीपालस्य, नलस्य। कथाः = यशोगाथाः, गुण कीर्तिनानि। निपीय = निःशेषं पीत्वा, सादरं श्रुत्वा। बुधाः = देवाः, मतिमन्तः। सुधाम् अपि = अमृतम् अपि। तथा = तेन प्रकारेण। न आद्रियन्ते = आदरं नैव कुर्वन्ति। सितच्छत्रितकीर्तिमण्डलः = कीर्ति समूहेन सितच्छत्रवद् व्यापृतः। सः नलः = धारानरेशः। महोज्ज्वलः = उत्सवैः देदीप्यमानः। महसाम् = तेजसाम्। राशिः = समूहः। आसीत् = अभूत्।

रसैः कथा यस्य सुधावधीरिणी

नलः स भूजानिरभूद्गुणाद्भुतः।

सुवर्णदण्डैकसितातपत्रित-

ज्वलत्प्रतापावलिकीर्तिमण्डलः ॥ २॥

अन्वय-यस्य कथा रसैः सुधावधीरणी (अस्ति), सः नलः सुवर्णदण्डैकसितात-
पत्रितज्वलत्प्रतापावलिकीर्तिमण्डलः गुणाद्भुतः भूजानिः अभूत् ।

शब्दार्थ - यस्य = जिसकी। कथा कहानी। रसैः शृंगारादि रसों के कारण।
सुधावधीरणी = सुधा + अवधीरणी = अमृत का तिरस्कार करने वाली। अस्ति
है। सः वह। नलः राजा नल। सुवर्णदण्डैकसितातपत्रितज्वलत्
प्रतापावलिकीर्तिमण्डलः = सुवर्ण दण्ड + एक + सित + आतपत्रित + ज्वलत्
प्रताप + अवलि+ कीर्तिमण्डलः जलते हुए प्रताप समूह एवं कीर्तिमण्डल को स्वर्ण-
दण्ड तथा श्वेत-छत्र बना देने वाला। गुणाद्भुतः = गुण अद्भुतः = गुणों के कारण
विचित्र। भूजानिः = भूमिपति, राजा। अभूत् = था।

प्रसंग-सन्दर्भ-प्रस्तुत श्लोक महाकवि श्रीहर्ष प्रणीत नैषधमहाकाव्यम् के प्रथम
सर्ग से उद्धृत है, जिसमें कवि श्रीहर्ष राजा नल को प्रताप और यश के कारण
अद्भुत बता रहे हैं।

हिन्दी अनुवाद-जिसकी कथा शृंगार आदि रसों की मधुरता के कारण अमृत
का तिरस्कार करने वाली है, वह नल अपने जलते हुए प्रताप-पुंज एवं धवल यश
को स्वर्ण-दण्ड और श्वेत-छत्र बना देने वाला तथा दया-दाक्षिण्य आदि गुणों के
कारण अद्भुत राजा था।

हिन्दी व्याख्या-राजा नल की कथा शृंगार, वीर आदि रसों से इतनी अधिक
मात्रा में व्याप्त है कि वह मधुर रस वाले अमृत का भी तिरस्कार करती है। राजा
नल की कथा पढ़कर और सुनकर अमृत-पान करने से भी अधिक आनन्द की
अनुभूति होती है। जलता हुआ प्रताप राजा नल के श्वेत-छत्र का दण्ड था और
कीर्ति श्वेत आतपत्र थी। अन्य राजा स्वर्ण-दण्ड वाला एवं श्वेत रंग का छत्र धारण
करते हैं। जलता हुआ प्रताप ही राजा नल का स्वर्ण का छत्र-दण्ड था और सर्वत्र
व्याप्त श्वेत वर्ण का यश ही आतपत्र अर्थात् छत्र था। राजा नल शूरवीरता, उदारता
आदि अनेक गुणों से युक्त होने के कारण लोकोत्तर गौरवशाली था। इस प्रकार का
नल भूमि का पति था।

संस्कृत व्याख्या- यस्य = राज्ञः नलस्य। कथा = गुण कीर्तनम्। रसैः =
शृंगारादि नव रसानाम् अधिकतया, स्वादेन च। सुधावधीरणी = अमृतस्य तिरस्कारं
करोति। अस्ति = वर्तते । सः = एवभूतः । नलः = निषधनरेशः। सुवर्णदण्डैक
सितातपत्रित ज्वलत् प्रतापावलि कीर्ति मण्डलः = हेमदण्डारः द्वितीया श्वेतातपत्रित

प्रतापावलि मण्डितः युक्तः आसीत्। ज्वलित प्रतापावलि कीर्ति मण्डलः = ज्वलित प्रताप पुंज एव तस्य राजछत्रस्य स्वर्ण दण्डः आसीत्। सितातपत्रितः = श्वेतवर्ण यशः एव तस्य आतपत्रम् आसीत्। गुणाद्भुतः = गुणानाम् अधिकतया विस्मयकारकः। भूजानिः = राजा। अभूत् आसीत्।

**पवित्रमत्रातनुते जगद्युगे
स्मृता रसक्षालनयेव तत्कथा।
कथं न सा मदगरमाविलामपि
स्वसेविनीमेव पवित्रयिष्यति ॥ ३ ॥**

अन्वय-अत्र युगे स्मृता तत्कथा जगत् रसक्षालनया इव पवित्रम् आत्नुते। सा आविलाम् अपि स्वसेविनीम् एव मङ्गिरम् कथम् न पवित्रयिष्यति।

शब्दार्थ - अत्रयुगे = इस युग में। स्मृता= स्मरण की गयी। रसक्षालनया =जल प्रक्षालन अथवा श्रृंगारादिरसों की निष्पत्ति से। आतनुते= कर देती है। आविलामपि= दोष युक्त होने पर भी। स्वसेवनीमेव = उसका ही वर्णन करने में संलग्न। मङ्गिरम् मेरी वाणी को। पवित्रयिष्यति = पवित्र करेगी।

प्रसंग-सन्दर्भ-महाकवि श्रीहर्ष नैषधमहाकाव्यम् के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में कहते हैं कि समस्त संसार को पवित्र करने वाली नल की कथा मेरी वाणी को पवित्र करेगी ही, ऐसा मेरा विनम्र भाव है।

हिन्दी अनुवाद-इस कलियुग में स्मरण करने मात्र से ही राजा नल की कथा सम्पूर्ण संसार को जल से प्रक्षालन के समान पवित्र करती है। यह नल-कथा दोष उनका ही कीर्तन करने में संलग्न दोष युक्त भी मेरी वाणी को क्यों नहीं पवित्र करेगी अर्थात् अवश्य करेगी ?

हिन्दी व्याख्या-जिस प्रकार जल से धोयी हुई कोई वस्तु स्वच्छ एवं दोषरहित हो जाया करती है, उसी प्रकार नवरससमन्वित राजा नल की कथा का सेवन करने से "कर्कोटकस्य नागस्य -" इत्यादि वचनों के अनुसार सम्पूर्ण लोक भी निर्मल एवं दोषरहित हो जाया करता है। कहा गया है कि कर्कोटक नाग, दमयन्तो नल और राजर्षि ऋतुपर्ण, इनका कीर्तन करने से कलि का नाश हो जाता है अर्थात् नल की कथा के स्मरणमात्र से कलियुग में मनुष्य के समस्त पाप (दोष) नष्ट

हो जाते हैं। तब नल की कथा का वर्णन करने वाली मलिन भी स्वसेविनी मेरी वाणी क्यों नहीं पवित्र हो जायेगी अर्थात् अवश्य पवित्र हो जायेगी, क्योंकि वह तो उसको सेविका ही है। ऐसी गुणकारी राजा नल की कथा का मैं (महाकवि श्रीहर्ष) तो सरसता के साथ वर्णन कर रहा हूँ। अतः मुझे विश्वास है कि वह मेरी दोषयुक्त एवं मलिन वाणी को अवश्य ही पवित्र कर देगी। स्मरण मात्र से पवित्र करने वाली कथा निरन्तर वर्णन से तो अवश्य ही पवित्र करेगी। यही कारण है कि श्रीहर्ष अन्य कथाओं को छोड़कर नल की ही कथा का वर्णन करते हैं।

संस्कृत व्याख्या -अत्र युगे= अस्मिन् कलियुगे। स्मृता= स्मर्यमाणा। तत् कथा नलस्य गुणकीर्तनम्। जगत् = संसारम् । रसक्षालनया जल प्रक्षालनेन शृंगारादिरसानां निष्पत्त्या वा। इव समानम्। पवित्रम् = पावनम् । आतनुते =करोति। सा= नलस्य कथा। आविलाम =अपि दोष युक्ताम् अपि। स्वसेविनीम् =तस्य नलस्य सेवायां संलग्नाम्। मङ्गिरम्= मम श्रीहर्षस्य वाणीम्। कथम् =केन कारणेन। न नहि। पवित्रयिष्यति = पावनं करियिष्यति।

अधीतिबोधाचरण प्रचारणैः

र्दशाश्चतस्रः प्रणयन्नुपाधिभिः ।

चतुर्दशत्वं कृतवान् कुतः स्वयं

न वेदिम् विद्यासु चतुर्दशस्वयम् ॥ ४॥

अन्वय-अधीतिबोधाचरणप्रचारणैः उपाधिभिः (विद्यासु) चतस्रः दशाः प्रणयन् अयं चतुर्दशसु विद्यासु स्वयं चतुर्दशत्वं कुतः कृतवान् (इति अहं) न वेद्मि ।

शब्दार्थ - अधीति = अध्ययन। बोध = अर्थज्ञान। आचरण ज्ञानपूर्वक प्रयोग। प्रचारणैः = अध्यापन-कार्य के द्वारा। उपाधिभिः = विधियों के द्वारा। विद्यासु = विद्याओं में। चतस्रः = चार। दशाः = दशाओं को। प्रणयन् = प्रस्तुत करता हुआ। अयम् = यह राजा नल। चतुर्दशसु = चौदह में। विद्यासु = विद्याओं में। स्वयं = अपने आप। चतुर्दशत्वम् चार दशाएँ होना और चौदह की संख्या होना। कुतः = किस प्रकार। कृतवान् = किया। इति यह। न वेद्मि = मैं नहीं जानता हूँ।

प्रसंग-सन्दर्भ-महाकवि श्रीहर्ष प्रणीत नैषधमहाकाव्यम के प्रथम सर्ग से उद्धृत श्लोक में कवि श्रीहर्ष राजा नल के गुणों का वर्णन करने के पश्चात् उनके चौदह विद्याओं के ज्ञाता होने की बात कह रहे हैं।

हिन्दी अनुवाद-अध्ययन, अर्थ-ज्ञान आचरण एवं अध्यापन कार्य, इन चार विधियों के द्वारा चार दशाओं को प्रस्तुत करते हुए इस राजा नल ने चौदह विद्याओं में स्वयं चौदह की संख्या होने और चार दशाएँ होने की स्थिति किस प्रकार समायोजित कर दी, यह मैं नहीं जानता।

हिन्दी व्याख्या-यह नल चौदह विद्याओं-चार वेद, छः वेदांग, न्याय, पुराण, मीमांसा, धर्मशास्त्र का न केवल ज्ञाता था, अपितु उसे इनका अर्थ-बोध भी था। इन विद्याओं को जानने और इनके अर्थ-बोध के साथ ही राजा नल ने अपने आचरण में भी इन चौदह विद्याओं का समावेश किया था। साथ ही राजा नल ने इन चौदह विद्याओं का अध्ययन भी किया था। इन चौदह विद्याओं में संख्या के कारण तो चतुर्दशत्व (चौदह) था। राजा ने इन विद्याओं की चार दशाओं-अध्ययन, अर्थ-बोध, आचरण और अध्यापन के कारण भी चार दशाओं का भाव उत्पन्न कर दिया था। कवि श्रीहर्ष इस बात पर आश्चर्य करते हैं कि उन्होंने विद्याओं में चौदह की संख्या होना और चार दशाएँ होना, ये दोनों विशेषताएँ किस प्रकार उत्पन्न कर दी थीं ?

संस्कृत व्याख्या - अधीतिः अध्ययनेन। बोधाचरणप्रचारणैः अर्थज्ञानेन तदनुसारं विद्याया अध्यापनकार्यं द्वारा प्रचारं क्रियमाणैः। उपाधिभिः विधिभिः। विद्यासु चत्वारो वेदाः, षड् वेदांगानि, न्यायः, पुराणम्, मीमांसा, धर्मशास्त्रम् एतासु। चतस्रः चत्वारि संख्याकाः। दशाः = स्थितयः । प्रणयन् कुर्वन्। अयम् = राजा नलः। चतुर्दशसु = दशाधिकं चतसृषु। स्वयम् = सहायकाभावेन। चतुर्दशत्वम् = चतसृणां दशानां धावम्। कुतः = कस्मात् कारणात् । कृतवान् = अकरोत् । इति = इत्थम् । अहम् = श्रीहर्षः कविः। न = नहि वेद्मि = जानामि ।

अमुष्य विद्या रसनाग्रनर्तकी,
त्रयीव नीतांगगुणेन विस्तरम्।
अगाहताष्टादशतां जिगीषया,
नवद्वयद्वीपपृथग्जयश्रियाम् ॥ ५॥

अन्वय-अमुष्य रसनानर्तकी विद्या अंगगुणेन विस्तरं नीता त्रयी इव नवद्वयद्वीप पृथग जियश्रियाम् जिगीषया (इव) अष्टादशताम् अगाहत।

शब्दार्थ -अमुष्य= इसकी, राजा नल की। रसनायनर्तकी =जिह्वा के अग्रभाग पर नाचने वाली। विद्या = वेद विद्या। अंगगुणेन= वेदांगों शिक्षा, कल्प आदि से गुणा किये जाने के कारण। विस्तरं नीता = विस्तार को प्राप्त। त्रयी इव =तीन वेदों-ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद के समान। नवद्वयद्वीप पृथगजयश्रियाम् जिगीषया = अठारह द्वीपों की अलग-अलग विजयश्री को प्राप्त करने की इच्छा से। इव मानो। अष्टादशताम् = अठारहपन को, अठारह की संख्या को। अगाहत = प्राप्त किया।

प्रसंग-सन्दर्भ-कविराज श्रीहर्ष प्रणीत नैषधमहाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में राजा नल की महती विशेषता का उल्लेख है। उसके पास लक्ष्मी और सरस्वती: दोनों का एक साथ ही निवास था।

हिन्दी अनुवाद-इस राजा नल की जीभ के अगले भाग पर नृत्य करने वाली अर्थात् सदैव कंठस्थ रहने वाली वेद-विद्या अपने अंग से गुणा होने पर अर्थात् छः वेदांगों से गुणा करने पर ($3 \times 6 = 18$) मानो अठारह द्वीपों को अलग-अलग विद्यमान विजय-लक्ष्मियों को जीतने की इच्छा से अठारह की संख्या को प्राप्त हुई थी।

हिन्दी व्याख्या-विद्या से तात्पर्य वेद-विद्या से है, क्योंकि भारतीय संस्कृति में वेदों को ही प्रधानता प्राप्त है। वेदांग छः हैं-शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द तथा ज्योतिष। इस प्रकार तीनों वेदों के वेदांगों की संख्या अठारह हुई। दुग्ध, दधि, धान्य आदि द्वीपों की संख्या भी अठारह है। कविवर श्रीहर्ष ने यह उत्प्रेक्षा की है कि इन अठारह द्वीपों की राज्यलक्ष्मी को अलग-अलग जीतने की इच्छा से राजा नल की विद्याओं की संख्या अठारह हो गयी थी। ये विद्याएँ राजा नल को कंठस्थ थीं। इन्हें पुस्तक में देखने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। ये विद्याएँ राजा नल की जीभ पर नाचती थीं। कहने का अभिप्राय है कि नल परस्पर विरोधिनी लक्ष्मी और सरस्वती दोनों का आश्रय था।

संस्कृत व्याख्या- अमुष्य - राज्ञः नलस्य। रसनाग्रनर्तकी जिह्वायाः अग्रभागे नर्तनशीला। विद्या = विविधा रूपविद्या। अंगगुणेन = षड् वेदांगानाम्

आवृत्या। विस्तारं नीता वृद्धि प्रापिता। त्रयी इव = ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद रूपा वेदानां त्रिसंख्या समम्। नवद्वयद्वीप पृथक् = अष्टादश संख्यानां द्वीपानां पृथक् पृथक् इव । जयश्रियाम् = विजय लक्ष्मीनाम्। जिगीषया = जेतुम् इच्छया। अष्टादशंताम् = अष्टादश संख्याम् ताम् अगाहत = प्राप्तवती अभवत् ।

**दिगीशवृन्दांशविभूतिरीशिता
दिशां च कामप्रसभावरोधिनीम् ।
बभार शास्त्राणि दृशं द्वयाधिकां
निजत्रिनेत्रावतरत्वबोधिकाम् ॥ ६ ॥**

अन्वय - दिगीशवृन्दांशविभूतिः दिशामीशिता स शास्त्राणि कामप्रसभावरोधिनी निजत्रिनेत्रावतरत्वबोधिकां द्वयाधिकां दृशं बभार।

शब्दार्थ - दिगीशवृन्दांशविभूतिः = दिशाओं के अधिपतियों अर्थात् इन्द्र आदि दिग्पालों के समूह के अंशों से उत्पन्न। दिशामीशिता = आठ दिशाओं के स्वामी। शास्त्राणि = शास्त्रों के रूप में। कामप्रसभावरोधिनीम् = इच्छा अथवा कामदेव को बलात् रोकने वाली। निजत्रिनेत्रावतरत्वबोधिकाम् = अपने को शिव का अवतार होने का ज्ञान कराने वाले। द्वयाधिकां = दो से अधिक। बभार= धारण किया।

प्रसंग - श्रीहर्ष प्रणीत नैषधमहाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में नल की देवांशभूति तथा शास्त्रज्ञता का अलौकिक चित्रण कवि द्वारा किया गया है।

हिन्दी अनुवाद - (इन्द्रादि) दिक्पाल समूह के अंश से विभूति वाले तथा आठ दिशाओं के स्वामी उम नल ने काम की प्रबलता को रोकने वाले तथा अपने त्रिनेत्र शिव के अवतार का बोध कराने वाले दो से अधिक शास्त्ररूप तृतीय नेत्र को धारण किया।

हिन्दी व्याख्या-राजा नल सम्पूर्ण आठों दिशाओं का शासक था और इन्द्रादि दिक्पाल एक-एक दिशा के स्वामी थे, अतएव इन्द्रादि में इस नल की विभूति थी, अथवा वचन के अनुसार राजा नल समस्त दिक्पालों के अंश से ऐश्वर्यवान् थे, ऐसे वे शास्त्ररूप तृतीय नेत्र को ग्रहण करके इच्छा की प्रबलता अर्थात् मन को शास्त्र विरुद्ध कार्य में प्रवृत्त होने से वैसे रोकते थे, जैसे त्रिनेत्र शङ्कर भगवान्

ने तृतीय नेत्र से कामदेव की प्रबलता को रोका था। इस प्रकार नल शास्त्र-ज्ञान द्वारा कामप्राबल्य को रोककर अपने को शङ्कर का अवतार बतला रहे थे। नल शास्त्रज्ञ होने से शास्त्र विरुद्ध कार्य करने में कभी प्रवृत्त नहीं होते थे अर्थात् शास्त्र विरुद्ध कार्य करने से अपनी इच्छा को सर्वदा रोके रहते थे।

संस्कृत व्याख्या-दिगीशवृन्दाशविभूतिः = दिगीशवृन्दं दिक्पालसमूहः तस्य अंशेभ्यः मात्राभ्यः विभूतिः, उद्भवः यस्य सः (शंकर-पक्षे-दिगीशवृन्दम् अंशविभूतिः यस्य सः अथवा दिगीशवृन्दे अंशेन विभूतिः ऐश्वर्य यस्य सः) दिशाम् = प्राच्यादिकाष्ठानाम् ईशिता ईश्वरः सः नलः शास्त्राणि वेदादिशास्त्राणि (एव) काम प्रसभावरोधिनी = इच्छायाः कामदेवस्य वा बलाऽवरोधकारिणी निजत्रिनेत्रावतारत्वबोधिकाम् = स्वशङ्करावतार ज्ञापिकाम्, द्वयाधिकां = द्वितयाऽतिरिक्तां तृतीयाम् इत्यर्थः दृशं नेत्रं वभार = धृतवान् ।

पदैश्चतुर्भिः सुकृते स्थिरीकृते

कृतेऽमुना के न तपः प्रपेदिरे ।

भुवं यदेकांघ्रिकनिष्ठया स्पृशन्

दधावधर्मोऽपि कृशस्तपस्विताम् ॥ ७॥

अन्वय - अमुना कृते सुकृते चतुर्भिः पदैः स्थिरीकृते के तपः न प्रपेदिरे। यत् अधर्मः अपि एकाधिकनिष्ठया भुवं स्पृशन् (अतएव च) कृशः (सन्) तपस्वितां दधौ।

शब्दार्थ - अमुना = इस राजा नल के द्वारा। कृते = सतयुग में। सुकृते = पुण्य के। चतुर्भिः पदैः = चार चरणों के द्वारा, शम, दम, तप, अस्तेय अथवा यज्ञ, दान, तप एवं ज्ञान के आधारों के द्वारा। स्थिरीकृते = स्थिर कर देने पर। के = कौन। न = नहीं। तपः प्रपेदिरे = तपस्या कर रहे थे। के न तपः प्रपेदिरे = सभी तपस्या कर रहे थे। यत् = जो। अधर्मः अपि = अधर्म भी। एकांघ्रिक = एक + अंघ्रिक। एकांनि कनिष्ठया एका चरण की कनिष्ठिका अंगुल से। भुवम् = धरती को। स्पृशन् = स्पर्श करता हुआ। कृशः सन् = दुर्बल होकर। तपस्विताम् = तपस्वी होने के कारण को। दधौ = धारण कर रहा था।

प्रसंग-सन्दर्भ-श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में कवि श्री हर्ष राजा नल के शासनकाल में पूर्ण धार्मिकता का वर्णन कर रहे हैं।

हिन्दी अनुवाद-इस राजा नल के द्वारा सतयुग में धर्म को चार चरणों शम, दम, सत्य, अस्तेय तथा यज्ञ, ज्ञान, तप, दान के द्वारा स्थिर कर देने पर कौन तपस्या को प्राप्त नहीं हो रहे थे अर्थात् सभी तपस्या कर रहे थे, क्योंकि अधर्म भी केवल पैर की कनिष्ठिका उँगली से धरती का स्पर्श करता हुआ निर्बल हो गया था और तपस्वी की दशा धारण कर ली थी।

हिन्दी व्याख्या-राजा नल सतयुग में हुए थे। सतयुग में धर्म के चारों चरण थे। धर्म अपने चारों चरणों से धरती का स्पर्श कर रहा था। सतयुग में धर्म की प्रबलता तथा अधर्म की दुर्बलता थी। उस समय अधर्म केवल एक चरण की कनिष्ठिका उँगली से धरती का स्पर्श कर रहा था। तात्पर्य यह है कि राजा नल के समय धरती पर अधर्म नाममात्र को था। धर्म के चार चरण मानने के विषय में मतभेद हैं। कुछ आचार्य धर्म के चार चरण-शम-दम-सत्य-अस्तेय मानते हैं और कुछ यज्ञ-दान-तप-ज्ञान मानते हैं। तात्पर्य यह है कि राजा नल के समय में लोगों में इस प्रकार की भावनाएँ एवं गुण थे। एक चरण से धरती को स्पर्श करके तपस्या की जाती है। राजा नल के समय में अधर्म भी तपस्या कर रहा था, फिर धार्मिक जन्म तपस्यारत क्यों न होते ? अधर्म की दुर्बलता भी उसके तपस्वी होने का लक्षण है। तपस्या करने वाले लोग दुर्बल हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि राजा नल ने धर्म को चार चरणों से स्थिर करके अधर्म को क्षीण बना दिया था।

संस्कृत व्याख्या - अमुना = अनेन रात्रा नलेन। कृते सतयुगे। सुकृते = पुण्य कर्मणि। चतुर्भिः = चतसृसंख्याकैः। पदैः = चरणैः। स्थिरीकृते गतिहीनं क्रियमाणे। के कति संख्याकाः। न नहि। तपः = तपस्याम्। प्रपेदिरे = प्राप्तवन्तः। यत् = यस्मात् कारणात्। अधर्मः धर्माभावः। अपि मात्रम्। एकाधिकनिष्ठया = एकचरणेन स्थित्या। भुवम् धरित्रीम्। स्पृशन् = स्पर्श कुर्वन्। कृशः दुर्बलः, स्थूलताया अभावं प्राप्तः। तपस्विताम् = तपस्विनो दशाम्। दधौ = धारितवान्।

यदस्य यात्रासु बलोद्धतं रजः

स्फुरत्प्रतापानलधूममग्निम।

**तदेव गत्वा पतितं सुधाम्बुधौ
दधाति पङ्कीभवदङ्कतां विधौ ॥ ८ ॥**

अन्वय-अस्य यात्रासु स्फुरत्-प्रतापानल-धूममज्जिम, यत् बलोद्धतं रजः (उदपतत्) तद् एव गत्वा सुधाम्बुधौ पतितं पङ्कीभवत् (च) विधौ अङ्कतां दधाति।

शब्दार्थ - अस्य = राजा नल की। यात्रासु = दिग्विजय सम्बन्धी यात्राओं में। स्फुरत् = देदीप्यमान, ऊपर उठता हुआ। प्रतापानल = प्रताप + अनल = प्रतापरूपी अग्नि के। धूममज्जिम धुएँ की शोभा वाला। यत् = जो। बलोद्धतम् = बल + उद्भूतम् = सेना द्वारा उड़ायी गयी। रजः = धूल। उदपतत् = उठी। तद् एव = वह ही। गत्वा = जाकर। सुधाम्बुधौ = सुधा + अम्बुधौ = अमृत सागर में। पतितम् = गिरी। पङ्कीभवत् च और कीचड़ बनती हुई। विधी चन्द्रमा में। अङ्कताम् काले चिह्न का रूप। दधाति = धारण करती है।

प्रसंग-सन्दर्भ-नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में कवि श्रीहर्ष राजा नल की दिग्विजय यात्रा में सेना के चलने से उठी हुई धूल का वर्णन कर रहे हैं।

हिन्दी अनुवाद-इस राजा नल की दिग्विजय सम्बन्धी यात्राओं में इसके प्रखर प्रताप-रूपी अग्नि के धुएँ की शोभा वाली जो धूल सेना द्वारा उड़ायी गयी, वही जाकर अमृत के सागर में गिरी और कीचड़ बनकर चन्द्रमा में कलंक का रूप धारण कर गयी।

हिन्दी व्याख्या-राजा नल ने दिग्विजय के प्रसंग में अनेक यात्राएँ कीं। वह विशाल सेना लेकर दिग्विजय के लिए निकलता था। उसकी सेना चलती थी तो अधिक मात्रा में धूल उड़ती थी। वह धूल ऐसी जान पड़ती थी, मानो राजा नल की प्रतापरूपी अग्नि का धुआँ हो। राजा नल की दिग्विजय सम्बन्धी यात्राओं में उड़ी हुई धूल जाकर अमृत के सागर में गिरी और कीचड़ बन गयी। देवों और दानवों ने मिलकर जब सागर का मंथन किया तो उसमें से निकले रत्नों में चन्द्रमा भी था। चन्द्रमा में जो काला धब्बा है, वह राजा नल की सेनाओं के चलने से उड़ी धूल की कीचड़ लगी है। चन्द्रमा सागर में था। उसमें कीचड़ लगना स्वाभाविक है।

संस्कृत व्याख्या- अस्य प्रतापानलधूमिज्जिम = प्रतापरुपिणः उदपतत् = ऊर्ध्वम् अगच्छत्। गत्वा नृपनलस्य। यात्रासु गमनप्रसंगेषु। स्फुरत् ऊर्ध्वम् इत्थितम्। अग्नेः धूमस्य शोभा। बलोद्धतम् = सेनया उत्थापितम्। रजः = धूलिः। प्राप्य। सुधीम्बुधौ अमृत सागरे। पतितम् = अधोभूतम्। विधौ = चन्द्रमसि। अङ्कताम् = कालिमां रूपम्। दधाति = धारयति।

**स्फुरद्धनुर्निस्वनतद्धनाशुग-
प्रगल्भवृष्टिव्ययितस्य सङ्गरे।
निजस्य तेजशिशिखिनः परशशता
वितेनुरङ्गारमिवायशः परे ॥ ९॥**

अन्वय - परे स्फुरद्धनुर्निस्वनतद्धनाशुगप्रगल्भवृष्टि व्ययितस्य निजस्य तेजशिशिखिनः अङ्गारमिव अयशः वितेनुः।

शब्दार्थ-सङ्गरे = युद्ध में। परशशताः सैकड़ों। परे शत्रु। आशुग शीघ्र गमन करने वाले। प्रगल्भ वृष्टिव्ययितस्य = प्रबल वृष्टि से बुझे हुए। निजस्य = अपने। तेजशिशिखिनः = प्रतापाग्नि के। अङ्गारमिव = अङ्गार के सदृश। अयशः अपयश को। वितेनुः = फैला दिया।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में राजा नल द्वारा अपने प्रताप और पराक्रम से फैलाई गयी कीर्ति का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद-युद्ध में सौ से भी अधिक शत्रु राजाओं ने प्रकाशमान धनुष के टङ्कार को विस्तृत करने वाले उस नल के अत्यधिक बाणों की असह्य वर्षा से बुझी हुई अपनी (शत्रुओं की) तेज रूपी अग्नि के अङ्गार के सदृश अपयश को फैला दिया।

हिन्दी व्याख्या-राजा नल युद्ध में चमकती हुई धनुष की टङ्कार करते हुए मेघों में हुई वर्षा के समान बाणों को बरसाते थे। उस बाणवृष्टि से शताधिक नल-शत्रुओं की प्रतापाग्नि बुझ गयी और उनके काले काले अंगारों के समान अपयश चारों ओर फैल गया। अत्यधिक वर्षा होने पर प्रज्ज्वलित अग्नि बुझ जाया करती है और उसके बुझे हुए काले-काले अंगार चारों ओर फैल जाया करते हैं। इसी प्रकार

राजा नल के बाणों की वर्षा से शत्रु राजा पराजित हो गये तथा उनकी कीर्ति नष्ट हो गयी और उनका अपयश चारों ओर व्याप्त हो गया। कहने का आशय यह है कि नल ने शताधिक शत्रुओं को जीतकर उनकी प्रतापाग्नि को बुझा दिया था, शत्रुविहीन होकर निर्द्वन्द्वता के साथ राज्य का संचालन करते थे। इस प्रकार उनकी कीर्ति चारों ओर फैल गयी थी।

संस्कृतव्याख्या-संगरे =युद्धे। परशताः =शताधिकाः। परे शत्रवः।स्फुरद्धनुर्निस्वनतद्धनाशुगप्रगल्भवृष्टि व्ययितस्य = स्फुरन्तौ धनुश्च निःस्वनश्च यस्य स राजा नल एवं मेघः तस्य बहुमात्रं कृतथा वर्षया समाप्तस्य। निजस्य = स्वकीयस्य। तेजः शिरिवनः प्रतापाग्नेः। अंगारमिव = अंगारतुल्यम् । अयशः = अपयशः। यशोऽभावम्। वितेनुः विस्तारितवन्तः ।

अनल्पदग्धारि पुरानलोज्ज्वलै

निजप्रतापैर्वलयं ज्वलद्भुवः ।

प्रदक्षिणीकृत्य जयाय सृष्टया

रराज नीराजनया स राजघः ॥ १० ॥

अन्वय-राजघः सः अनल्पदग्धारिपुरानलोज्ज्वलैः निजप्रतापैः ज्वलद्भुवः वलयं प्रदक्षिणीकृत्य जयाया सृष्टया नीराजनया रराज।

शब्दार्थ - राजघः = राजाओं का हनन करने वाला। सः = वह राजा नल। अनल्पदग्धारिपुर = अनल्पा + दग्ध + अरि पुर = अधिक मात्रा में जलाये गये शत्रुओं के नगरों की। उज्ज्वलैः जली हुई अग्नि से। निज प्रतापैः = अपने प्रतापों के द्वारा। ज्वलद्भुवः जलती हुई भूमि का। वलयम् = घेरा। दधत् बनती हुई। प्रदक्षिणीकृत्य = प्रदक्षिणा करके, चारों ओर घूमकर। जयाय = विजय के लिए, विजय के निमित्त। सृष्टया = रची गयी। नीराजनया = आरती के द्वारा। रराज = सुशोभित हुआ।

प्रसंग-सन्दर्भ-नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित श्लोक में श्रीहर्ष कवि दिग्विजय के प्रसंग में राजा नल के द्वारा शत्रुनगरों को जलाने का वर्णन कर रहे हैं।

हिन्दी अनुवाद-शत्रु राजाओं का हनन करने वाला वह राजा नल अधिक मात्रा में जलाये गये शत्रुओं के नगरों की जलती हुई अग्नि से अत्यन्त उज्ज्वल अपने प्रतापों के द्वारा जलती हुई धरती की प्रदक्षिणा करके विजय के उपलक्ष्य में बनायी गयी आरती से सुशोभित हुआ।

हिन्दी व्याख्या-राजा नल ने अपनी दिग्विजय सम्बन्धी यात्राओं में अनेक राजाओं का वध किया तथ उनके बहुत से नगरों को जला दिया। शत्रुनगरों में लगी आग के समान ही राजा नल की प्रतापरूपी अग्नि थी इस प्रकार शत्रु नगरों में लगी आग और अपनी प्रतापरूपी अग्नि से जलती हुई धरती की राजा नल ने प्रदक्षिण की। दिग्विजय करके लौटे राजा नल के स्वागत में आरती सजायी गयी। राजा नल उस आरती से सुशोभि हुआ। यहाँ राजा को विष्णु का रूप माना गया है अतः लक्ष्मी के द्वारा आरती करना उचित है।

संस्कृत व्याख्या-राजधः = शत्रुनृपाणां हन्ता। सः राजा नलः। अनल्पदग्धारि पुरानलोच्चलैः = अत्यधिकमात्रायां ज्वलितानां शत्रुनगराणाम् अग्निना प्रकाशमयैः। निजप्रतापैः स्वकीयैः तेजोभिः। ज्वलद् = दग्धन्तों प्राप्नुवत्। भुवंः वलयम् धरायाः वर्तुलाकारम्। दधत् = धारयन्ती। प्रदक्षिणीकृत्य = प्रदक्षिणां कृत्वा । जयाय = विजयाय। सृष्टया विश्वैतया। नीराजनया आरातिव्या। रराज शोभां प्राप्तवान् ।

निवारितास्तेन महीतलेऽखिले

निरीतिभावं गमितेऽतिवृष्टयः ।

न तत्यजुर्नूनमनन्यसंश्रयाः

प्रतीपभूपालमृगीदृशां दृशः ॥ ११ ॥

अन्वय- अखिले महीतले तेन निरीतिभावं गमिते निवारिताः अतिवृष्टय अनन्यसंश्रयाः प्रतीपभूपालमृगीदृशां दृशः न तत्यजुः नूनम् ।

शब्दार्थ-अखिले महीतले= समस्त भूतल पर। निरीतिभावम् = ईतिशून्यता को। गमिते = प्राप्त करा दिये जाने पर। निवारिता = रोकी हुई। अतिवृष्टयः अतिवृष्टियों ने। अनन्यसंश्रयाः कहीं अन्यत्र आश्रय को प्राप्त न कर। प्रतीपभूपाल मृगीदृशाम् = शत्रु राजाओं की मृगी सदृश नेत्रों वाली सुन्दरियों के। दृशः = नेत्रों को। न तत्यजुः = नहीं छोड़ा।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में व्याजोक्ति के माध्यम से नल का प्रभाव वर्णित है।

हिन्दी अनुवाद-अतिवृष्टि आदि छः ईतियों से रहित सम्पूर्ण भूतल पर उस नल के द्वारा रोकी गयी अतिवृष्टियों ने मानो अन्यत्र आश्रय नहीं पाकर शत्रुभूत राजाओं की मृगीसदृश नेत्रों वाली सुन्दरियों के नेत्रों को नहीं छोड़ा।

हिन्दी व्याख्या-राजा के प्रताप का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि राजा नल के राज्य में कहीं भी अतिवृष्टि आदि छः इतियाँ नहीं थीं अर्थात् नल के सम्पूर्ण राज्य में अतिवृष्टि आदि छः विपत्तियों का प्रवेश नहीं हो पाता था। अतः पृथ्वी पर कहीं आश्रय प्राप्त न कर सकने से वे इतियाँ शत्रु राजाओं की रोती हुई स्त्रियों के नेत्रों में ही आश्रय ग्रहण किया करती थीं। कहने का तात्पर्य है कि राजा नल ने सभी शत्रुओं का पृथ्वी तल से विनाश कर दिया था। अतएव उन सभी की पत्नियाँ उनके शोक में निरन्तर रोया करती थीं। संसार में भी ऐसा देखा जाता है कि किसी के द्वारा निकाला गया व्यक्ति उसके शत्रु के घर में आश्रय प्राप्त करता है। अतः अतिवृष्टि आदि इतियों का नल के शत्रुओं के यहाँ आश्रय प्राप्त करना उचित ही है।

संस्कृत व्याख्या- तेन = राजा नलेन। समस्ते भूतले निरीतिभावम् = अतिवृष्ट्यादीतिभावरहित्यं प्रापिते सति निवारिताः = स्वराष्ट्रात् निराकृताः, अतिवृष्टयः, अनन्यसंभ्रयाः न विद्यते अन्यः संश्रयः आश्रयः यासां तथाभूताः सत्याः, प्रतीपभूपालमृगीदृशम् = प्रतीपभूपालानाम् शत्रुनृपाणाम् या मृगीदृशः मृगनयनाः कान्ताः तासाम् नेत्राणि न तत्यजुः = त्यक्तवत्यः। नूनम् = इव ।

सितांशुवर्णैर्वयति स्म तद्गुणै
महासिवेम्नः सहकृत्वरी बहुम्
दिगङ्गानाङ्गाभरणं रणाङ्गणे
यशः पटं तद्भटचातुरी तुरी॥ १२ ॥

अन्वय-महासिवेम्नः सहकृत्वरी तद्भटचातुरी तुरी रणाङ्गणे सितांशुवर्णैः तद्गुणैः दिगङ्गानाङ्गाभरणं बहु यशः पटं वयति स्म।

शब्दार्थ - महासिवेम्नः = महान् तलवाररूपी करघे की। सहकृत्वरी = सहकारिणी। तद्भटचातुरी = उस राजा नल के सैनिकों की चातुरी। सितांशुवर्णैः

चन्द्रमा के समानं वर्ण वाले। तद्गुणैः = उस (राजा नल) के गुणों रूपी धागों से। दिग्गङ्गनाङ्गाभरणम् = दिशारूपी स्त्रियों के अगों में धारण किये जाने योग्य आभूषण के समान। यशः पटम् = यशरूपी वस्त्र को। वयति स्म = बुनती थी।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में राजा के द्वारा अपनी वीरता और चतुरता से निरन्तर यश का विस्तार करने का वर्णन किया जा रहा है।

हिन्दी अनुवाद- उस (नल) के योद्धाओं की चतुरतारूपिणी तथा विशाल तलवाररूपिणी करघे का साथ करने वाली तुरी युद्धक्षेत्र में चन्द्रमा के समान वर्ण वाले उस (नल) के गुणरूपी धागों से दिशारूपी स्त्रियों के अङ्गों में धारण किये जाने योग्य आभूषण के समान यशरूपी वस्त्र को बुनती थी।

हिन्दी व्याख्या- जिस प्रकार करघे की सहकारिणी तुरी चन्द्रमा के समान सफेद धागे से रमणियों के पहनने के लिए सफेद वस्त्र बुनती है, उसी प्रकार राजा नल के योद्धाओं की चतुरता युद्धक्षेत्र में शत्रुओं का विनाश करके नल के गुणों से दिग्दिगन्त में फैलने वाले यश का निर्माण करती थी। कहने का अभिप्राय यह है कि नल के योद्धाओं की चतुरता से संग्राम में तलवारों के प्रहार से शत्रु मरते थे तो नल का यश दिगन्त तक फैलता था।

संस्कृत व्याख्या - महासिवेम्नः = विशाल खड्गवायदण्डस्य सहकारिणी तस्य नलस्य। भटाः सैनिकाः। तेषां चातुरी = नैपुण्यम् एव । तुरी = वेष्टनदण्डः। रणाङ्गणे युद्धस्थले । सितांशुवर्णैः = चन्द्रसदृशगौरवर्णैः। शुभैः = निर्मलैः वा इतिभावः। तद्गुणैः तस्य नलस्य गुणैः शौर्यादिभिः तन्तुभिश्च दिग्गङ्गनाङ्गाभरणम् = दिशः ककुभाः एव अङ्गनाः कामिन्यः तासाम् अङ्गाभरणम् अङ्गाभूषणं। बहुम् अधिकं । यशः पभूम् यश एवं पटः वसनं तम् वयतिस्म = ततान।

प्रतीपभूपैरिव किं ततो भिया
विरुद्धधर्मैरपि भेत्तोज्झिता।
अमित्रजिन्मित्रजिदोजसा स यद्
विचारदृक् चारदृगप्यवर्तत ॥ १३ ॥

अन्वय-प्रतीपभूपैः इव विरुद्धधर्मः अपि किम् ततः भिया भेतृता उज्झिता यत् सः ओजसा मित्रजित् (अपि) अमित्रजित्, चारदक् अपि विचारदक् अवर्तत।

शब्दार्थ - प्रतीपभूपैः = विरोधी राजाओं के। इव समान। विरुद्धधर्मैः विपरीत भावों वाले पदार्थों ने। अपि = भी। किम् = क्या। भेतृता विरोधी भाव, विरुद्धता। भिया राजा नल के भय से। उज्झिता = त्याग दी। यत् = जो। ओजसा प्रताप से। मित्रजित् = सूर्य मण्डल को जीतने वाला, सूर्य से अधिक तेजस्वी। अपि = भी। अमित्रजित् = शत्रुओं पर विजय पाने वाला। चारदक् गुप्तचरों-रूपी नयनों वाला, गुप्तचरों के माध्यम से राज्य को देखने वाला। विचारदक् = विचारपूर्वक काम करने वाला, विचार की दृष्टि रखने वाला। अवर्तत = था।

प्रसंग-सन्दर्भ-श्रीहर्ष प्रणीत नैषधमहाकाव्य के प्रथम सर्ग से संगृहीत प्रस्तुत श्लोक में विरोधाभास अलंकार के माध्यम से कवि श्रीहर्ष राजा नल की विशेषताओं का वर्णन कर रहे हैं।

हिन्दी व्याख्या-राजा नल के विरोधी राजाओं के समान विरोधी भावों ने भी क्या राजा नल के भय से भिन्नता त्याग दी है? क्योंकि वह राजा नल अपने तेज से मित्र अर्थात् सूर्य को जीतने वाला होकर भी अमित्रजित् अर्थात् शत्रुओं पर विजय पाने वाला था। इसी प्रकार वह चारदक् अर्थात् गुप्तचरों द्वारा देखने वाला होकर भी विचारदक् अर्थात् विचाररूपी नयनों वाला था।

हिन्दी अनुवाद-राजा नल की, शक्ति से भयभीत होकर उसके विरोधी राजाओं ने विरोध का भाव त्याग दिया था। कोई भी राजा, नल का विरोधी नहीं रह गया था। कवि कल्पना करता है कि क्या राजा नल के विरोध ती राजाओं के समान परस्पर विरुद्ध भावों ने भी विरोध त्याग दिया था। इसका कारण बताता हुआ कवि कहता है कि मित्रजित् और अमित्रजित् परस्पर विरोधी भाव हैं। जो मित्र को जीतने वाला होगा, वह मित्र को न जीतने वाला कैसे हो सकता है ? राजा नल मित्रजित् और अमित्रजित् दोनों था। तात्पर्य यह है कि उसने अपने तेज से सूर्य को और शत्रुओं को जीत लिया था। उसी प्रकार राजा नल में चारदक् और विचारदक् के भी विरोधी भाव थे। जो चारदक् होगा, वह विचारदक् कैसे हो सकता है? पर राजा नल ऐसा था। वह चार अर्थात् गुप्तचरोंरूपी दृष्टि वाला था। राजाओं के विषय में कहा गया है-"चारचक्षुषो राजानः।" इसके साथ ही राजा नल विचाररूपी दृष्टि वाला अर्थात् विचार करने के पश्चात् काम करने वाला था।

संस्कृत व्याख्या- प्रतीपभूपैः विरोधिभिः नृपैः। इव समानम्। विरुद्धधर्मः = विपरीतभावानां पदार्थः। किम् = कथम्। भेतृता विरुद्धता। ततः नृपस्य नलस्य। भिया भयेन। उज्झिता = त्यक्ता। यत् = यस्मात् कारणात्। सः = राजा नलः। ओजस तेजसा। मित्रजित् सूर्यमण्डलस्य जेता। अमित्रजित् = शत्रूणां विजेता। चारदुक् गुप्तचररूपिभिः नयनैः युक्तः। विचारदृक् विचाररूपया दृष्ट्या युक्तः। अवर्तत = आसीत्।

तदोजसस्तद्यशसः स्थिताविमौ,
वृथेति चित्ते कुरुते यदा-यदा।
तनति भानोः परिवेषकैतवात्,
तदा विधिः कुण्डलनां विधोरपि ॥ १४॥

अन्वय- तदोजसः तद्यशसः स्थितौ इमौ वृथा इति विधिः यदा यदा चित्ते कुरुते, तदा तदा सः भानोः विधौ गोः च अपि परिवेश कैतवान् कुण्डलनां तनोति।

शब्दार्थ - तदोजसः = उस राजा नल के तेज के। तद् यशसः उस राजा नल के यश के। स्थितौ = होने पर। इमौ = सूर्य और चन्द्रमा दोनों। वृथा व्यर्थ हैं। इति इस प्रकार की भावना। विधिः ब्रह्माजी। यदा-यदा = जब-जब। चित्ते कुरुते मन में करते हैं, सोचते हैं। तदा तदा तब-तब। सः भानोः = सूर्य के। विधोः = चन्द्रमा के। परिवेष कैतवात् = गोला बनाने के बहाने। कुण्डलनाम् तनोति = ब्रह्माजी। घेरा बना देते हैं।

प्रसंग-सन्दर्भ- श्रीहर्ष विरचित नैषधमहाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में कविराज श्रीहर्ष नल के तेज और यश का वर्णन कर रहे हैं।

हिन्दी अनुवाद- राजा नल के तेज के रहते हुए सूर्य व्यर्थ है और उसके यश के रहते हुए चन्द्रमा व्यर्थ है। इस प्रकार की बात ब्रह्माजी अपने मन में जब-जब सोचते हैं, तब-तब सूर्य और चन्द्र के चारों ओर मण्डल की आकृति बनाने के बहाने घेरा बना देते हैं।

हिन्दी व्याख्या- काव्यशास्त्रियों के अनुसार ओज अथवा तेज का प्रकाश उष्ण है और यश का प्रकाश शीतल है। आकाश में कभी-कभी सूर्य और चन्द्रमा के चारों ओर हल्के प्रकाश का घेरा-सा दिखाई देता है। ओहर्ष यह कल्पना करते हैं कि

जब-जब ब्रह्माजी सोचते हैं कि राजा नल के तेज के होते हुए सूर्य व्यर्थ है। सूर्य का काम राजा नल का तेज कर रहा है। इसी प्रकार राजा नल के यश के होते हुए चन्द्रमा व्यर्थ है। चन्द्रमा का काम राजा राजा नल का यश कर रहा है। ऐसा सोचकर ब्रह्माजी सूर्य और चन्द्रमा के चारों और गोला बना देते हैं। लोक में भी विद्वानों से जो शब्द व्यर्थ या अधिक लिख जाता है, उसके चारों और गोला बनाकर यह संकेत करते हैं कि यह शब्द व्यर्थ है।

संस्कृत व्याख्या-तदोजसः राजः नलस्य तेजसः। तद् यशसः राजः नलस्य कीर्तः। स्थितौ = वर्तमानतायाम् । इमौ = सूर्य-चन्द्रौ द्वौ। वृथा इति व्यर्थी इति। विधिः विधाता, ब्रह्मा। यदा यदा = यस्मिन् यस्मिन् समये। चित्ते करोति स्वमनसि विचारयति तदा तदा तस्मिन् तस्मिन् समये। भानोः = सूर्यस्य। विधोः = चन्द्रस्य। परिवेश कैतवात् = परिधिमण्डल व्याजयात्। वर्तुलरेखांकनम् । तनोति = विस्तारयति ।

अयं दरिद्रो भवितेति वैधसीं

लिपिं ललाटेऽर्थिजनस्य जाग्रतीम्।

मृषा न चक्रऽल्पित कल्पपादपः

प्रणीय दारिद्र्य-दरिद्रतां नृपः ॥ १५ ॥

अन्वय - अल्पित कल्पपादपः नृपः अर्थिजनस्य ललाटे जाग्रतीम् 'अयंदरिद्रः भविता' इति वैधसीम् लिपिम् दारिद्र्यदरिद्रतां प्रणीय मृषा न चक्रे ।

शब्दार्थ - नृपः = राजा नलः। अर्थात् दरिद्रता का अभाव। प्रणीय करके। अयम् = यह। दरिद्रः भविता = दरिद्र होने वाला है। इति= इस प्रकार की। अर्थिजनस्य माँगने वाले लोगों के। ललाटे = माथे पर। जाग्रतीम् =जागती हुई, स्पष्ट प्रतीत होती हुई। वैधसीम् =ब्रह्माजी की। लिपिम् = लिखावट को। मृषा = असत्य। न चक्र = नहीं किया।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषधमहाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में राजा नल के यश और तेज का वर्णन करने के बाद अब उसकी दानवीरता का वर्णन किया जा रहा है।

हिन्दी अनुवाद-कल्प वृक्ष को छोटा बना देने वाला राजा (नल) ने याचकों के ललाट पर स्पष्ट दिखने वाली 'यह दरिद्र होगा' ऐसी ब्रह्मा की लिपि (लेख) को दरिद्रता की दरिद्रता रचकर झूठ नहीं किया अर्थात् मिथ्या नहीं किया। हिन्दी **अनुवाद-**राजा नल की दानवीरता का वर्णन है। राजा नल दरिद्र याचकों को इतना धन देते थे जितने की वे इच्छा भी नहीं करते थे। अतः अपनी दानशीलता से उन्होंने कल्पवृक्ष को भी तुच्छ बना दिया था, क्योंकि कल्पवृक्ष भी याचित धन ही प्रदान करता है। उनके दान से उन दरिद्र याचकों की निर्धनता दूर हो जाती थी, जिनके मस्तक पर ब्रह्माजी ने लिख दिया है कि 'यह दरिद्र होगा'। इस प्रकार नल ने दरिद्रता को ही दारिद्र्य बनाकर ब्रह्मा जी के लेख को झूठ नहीं होने दिया। इससे न तो नल के राज्य में कोई दरिद्र रहा और न ही ब्रह्मा का लेख ही झूठा हुआ। राजा नल के राज्य में प्रत्येक व्यक्ति धन-धान्य से परिपूर्ण तथा सुखी था।

संस्कृत व्याख्या-अल्पित कल्पपादपः स्वल्पीकृत कल्पवृक्षः (निर्जितः इति भावः) नृपः राजा नलः। दारिद्र-दारिद्रताम् = दारिद्र्यस्य अभावस्य धनाभावस्य वा (निर्धनस्य इत्यभिप्रायः)। दारिद्रताम् अभावम् = निर्धनतायाः अभावम्। प्रणीय सम्पाद्य। अयम् एषः मनुष्यः। दरिद्रो भविताः = निर्धनः भविष्यति। इति = एव प्रकारेण। अर्थिजनस्य = भिक्षुकु समूहत्य। ललाटे = मस्तके। जाग्रतीम् = स्पष्टतया दीप्यमानम् लिपिम् = लेखम्। मृषा = मिथ्या। न = नहि। चक्रे = कृतवान्।

विभज्य मेरुर्न यदर्थिसात्कृतो

न सिन्धुरुत्सर्गजलव्ययैर्मरुः ।

अमानि तत्तेन निजायशोयुगं

द्विफालबद्धाश्चिकुराः शिरास्थितम् ॥ १६ ॥

अन्वय-यत् मेरुः विभज्य अर्थिसात् न कृतः, सिन्धुः उत्सर्गजलव्ययैः न मरुः, तत् तेन द्विफालबद्धाः चिकुराः शिरस्थितं निजायशोयुगम् अमानि।

शब्दार्थ - यत् = जो। मेरुः तीन। न कृतः = नहीं किया। सिन्धुः निर्जल अथवा मरुस्थल। न कृतः चिकुराः = अपने केश समूह को। अपयश। अमानि = समझा। सुमेरु पर्वत को। विभज्य विभक्त करके। अर्थिसात् = याचकों के अध्

समुद्र को। उत्सर्गजलव्ययैः दान देते समय संकल्प जल से। मरुः = नहीं बना दिया। द्विफालवद्धाः दो भागों में विभक्त करके बँधे हुए।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषधमहाकाव्य में प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में प्रकारान्तर से राजा नल की दानवीरता का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद-जो मैंने (नल ने) सुमेरु पर्वत को विभक्त करके यादकों के अधीन नहीं किया और दान देते समय संकल्प जल से समुद्र को निर्जल अथवा मरुस्थल नहीं बना दिया। इस प्रकार दो भागों में विभक्त करके बँधे हुए अपने केश समूह को सिर पर दो अपयश स्थित हैं, ऐसा राजा नल ने समझा।

हिन्दी व्याख्या-प्रकारान्तर से राजा नल की दानवीरता का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि याचकों को प्रभूत मात्रा में दान देने के बाद राजा नल अपने मन में सोच रहे हैं कि मैंने स्वर्णराशि के रूप में विद्यमान सुमेरु पर्वत को विभक्त करके याचकों के लिए दान में नहीं दे दिया और दान देते समय पुरोहित द्वारा संकल्प पढ़े जाने के अनन्तर छिड़के जाने वाले जल के रूप में मैंने समुद्र के जल को व्यय करके उसे मरुस्थल नहीं बना दिया। अतः उसके ये दो अपयश हैं जो सिर के दोनों ओर काले काले बालों के रूप में बँधे हुए लटक रहे हैं।

संस्कृत व्याख्या- यत् = यस्मात् कारणात्। मेरुः मेरुनामा पर्वतः। विभज्य विभागं कृत्वा । अर्थिसात् = याचकेभ्यो देयः। न नहि। कृतः विहितः। सिन्धुः = सागरः। उत्सर्गजलव्ययैः = दान वारि प्रक्षेपैः। न = नहि। मरु = निर्जल देशः। तत् तस्मात् कारणात्। तेन न राजा नलेन। द्विफालवद्धा = द्वयो = शिरः पाश्वयोः रक्षिताः, द्विधा विभक्ता इति भावः। चिकुराः केशाः शिरः स्थितम् = स्वमस्तकेधारितम् । निजायशो युगम् = स्वीकीयाऽकीर्ति युगम्। अमानि = विचारितम् ।

अजस्त्रमभ्यासमुपेयुषा समं
मुदैव देवः कविना बुधेन च।
दधौ पटीयान् समयं नयन्नयं
दिनेश्वरश्रीरुदयं दिने दिने ॥ १७॥

अन्वय - दिनेश्वरश्रीः पटीयान् अयं देवः अजस्त्रेम् अभ्यासं उपेयुषा कविना बुधेन च समं मुदा एव समयं नयन् दिने दिने उदयं दधौ।

शब्दार्थ-दिनेश्वरश्रीः = सूर्य के समान शोभा वाले। पटीयान् कार्यकुशल। देवः = राजा, सूर्य। अजस्रम् = निरन्तर। अभ्यासम् = सन्निकटता, अभ्यास। उपेयुषा प्राप्त करने वाले अथवा प्राप्त किये हुए। कविना = काव्यशास्त्र को जानने वाले पण्डित, शुक्र नामक ग्रह। बुधेन बुद्धिमान्, विद्वान्, बुध नामक ग्रह। मुदा एव = प्रसन्नता के साथ ही। उदयम् उन्नति को। नयन् = बिताते हुए। दधौ = धारण करता था।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में राजा नल द्वारा अपना समय कवि और विद्वानों के साथ बिताये जाने का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद-बुद्धिमान्, सूर्य के समान तेजस्वी राजा नल निरन्तर अभ्यास करने वाले कवि तथा पण्डित (काव्य रचयिता तथा व्याकरणज्ञाता) के साथ हर्षपूर्वक समय को व्यतीत करते हुए प्रतिदिन समृद्धि को उस प्रकार प्राप्त कर रहे थे, जिस प्रकार निरन्तर समीप में स्थित शुक्र तथा बुध नामक ग्रहद्वय के साथ समय को व्यतीत करते हुए तेजस्वी सूर्य प्रतिदिन उदय को प्राप्त करते हैं।

हिन्दी व्याख्या-जिस प्रकार दिन में ईश्वर के सदृश कान्ति को धारण करने वाले अन्धकार को दूर करने में समर्थ सूर्यदेव निरन्तर समीप में रहने वाले शुक्र और बुध इन दो ग्रहों के साथ प्रतिदिन उदय को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार सूर्य की कान्ति के समान कान्ति को धारण करने वाला अर्थात् तेजस्वी और अपने विरोधी अथवा विपक्षी राजाओं को नीचा दिखाने में पूर्णतया समर्थ राजा नल सदैव अपने-अपने विषय का अभ्यास करने वाले तथा समीप में विद्यमान रहने वाले काव्यशास्त्र के ज्ञाता विद्वानों के साथ प्रसन्नतापूर्वक समय को व्यतीत करते हुए प्रतिदिन उन्नति को धारण किया करते थे।

संस्कृत व्याख्या- दिनेश्वरस्येव श्रीर्यस्य, अन्यत्र दिने ईश्वरस्येवश्रीः। पटीयान् = सूर्यः राजा वा, अजस्रम् = सततम् निरन्तर वा। अभ्यासम् = काव्यशास्त्रविदापण्डितेन शुक्रेण वा। बुधेन च = विदुषा-६ सार्धम्। मुदा एव आनन्देन एव-न तु दुःखेन-इति, एव, प्रतिदिनम्। उदयम् = उन्नतिम् आविर्भावञ्च। दधौ = संस्कृत व्याख्या-दिनेश्वरश्रीः बुद्धिमान् यद्वा तेजस्वी। अयम् एषः, देवः

सान्निध्यम्। उपेयुषा = प्राप्तवता। कविना धर्मशास्त्रदिदर्शिना-इतिभावः। सौम्येन च समम् इत्यस्थार्थः। समयं नयन् अतिवाहयन्। दिने-दिने धृतवान्।

अधोविधानात् कमलप्रवालयोः,
शिरस्सु दानादखिलक्षमाभुजाम्।
पुरेदमूर्ध्वं भवतीति वेधसा
पदं किमस्याङ्कितमूर्ध्वरेखया ॥ १८ ॥

अन्वय-कमलप्रवालयोः अधोविधानात् अखिलक्षमाभुजां शिरस्सु दानात् "इदं पुरा ऊर्ध्वं भविता" इति वेष् ासा अस्य पदं किं ऊर्ध्वरेखया अङ्कितम् ?

शब्दार्थ-कमलप्रवालयोः कमल तथा प्रवाल को। अधोविधानात् नीचा करने से या सौन्दर्य के द्वारा तिरस्कृत करने से। अखिलक्षमाभुजाम् = सम्पूर्ण राजाओं के। शिरस्सुदानात् = शिर पर रखे जाने से। इदं पुरा ऊर्ध्वं भवति = यह आगे चलकर ऊँचा होगा। वेधसा = ब्रह्मा ने। अस्य पदम् = राजा नल के चरण को। ऊर्ध्वरेखया = ऊर्ध्वगामिनी रेखा से। अङ्कितम् = चिह्नित कर दिया है।

प्रसंग-सन्दर्भ-श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में नल के शारीरिक वर्णन के प्रसंग में सामुद्रिक शुभ लक्षणों का उल्लेख किया गया है।

हिन्दी अनुवाद - यह नल कमल तथा प्रवाल को नीचा करने से या सौन्दर्य के द्वारा तिरस्कृत करने से और समस्त राजाओं के शिर पर रखे जाने से यह आगे चलकर उन्नत होगा, ऐसा विचार कर ब्रह्माजी ने इस (राजा) के चरण को जन्मकाल से पहले ऊर्ध्वगामिनी रेखा से चिह्नित कर दिया है क्या ?

हिन्दी व्याख्या- महाकवि श्रीहर्ष द्वारा राजा नल के सामुद्रिक लक्षणों का वर्णन किया गया है, क्योंकि नल के चरण में सामुद्रिक लक्षण के अनुसार ऊपर की ओर गमन करने वाली शुभसूचक रेखाएँ थीं। सामुद्रिक शास्त्र में कहा गया है कि जिसके चरण में ऊर्ध्व रेखा हुआ करती है, वह सर्वोत्तम व्यक्ति हुआ करता है। राजा नल का पैर कमल से तथा मूँगे से भी अधिक लाल था, अतः उसने अपनी शोभा से इन दोनों को जीत लिया था। सभी राजा नल के चरणों में नतमस्तक होते थे। अतः इसका पैर सभी राजाओं के सिर पर होता था। मानो

ब्रह्मा जी ने यह सोचकर कि इसका पैर सभी के ऊपर या सर्वोत्कृष्ट होगा, ऊर्ध्वरेखा से चिह्नित कर दिया था।

संस्कृत व्याख्या-कमल प्रवालयोः पद्मपल्लवप्रवालयोः कर्मभूतयोः अधो-विधानात् = अधः करणात् न्यक्करणात् इति यावत् तथा अखिलानां सर्वेषां क्षमाभुजां प्रतिकूलवर्तिनां राज्ञां शिरः सुदानात् विधानात् इदम् अस्य नलस्य पदम् = चरणः ऊर्ध्वम् उपरि उत्कृष्टं वा भवति भविष्यतीत्यर्थः इति इदं मत्वा इतिशेषः पदं चरणम् ऊर्ध्वरेखया अंकितं किं चिह्नितं किम् ?

जगज्जयं तेन च कोशमक्षयं
प्रणीतवान् शैशवशेषवानयम्।
सखा रतीशस्य ऋतुर्यथा वनं
वपुस्तथाऽऽलिङ्गदथास्य यौवनम् ॥ १९॥

अन्वय-शैशवशेषवान् अयं जगज्जयं तेन च कोशम् अक्षयं प्रणीतवान्। अथ च यथा रतीशस्य सखा ऋतुः वनं तथा यौवनम् अस्य वपुः आलिङ्गत।

शब्दार्थ - शैशवशेषवान् = बाल्यावस्था पूर्ण है जिसकी। अयम् इस राजा नल। आदी = प्रारम्भ में, पहले। जगज्जयम् = संसार की विजय। प्रणीतवान् = की। ततश्च इसके बाद। तेन एव = उतने ही। कोशम् = खजाने की। अक्षयम् = समाप्त न होने वाला। प्रणीतवान् बनाया। अथ च = और इसके बाद। यथा = जिस प्रकार। रतीशस्य कामदेव का। सखा मित्र। ऋतुः बसन्त ऋतु। वनम् = वन को। तथा = उसी प्रकार। अस्य = इसके। वपुः शरीर को। यौवनम् = यौवन नें। आलिङ्गत् = आलिङ्गन किया।

प्रसंग-सन्दर्भ- श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में नल की युवावस्था के आगमन का वर्णन किया जा रहा है।

हिन्दी अनुवाद-जिसकी कुछ बाल्यावस्था समाप्त हो गयी थी, ऐसे राजा नल ने सम्पूर्ण जगत् को जीत लिया और अपने कोश को समाप्त न होने वाला बना दिया। तदनन्तर जिस प्रकार कामदेव का मित्र वसन्त ऋतु वन का आलिङ्गन करता है, उसी प्रकार युवावस्था ने भी राजा नल के शरीर का आलिङ्गन किया।

हिन्दी व्याख्या- बाल्यावस्था पूरी होते-होते ही राजा नल ने संसार पर विजय प्राप्त करके अपने राज्य को शत्रुरहित बना दिया और उस विजय से अक्षय कोश स्थापित किया अर्थात् उसका कोश धन से परिपूर्ण हो गया। वस्तुतः विश्व-विजय करना ही नल का प्रधान उद्देश्य था। कोश की पूर्ति तो आनुषंगिक उद्देश्य था, क्योंकि उसको दानवीरता और अक्षय कोश का वर्णन तो पहले ही किया जा चुका है। इसके बाद जिस प्रकार बसन्त ऋतु के आगमन से वन का सौन्दर्य अत्युत्तम रूप से प्रस्फुटित हो जाया करता है, उसी प्रकार यौवन के आगमन से नल का शरीर अतिशय सौन्दर्य से पूरित हो उठा।

संस्कृत व्याख्या-शैशवशेषवान् = समाप्त बाल-भावः। अयम् असौ नलः। आदौ = प्रारम्भे। जगज्जयम् = विश्वविजयम्। प्रणीतवान् = कृतवान्। अथ च तदनन्तरम्। यथा = येन प्रकारेण। रतीशस्य = कामदेवस्य । ऋतुः = वसन्त ऋतुः, वनम्। आलिंगति = आलिंगनम् करोति। तथा तेनैव प्रकारेण यौवनम् = तारुण्यम् । अस्य = नलस्य। वपुः शरीरम्। आलिंगत् = आलिंगितवान् ।

अधारि पद्मेषु तदंघ्रिणा घृणा,
क्व तच्छयच्छायलवोऽपि पल्लवे ।
तदास्य दास्येऽपि गतोऽधिकारितां,
न शारदः पार्विकशर्वरीश्वरः ॥ २० ॥

अन्वय-तदंघ्रिणा पद्मेषु घृणा अधारि, पल्लवे तच्छयच्छाया लवः अपि विद्यते क्व ? शारदः पार्विकशर्वरीश्वरः तदास्य दास्ये अपि अधिकारितां न गतः।

शब्दार्थ - तदंघ्रिणा = उसके अर्थात् राजा नल के चरण ने। पद्मेषु कमलों पर, कमलों के प्रति। घृणा = अवज्ञा । अधारि = धारण की। पल्लवे नवीन किसलय में। तच्छयच्छाया लवः अपि = नल के हाथों की शोभा का अंश भी। विद्यते क्व = नहीं है। शारदः = शरद् ऋतु का। पार्विक शर्वरीश्वरः = पूर्णिमा का चन्द्रमा। तदास्य = राजा नल के मुख की। दास्येअपि सेवा में भी, सेवा की भी। अधिकारिताम् = अधिकार को। न गतः = प्राप्त नहीं कर सका।

प्रसंग-सन्दर्भ-श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में कविराज श्रीहर्ष राजा नल के चरण और हाथ की शोभा का वर्णन कर रहे हैं।

हिन्दी अनुवाद-उस राजा नल के चरणों ने कमलों के प्रति घृणा का भाव धारण किया। किसलयों में राजा नल के हाथ की सुन्दरता का अल्प अंश भी नहीं था। शरद् ऋतु की पूर्णिमा का चन्द्रमा राजा नल के मुख की सेवा का अधिकारी नहीं था।

हिन्दी व्याख्या-चरणों की उपमा कमल से, हाथों की पल्लव से और मुख की चन्द्रमा से दी जाती है। शरद् ऋतु का चन्द्रमा सबसे अधिक प्रकाशवान् होता है। कवि श्रीहर्ष का तात्पर्य यह है कि राजा नल के चरण कमल से अधिक सुन्दर, हाथ नव पल्लव से अधिक कोमल और मुख शरद् ऋतु की पूर्णिमा के चन्द्रमा से भी कहीं अधिक आकर्षक था।

संस्कृत व्याख्या- तदंघ्रिणा = राज्ञः नलस्य चरणेन। पद्मेषु कमलेषु। घृणा = जुगुप्सा। पल्लवे = किसलये। तच्छयच्छायलवः अपि = नलस्य करस्य कान्तैः अल्पांशः अपि। क्व अस्तिः नास्तीति भावः। शारदः शरदि ऋतौ भवः, अतिशयेन निर्मलः। पार्विक शर्वरीश्वरः पूर्णिमायाः रजन्याः स्वामी चन्द्रः। तदास्य तस्य नलस्य मुखस्य। दास्ये अपि = सेवा कार्ये अपि। अधिकारिताम् = सेवा योग्यताम्। न गतः = न प्राप्तवान् ।

किमस्य रोम्णां कपटेन कोटिभि
विधिर्न रेखाभिरजीगणद् गुणान् ।
न रोमकूपौघमिषाज्जगत्कृता
कृताश्च किं दूषणशून्यबिन्दवः ॥ २१ ॥

अन्वय- किं विधिः अस्य रोम्णां कपटेन कोटिभिः रेखाभिः (अस्य) गुणान् न अजीगणत् ? किं च जगत्कृता रोमकूपौघमिषाद् (अत्र) दूषणशून्यबिन्दवः न कृताः ?

शब्दार्थ - किम् = क्या। विधि: ब्रह्माजी ने। अस्य इस राजा नल के। रोम्णाम् = रोमों के। कपटेन = कपट से, बहाने से। कोटिभिः करोड़ों। रेखाभिः = रेखाओं द्वारा। गुणान् = गुणों को। अजीगणत् = गिना है। किं च और क्या। जगत्कृता = संसार को बनाने वाले ब्रह्माजी ने। रोमकूपौध ामिषात् = रोमकूपों के बहाने। अत्र = यहाँ। दूषण शून्य विन्दवः = दोषरूपी शून्य की बिन्दियाँ। न कृता = नहीं बनायी है।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में राजा नल के गुणों की अगणितता तथा दोषों की शून्यता का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद-क्या ब्रह्माजी ने इस राजा नल के गुणों को रोमों के बहाने से करोड़ों रेखाओं द्वारा क्या बार-बार नहीं गिना है अर्थात् अवश्य गिना है और क्या संसार की रचना करने वाले ब्रह्मा जी ने राजा नल के करोड़ों रोमकूपों के बहाने दोषों के शून्य के बिन्दु नहीं लगाये हैं ?

हिन्दी व्याख्या-राजा नल के शरीर में करोड़ों रोम और रोमकूप हैं। रोम खड़े हुए पतले बाल होते हैं और रोमकूल छोटे गोल छिद्र होते हैं। प्राचीन काल में गणना करने वाले खड़ी रेखाएँ खींचते जाते थे। बाद में उनको गिन लेते थे। जो भाव या वस्तु नहीं होती थी, उसके लिए शून्य लगाते जाते थे। कवि ने कल्पना की है कि ब्रह्मा जी ने राजा नल के रोमों के रूप में खड़ी रेखाएँ बनाकर इसके गुणों की गणना की है और दोषों के अभाव का संकेत करने के लिए रोमकूपरूपी शून्य बनाये हैं। तात्पर्य यह है कि राजा नल में करोड़ों गुण थे और एक भी दोष नहीं था।

संस्कृत व्याख्या-किम् विधि: किं ब्रह्मा। अस्य राज्ञः नलस्य। रोम्णाम् = लोम्णाम् । कपटेन = व्याजेन। कोटिभिः = कोटि-संख्याभिः। रेखाभिः लेखाभिः। गुणान् शौर्यादीन् । न नहि। अजीगणत् = पुनः पुनः गणनां कृतवान्। जगत्कृता विश्वस्य रचयित्रा ह्यमणा। रोमकूपौधमिषात् लोम लघुछिद्राणां छलेन। दूषणशून्य विन्दवः = दोषाणाम् अभावस्य ज्ञापक चिह्नीभूताः वर्तुल रेखाः। कृताः = विहिताः।

अमुष्य दोर्थ्यमरिदुर्गलुण्ठने
ध्रुवं गृहीतार्गलदीर्घपीनता।

**उरः श्रिया तत्र च गोपुरस्फुरत्
कपाटदुर्धर्षतिरः प्रसारिता ॥ २२ ॥**

अन्वय-अमुष्य दोभ्यां अरिदुर्गलुण्ठने अर्गलदीर्घपीनता उरः श्रियः च तत्र गोपुरस्फुरत्कपाटदुर्धर्षतिरः प्रसारिता गृहीता ध्रुवम् ।

शब्दार्थ - अमुष्य = इस (नल) की। दोर्थ्याम् भुजाओं के द्वारा। अरिदुर्गलुण्ठने = शत्रु के किलों को लूटने में। अर्गलदीर्घपीनता अर्गला की लम्बाई और मोटाई। उरः श्रियः वक्षस्थल की शोभा ने। गृहीता ध्रुवम् = प्राप्त कर लिया।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में राजा नल की भुजाओं की लम्बाई तथा उनके वक्षस्थल की विशालता तथा कठोरता का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद-इस (राजा नल) की दोनों भुजाओं के द्वारा शत्रुओं के किलों को लूटने में मानो अर्गला (किवाड़ों को बन्द करने के बाद एक ओर से दूसरी ओर तक लगाई जाने वाली मोटी लकड़ी) की विशालता तथा स्थूलता को प्राप्त कर लिया गया तथा वक्षः स्थल की शोभा ने मानो नगर के द्वार पर स्फुटित होने वाले किवाड़ की कठोरता और विशालता को प्राप्त कर लिया।

हिन्दी व्याख्या- प्रस्तुत वर्णन से राजा नल का आजानुबाहु एवं विशाल वक्षः स्थल वाला होना ध्वनित हो रहा है, क्योंकि राजा नल की दोनों भुजाओं ने शत्रु के किलों को लूटने, तोड़ने में मानो अर्गला की विशालता तथा स्थूलता को प्राप्त कर लिया था। इतना ही नहीं, राजा नल के वक्षःस्थल की शोभा ने शत्रु-नगर द्वार पर लगे किवाड़ों की शोभा को भी हीन कर दिया था अर्थात् नल की छाती इतनी चौड़ी और कठोर थी जो शत्रु-नगर के द्वारा पर लगे किवाड़ों जैसी प्रतीत हो रही थी।

संस्कृत व्याख्या - अमुष्य = राज्ञः नलस्य, दोर्था = बाहुभ्यां भुजाभ्याम्। वा अरिदुर्गलुण्ठने = शत्रुदुर्गभञ्जने, शत्रुदुर्गमस्थलबलात्कारग्रहणे। अर्गलदीर्घपीनता = अर्गलस्य कपाटविष्कम्भदारोः विशेषस्य। दीर्घ च पीनं च तयोः भावः दीर्घपीनता आयतपीवरत्वमित्यर्थः। उरसः वक्षसः श्रिया लक्ष्म्या च तत्र अरिदुर्गभञ्जने गोपुरेषु पुरद्वारेषु स्फुरतां राजतां कपाटानां दुर्धर्षता कठिनता तिरः प्रसारिता गृहीता

अवलम्बिता। ध्रुवम् = नु किं वेति भावः। राजा नलः दीर्घबाहुः कपाटवक्षाश्च आसीदिति भावः ।

स्वकेलिलेशस्मित निर्जितेन्दुनः
निजांशद्वक्तर्जित पद्मसम्पदः ।
अतद्वयीजित्वर सुन्दरान्तरे।
न तन्मुखस्य प्रतिमा चराचरे ॥ २३ ॥

अन्वय - स्वकेलिलेशस्मितनिर्जितेन्दुनः निजाशक्तर्जित पद्मसम्पदः तन्मुखस्य प्रतिमा अतद्वयोजित्वरसुन्दरान्तरे चराचरे न।

शब्दार्थ - स्वकेलि लेशस्मितनिर्जितेन्दुनः अपने क्रीड़ा-विलास की लेशमात्र मुस्कान से चन्द्रमा को तिरस्कृत करने वाले के। निजांशद्वक्तर्जित पद्मसम्पदः = अपने एक अंग की सुन्दरतापूर्ण देखने की शैली से कमलों के पूर्ण शोभा समूह को तुच्छ सिद्ध कर देने वाले के। तन्मुखस्य उस राजा नल के मुख की। अतद्वयीजित्वर = उन दोनों को पराजित करने में समर्थ सुन्दर पदार्थों के अभाव वाले। सुन्दरान्तरे = सुन्दरों के मध्य। चराचरे चर और अचर विश्व में। प्रतिमा न = समानता नहीं है।

प्रसंग-सन्दर्भ- श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में नल के अनुपम मुख-सौन्दर्य का वर्णन किया जा रहा है।

हिन्दी अनुवाद-अपनी क्रीडा के लेशमात्र मन्दहास (मुस्कराहट) से चन्द्रमा को निन्दित करने वाले तथा अपने अवयव बने हुए नेत्र से कमल की शोभा को जीतने वाले नल के मुख की उपमा उन दोनों (कमल और चन्द्रमा) की शोभा को जीतने वाली किसी दूसरी वस्तु से शून्य संसार में नहीं थी।

हिन्दी व्याख्या-नल के उस मुख ने अपनी क्रीडापूर्वक मन्द मुस्कराहट से चन्द्रमा को जीत लिया था और उसके मुख के केवल एक अवयव नेत्र ने अपनी शोभा से कमल की शोभा को जीत लिया था। इस प्रकार नल के मुख ने चन्द्रमा और कमल दोनों की शोभा को जीत लिया था। अतः उसकी उपमा संसार-भर में कोई नहीं थी, क्योंकि संसार में चन्द्रमा और कमल सबसे सुन्दर पदार्थ हैं। इनसे सुन्दर संसार में दूसरी कोई वस्तु नहीं है जो चन्द्रमा और कमल पर विजय प्राप्त

करने वाली हो। ये दोनों नल के मुख से पराजित हो चुके थे। अतः संसार में नल के मुख के उपमान का अभाव हो गया था। उपमेय की उपेक्षा उपमान के अधिक श्रेष्ठ होने पर ही उपमा दी जाती है। अतः नल का मुख अनुपम था।

संस्कृत व्याख्या - स्वकेलिलेशस्मित निन्दितेन्दुनः= निजक्रीडायाः लेशमात्रेण मन्दहसितेन पराभूतचन्द्रस्य। निजांशद्वक्तर्जित पदम्सम्पदः= निजः स्वकीयः अंशः भागः तद्रूपे ये दृशौ नेत्रे ताभ्यां तर्जिता निर्भत्सिता पद्मानां कमलानां सम्पत् सौभाग्यं समूहो वा येन तादृशस्य तन्मुखस्य =तदाननस्य। अतद्वयी जित्वर सुन्दरान्तरे = सुन्दरवस्तुषु तौ जेतुम् असमर्थे। चराचरे = स्थावर जंगमात्मके संसारे। प्रतिमा = समानता कारकः । नास्ति = न विद्यते।

सरोरुहं तस्य दृशैव तर्जितं

जिताः स्मितेनैव विधोरपि श्रियः ।

कुतः परं भव्यमहो महीयसी

तदाननस्योपमिती दरिद्रता ॥ २४॥

अन्वय-तस्य दृशैवं सरोरुहं निर्जितम्, स्मितेनैव विधीः श्रियः अपि जिताः। परं भव्यं कुतः ? अहो तदाननस्य उपमितौ महीयसी दरिद्रता।

शब्दार्थ - तस्य = उसके, नल के। दृशैव = नेत्र के द्वारा ही। निर्जितम् = जीते हुए, पराजित। सरोरुहम् = कमल को। स्मितेनैव = मुस्कुराहट से ही। विधोः चन्द्रमा की। श्रियः लक्ष्मी। जिताः = जीत ली गई है। परम् = इनसे बढ़कर। कुतः = कहाँ है। अहो = आश्चर्य है। तदाननस्य = उसके मुख की। उपमितौ = उपमा में। महीयसी = बड़ी। दरिद्रता = कमी।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में भी मुख कमल की शोभा वर्णित है।

हिन्दी अनुवाद-उस नल के नेत्रों के द्वारा ही कमल जीत लिया गया है और उसके मन्दहास्य के द्वारा ही चन्द्रमा की शोभा भी जीत ली गयी है। इनसे अधिक और सुन्दर वस्तु कहाँ है? आश्चर्य की बात है कि नल के मुख की उपमा का अत्यधिक अभाव है।

हिन्दी व्याख्या- राजा नल ने अपने नेत्रों से कमल को जीत लिया है अर्थात् नेत्र कमल से अधिक सुन्दर हैं। अपनी मुस्कराहट से चन्द्रमा की शोभा को जीत लिया है अर्थात् मुस्कराहट से जो दन्तांशु निकलती हैं, वे चन्द्रमा की किरणों से अधिक सुन्दर हैं। अतः चन्द्रमा भी उनके सामने तुच्छ है। इस प्रकार संसार की दोनों सुन्दर वस्तुएँ नल के मुख द्वारा जीत ली गयी हैं। अतः संसार में ऐसी कोई सुन्दर वस्तु नहीं है, जिससे नल के मुख की उपमा दी जा सके। यह कितने आश्चर्य की बात है कि ब्रह्मा की इतनी बड़ी सृष्टि में नल के मुख के उपमान का अभाव हो गया है।

संस्कृत व्याख्या- तस्य = नलमुखस्य। दृशैव नेत्रेण एव। सरोरुहम् = कमलम्। तर्जितम् = निर्भत्सितम्। विधोः = चन्द्रस्य। श्रियः शोभाः। स्मितेन मन्दहास्येन। जिताः विजिताः। आभ्याम् = सरोरुहविधुभ्याम्। परम् = अन्यत्। भव्यम् = सुन्दरम्। कुतः कस्मात् उपलभ्येतेति शेषः 'अहो आश्चर्यम्। तदाननस्य = नलमुखस्य। उपमितौ = तुलनायाम्। महीयसी अतिमहती। दरिद्रता न्यूनता। सर्वथा निरुपमं नलमुखमिति भावः।

स्वबालभारस्य तदुन्तमाङ्गजैः

समं चमर्येव तुलाभिलाषिणः ।

अनागसे शंसति बालचापलं

पुनः पुनः पुच्छविलोलनच्छलात् ॥ २५ ॥

अन्वय- चमरी स्वयमेव तदुन्तमाङ्गजैः तुलाभिलाषिणः स्वबालभारस्य अनागसे पुनः पुनः पुच्छविलोलनच्छलात् बालचापलं शंसति।

शब्दार्थ - चमरी = चमरी नामक मृगी विशेष। स्वयमेव = अपने आप ही। तदुन्तमाङ्गजैः = उस (नल) के बालों के साथ। तुलाभिलाषिणः = तुलना की अभिलाषा करने वाले। स्वबालभारस्य = अपने बालों के समूह की। अनागसे = अपराधविहीनता बतलाने के लिए। पुच्छविलोलनच्छलात् = पूँछ हिलाने के वहाने से। बालचापलम् = बालों की चंचलता। शंसति = प्रकट करती है।

प्रसंग-सन्दर्भ-श्रीहर्ष प्रणीत नैषधमहाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में चमरी के केशों से भी अधिक सुन्दर तथा कोमल राजा नल के बालों का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद-चमरी नामक मृगी विशेष अपने आप ही उस राजा नल के केशों के साथ समानता करने की इच्छा रखने वाले अपने बालों के समूह की अपराधविहीनता बतलाने के लिए बार-बार पूँछ हिलाने के बहाने से बालों की सुलभ चंचलता को ही कहती है।

हिन्दी व्याख्या-चमरी नामक मृगी विशेष के बाल अर्थात् केश उस राजा नल के केशों के साथ समानता करना चाहते थे, किन्तु तुच्छ होकर श्रेष्ठ नल-शिरस्थ बाल के साथ समता करना उनका बड़ा अपराध है। इसलिए मृगी अपनी पूँछ को हिलाकर राजा नल से मानो कह रही है कि उनके बालों ने नल के केशों से समानता करने की इच्छा करके जो धृष्टता की है, वह उनकी शिशु-सुलभ चपलता ही है, उसे क्षमा कर दिया जाय। बाल सुलभ चपलता करने पर उसका अपराध नहीं मानना चाहिए। लोक में भी बच्चे के अपराध करने पर उसकी माता बच्चे की चपलता कहकर उसके अपराध को क्षमा करने के लिए प्रार्थना करती है। नल के मस्तक के केश चमरी नामक मृगी विशेष के केश-समूह से भी सुन्दर एवं कोमल थे। उनकी समानता में चमरी मृग के केश आते ही न थे।

संस्कृत व्याख्या - चमरी मृगी विशेषः, स्वयमेव। तदुत्तमाङ्गजैः तस्य नलस्य उत्तमाङ्गजैः केशैः शिरोरुहैः वा तुलाभिलाषिणः साम्यकामिनः। स्वबालभारस्य स्वस्य आत्मनः बालाः केशाः तेषां भारः समूहः तस्य । अनागसे = अनपराधाय अपराधाभवाय भूयो भूयः। पुच्छविलोलनच्छलात् = पुच्छस्य लाङ्गलस्य विलोलनं विचालनम् एव छलं = व्याजः तस्मात्। बालचावलं रोमचाञ्चल्यम् अथ च शिशुचापल्यं। शंसति = कथयति। बालचापल्यं सोढव्यमिति धियेति भावः।

महीभृतस्तस्य च मन्मथश्रिया,
निजस्य चित्तस्य च तं प्रतीच्छया।
द्विधा नृपे तत्र जगत्त्रयीभुवां,
नतध्रुवां मन्मथ विभ्रमोऽभवत् ॥ २६ ॥

अन्वय-तस्य महीभूतः मन्मथश्रिया तं प्रति निजस्य चित्तस्य इच्छया च तत्र नृपे जगत्त्रयीभुवां नतध्रुवां द्विध् ॥ मन्मथविभ्रमः अभवत् ।

शब्दार्थ - महीभूतः = राजा नल की। मन्मथश्रिया कामदेव के समान कान्ति के कारण। तं प्रति = उसके विषय में। निजस्य चित्तस्य अपने चित्त की। इच्छया अभिलाषा के कारण। तत्र नृपे उस राजा नल के विषय में। जगत्त्रयीभुवाम् = तीनों लोकों में उत्पन्न होने वाली। नतध्रुवां = सुन्दरियों को। द्विधा = दो प्रकार का। मन्मथविभ्रमः = कामविभ्रम। अभवत् = हुआ।

प्रसंग-सन्दर्भ-श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में कामदेव के समान सुन्दर राजा नल को सुन्दरियों द्वारा चाहे जाने का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद-उस राजा नल की कामदेव के समान कान्ति के कारण उस नल के विषय में अपने चित्त की अभिलाषा होने के कारण तीनों लोकों में उत्पन्न होने वाली सुन्दरियों को दो प्रकार का विभ्रम (विशिष्ट भ्रान्ति, पक्षान्तर-विलास) हुआ।

हिन्दी व्याख्या-राजा नल कामदेव के समान सुन्दर थे। इसलिए तीनों लोकों में निवास करने वाली स्त्रियाँ राजा नल के प्रति आसक्ति रखती थीं। उनकी सुन्दरता देखकर उन स्त्रियों में दो प्रकार का विभ्रम हुआ- (१) यह कामदेव है, ऐसा विशिष्ट भ्रम हुआ तथा (२) उनके प्रति कामाभिलाषा होने से कटाक्षादिरूप विलास हुआ। यहाँ यह आशंका होती है कि तीनों लोकों में पतिव्रता स्त्रियाँ नहीं थीं, क्योंकि पतिव्रताओं के हृदयों में कामाभिलाषा का उत्पन्न होना संभव नहीं है। अतः यह अर्थ कर देना समीचीन जान पड़ता है कि लोकत्रयोत्पन्न सुन्दरियों को कामदेवकान्ति से ही उस राजा नल में कामदेव का विशिष्ट भ्रम हुआ तथा पतिव्रताओं के अतिरिक्त स्त्रियों के चित्त में नल के प्रति कामाभिलाषा होने से विलास हुआ। ऐसा अर्थ कर देने से दोष का निराकरण करना चाहिए।

संस्कृत व्याख्या-तस्य प्रसिद्धस्य। महीभूतः राज्ञः नलस्य। मन्मथश्रिया मन्मथस्य कामस्य सदृशा श्रीः कान्तिः तया। तम् = नलम् प्रति। निजस्य चित्तस्य स्वस्य मनसः इच्छया च = स्पृहया च। तत्र नृपे = तस्मिन् राजनि नले। जगत्त्रयीभुवाम् = त्रिलोक समुत्पन्नानां। नतध्रुवां सुन्दरीणाम् कामिनीनां द्विध =

द्विप्रकारेण। मन्मथविभ्रमः = अयं ममथ इति विशिष्टा भ्रान्ति = कामावेशश्च अभवत् जातः।

**निमीलनभ्रंशजुषादृशा भृशं,
निपीय तं यस्त्रिदशीभीरर्जितः ।
अमूस्तमभ्यासभरं विवृण्वते,
निमेषनिः स्वैरधुनापि लोचनैः ॥ २७॥**

अन्वय - त्रिदशीभिः निमीलनभ्रंशजुषा दृशा तं भृशं निपीय यः अर्जितः, तम् अभ्यासभरम् अमूः अधुनापि निमेषनिःस्वैः लोचनैः विवृण्वते ।

शब्दार्थ - त्रिदशीभिः = देवांगनाओं ने। निमीलनम् निमेष। भ्रंश जुषा= निमीलनरहित से। दृशा = दृष्टि से, आँख से। तम् उस नल को। भृशम् अधिक मात्रा में। निपीय = पीकर, देखकर। अभ्यासभरः अर्जितः = पर्याप्त अभ्यास कर लिया था। अमूः ये देवांगनाएँ। निमेष निःस्वै लोचनैः = निर्निमेष नयनों से। अधुना अपि= इस समय भी। अभ्यासभरम्= उस अधिक अभ्यास को। विवृण्वते = प्रकाशित करती है।

प्रसंग-सन्दर्भ-श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत इस श्लोक में राजा नल के रूपलावण्य से आकृष्ट देवकामिनियों का काम विभ्रम प्रस्तुत किया जा रहा है।

हिन्दी अनुवाद-देवताओं की स्त्रियों ने निमेष-रहित दृष्टि से उस (नल) को अच्छी तरह से तृष्णा के साथ देखकर जिस अतिशय अभ्यास को प्राप्त किया था, वे देवाङ्गनाएँ उस अभ्यासाधिक्य को आज भी (अपने) निमेष रहित नेत्रों से प्रकट करती हैं।

हिन्दी व्याख्या-देव-योनि में निमेष का अभाव माना जाता है। निमेष नेत्रों के पलकों के गिरने और उठने को कहते हैं। देवाङ्गनाओं में निर्निमेषता स्वभावसिद्ध है। कवि ने उसको प्रकारान्तर से कहा है। देवाङ्गनाएँ अतिप्रिय नल को निमेष-रहित दृष्टि से अतिकाल तक देखती रही हैं। इस कारण निर्निमेषता का उनका जो अभ्यास था, उस अभ्यासाधिक्य को ही अब भी वे अपने निमेष-रहित नेत्रों से प्रकट कर रही हैं। लोक में भी किसी अतिप्रिय वस्तु को लोग बिना पलक

गिराये अर्थात् निर्निमेष दृष्टि से देखते हैं और किसी कार्य का अभि एक अभ्यास करने के बाद वह स्वभाव बन जाता है।

संस्कृत व्याख्या-त्रिदशीभिः = देवांगनाभिः। निमीलनभ्रंशजुषा = पलसंकोचरहितेन नयनेन। तम् = राजानं नलम्। भृशम् अतिमात्रम्। निपीय = सतृष्णं दृष्ट्वा। यः अभ्यासभरः अधिकाभ्यासः। अर्जितः = प्राप्तः। तम् अभ्यासभरम् = अतिशय नेत्र निमीलनहीनताभ्यासम्। अम् = त्रिदशयः देव्यः। अधुनापि = इदानीमपि। निमेष निः स्वैः निमीलनरहितैः। स्वैः आत्मीयैः। लोचनैः नेत्रैः। प्रकटयन्ति विवृण्वते = प्रदर्शयन्ति अभ्यासातिशयम्।

अदस्तदाकर्णि फलाद्यजीवितं,
दृश्योर्द्वयं नस्तदवीक्षि चाफलम्।
इति स्म चक्षुःश्रवसां प्रिया नले,
स्तुवन्ति निन्दन्ति हृदा तदात्मनः ॥ २८ ॥

अन्वय-चक्षुःश्रवसां प्रियाः तदा आत्मनः हृदा नले अदः नः दृश्योर्द्वयं तदाकर्णि फलाद्य जीवितं च तदवीक्षि अफलम् इति स्तुवन्ति निन्दन्ति।

शब्दार्थ-चक्षुः श्रवसाम् पातालवासी सर्पों की। प्रियाः पत्नियाँ, नागिनँ। अदः = यह। तद् आकर्णि = नल के सौन्दर्य को सुन चुकीं। नः हमारा। दृश्योः द्वयम् = आँखों का जोड़ा। फलाद्य जीवितम् = सफल जीवन वाला है। तदवीक्षि उस नल को न देखकर। अफलम् निष्फल है। इति इस प्रकार। तदा = उस समय। नले नल के विषय में। आत्मनः अपने। हृदः मन को। स्तुवन्ति = प्रशंसा करती हैं। निन्दन्तिस्म = निन्दा करती थीं।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में नागाङ्गानाओं के द्वारा नल की सौन्दर्य-प्रशंसा का वर्णन किया जा रहा है।

हिन्दी अनुवाद - नागाङ्गनाएँ उस समय अपने हृदय से नल के विषय में "हम लोगों के दोनों नेत्र उस नल के चरित आदि को सुनकर सफल जीवन वाले हो गये, लेकिन उसको देखा नहीं, इसलिए असफल है।" इस प्रकार प्रशंसा और निन्दा करती थीं॥

हिन्दी व्याख्या-पाताल लोक में रहने वाली नागपत्नियाँ मर्त्यलोकवासी नल के गुणों का श्रवण तो करती हैं, लेकिन उनका दर्शन नहीं कर पाती हैं। सर्पों के कान नहीं होते हैं। ये आँखों से ही देखते हैं और सुनते भी हैं। अतः नल के चरित्र को सुनकर नागपत्नियाँ अपने नेत्रों को सफल मानती हैं, परन्तु आँखों से देख न सकने के कारण उनको निष्फल भी मानती हैं। इस प्रकार वे अपने नेत्रों को धन्य समझती हैं और उनकी प्रशंसा करती हैं लेकिन स्वयं पाताल-लोक में निवास करने के कारण राजा नल का साक्षात् दर्शन नहीं कर पातीं, इसलिए नेत्रों को अधन्य मानती हैं तथा उनकी निन्दा भी करती हैं।”

संस्कृत व्याख्या-चक्षुः श्रवसाम् = नागानाम् । प्रियाः स्त्रियः, सर्पिण्यः। अदः इदम् नेत्रद्वयम्। तदाकर्णि = शृणोति। फलाद्यजीवितम् = सफल जीवनम् वर्तते। असफलम् = फलरहितम्। इति = इति मत्वा । तदा = तस्मिन् काले। नले = नैषध विषये। आत्मनः स्वकीयस्य। हृदः = हृदयम्। स्तुवन्ति = प्रशंसन्ति । निन्दन्ति = निन्दा कुर्वन्ति।

विलोकयन्तीभिरजस्त्रभावना-

बलादमुं नेत्रनिमीलनेष्वपि।

अलम्भिमर्त्याभिरमुष्य दर्शने

न विघ्नलेशोऽपि निमेषनिर्मितः ॥ २९ ॥

अन्वय-अजस्त्रभावना बलात् नेत्रनिमीलनेषु अपि अमुम् विलोकयन्तीभिः मर्त्याभिः अमुष्य दर्शन निमेषनिर्मितः विघ्नलेशः अपि न अलम्भि।

शब्दार्थ - अजस्त्र = लगातार। भावना बलात् = चिन्तनवृत्ति के बल से। नेत्रनिमीलनेषु = आँखों को बन्द करने के क्षणों में। अपि भी। अमुष्य इस राजा नल को। विलोकयन्तीभिः देखती हुई। दर्शने = देखने में। निमेष निर्मितः पलक झपकाने से उत्पन्न। विघ्नलेशः व्यवधान का अंश। मर्त्याभिः = मानवी स्त्रियों ने। अपि भी। न नहीं। अलम्भि = डाला।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से संगृहीत प्रस्तुत श्लोक में कवि श्रीहर्ष मानवियों द्वारा राजा नल के चिन्तन और दर्शन का वर्णन कर रहे हैं।

हिन्दी अनुवाद-निरन्तर ध्यान-भावना के प्रभाव में आँख बन्द करके अर्थात् पलक झपकाने में भी इस राजा नल को देखती हुई मानवी स्त्रियों ने इस राजा नल को देखने में पलक झपकाने से निर्मित विघ्न का अल्प अंश भी प्राप्त नहीं किया।

हिन्दी व्याख्या-मानवों और मानवियों का स्वभाव पलक झपकाने का है। इनके पलक बिना प्रयत्न के अपने आप झपकते रहते हैं। मानवियाँ लगातार राजा नल का ध्यान करती रहती थीं। इस कारण उनके मन में राजा नल का चित्र स्थित रहता था। इससे राजा नल को देखने वाली मानवियों के लिए पलक झपकाने अथवा आँखें बन्द करने से किसी प्रकार की बाधा नहीं आती थी। आँखें बन्द करते समय मानवियाँ अपने मन में स्थित राज्य नल का दर्शन करती थीं और आँखें खुली होने पर सामने स्थित नल को देखती थीं। कहने का अभिप्राय यह है कि मानवी-स्त्रियाँ प्रत्यक्ष रूप से देखे जाने योग्य नल का दर्शन तो अपनी दृष्टि से करती ही थीं तथा पलकों के मारने के समय बुद्धिस्थ रूप का दर्शन किया करती थीं।

संस्कृत व्याख्या- अजस्त्र भावनाबलात् = निरन्तरचिन्तनप्रभावात् = नेत्रनिमीलनेषु = लोचनसंकोचेषुक्षणेषु । अमुम् = राजानं नलम् । विलोकयन्तीभिः पश्यन्तीभिः । मर्त्याभिः मानुषीभिः नारीभिः । अमुष्य = अस्य राज्ञः नलस्य । दर्शन = विलोकने । निनिमेषनिर्मितः नयन निमीलन क्षणोत्पुनः । विघ्नलेशः = प्रत्यूहस्याल्पभागः । न = नहि । अलम्भि प्राप्तः ।

न का निशि स्वप्नगतं ददर्श तं,
जगाद गोत्रस्खलिते च का न तम्।
तदात्मताध्यातधवा रते च का,
चकार वा न स्वमनोभवोद्भवम् ॥ ३० ॥

अन्वय-का निशि स्वप्नगतं तं न ददर्श। का च गोत्रस्खलिते तं न जगाद। रते तदात्मताध्यातधवा च का स्वमनोभवोद्भवम् न चकार।

शब्दार्थ- का = ऐसी कौन सी स्त्री थी। निशि= रात में। स्वप्नगतम् = स्वप्न में पहुँच हुए को। न ददर्श = नहीं देखा। का च= और किसने। गोत्रस्खलिते

=पति के नाम के स्थान पर। तम् = राजा नल को, राजा नल के नाम को। न जगाद = नहीं कहा। रते = संभोग-काल में, सुरत के समय। तदात्मताध्यातधवा = अपने पति में राजा नल की कल्पना करने वाली। स्वमनोभवोद्भवम् = अपने काम विकार की उत्पत्ति। न चकार = नहीं की।

प्रसंग-सन्दर्भ-श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में कवि राजा नल के अतिशय सौन्दर्य को रेखांकित कर रहे हैं क्योंकि सभी सुन्दर स्त्रियों ने नल की पति के रूप में कामना की है।

हिन्दी अनुवाद-ऐसी कौन-सी स्त्री थी, जिसने राजा नल को स्वप्न में नहीं देखा। किस स्त्री ने भ्रम से अपने पति के नाम के स्थान पर नल का नाम नहीं लिया। किस स्त्री ने संभोग काल में अपने पति में राजा नल का ध्यान करके अपने मन में उत्पन्न काम-भावना को प्रकट नहीं किया अर्थात् सभी ने किया।

हिन्दी व्याख्या-राजा नल इतना अधिक सुन्दर था कि सभी स्त्रियाँ उसे स्वप्न में देखती थीं। सभी स्त्रियाँ प्रमादवश अपने पति के स्थान पर राजा नल के नाम का उच्चारण करती थीं। सभी स्त्रियाँ संभोग-काल में अपने पति में नल की कल्पना कर लेती थीं अर्थात् सभी प्रगल्भा अथवा प्रौढ़ नायिकाओं ने अपने पति को ही नल के रूप में समझते हुए उनके साथ रमण किया। कहने का तात्पर्य यह है कि पतिव्रता स्त्रियों को छोड़कर सभी मुग्ध, मध्या तथा प्रगल्भा स्त्रियों का राजा नल के प्रति अनन्य प्रेम था।

संस्कृत व्याख्या- का = कतमा नारी। निशि = रात्रौ। स्वप्नगतम् = स्वप्ने प्राप्तम्। तम् = राजानं नलम् । न ददर्श = न अवलोकितवती सर्वाभिः एव दृष्टः इत्यर्थः। गोत्रं स्खलिते नाम्नो विपरीत भावे। तम् = नलम् । न जगाद = न कथितवती। रते संभोग-काले सुरतव्यापारे। तदात्मताध्यातधवा = स्वपतौ नलस्य कल्पनां कृत्वा । स्वमनाद् भवोद्भवम् = स्वकीयायाः काम वासनायाः उत्पत्तिम्। न चकार न कृतवती। अपितु सर्वाभिः एव तथा चकार इत्यर्थः ।

श्रियास्य योग्याहमिति स्वमीक्षितुं,

करे तमालोक्य सुरूपया धृतः ।

विहाय भैमीमपदर्पया कया,

न दर्पणः श्वासमलीमसः कृत ॥ ३१॥

अन्वय-तम् आलोक्य श्रिया अं अस्य योग्या इति स्वं ईक्षितुं करे धृतः दर्पणः भैमीं विहाय कया सुरूपया अपदर्पया श्वासमलीमसः न कृतः।

शब्दार्थ-आलोक्य = देखकर । श्रिया=सौन्दर्य से। योग्या ईक्षितुम् = देखने के लिए। करे हाथ में। धृतः धारण किया गया। भैमीम् अनुरूप। स्वम् = अपने को। भीम की पुत्री दमयन्ती को। विहाय = छोड़कर। कया सुरूपया किस सुन्दर स्त्री के द्वारा। अपदर्पया = अभिमानरहित होकर। श्वासमलीमसः = श्वासवायु से मलिन। न कृतः = नहीं किया गया।

प्रसंग-सन्दर्भ-श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में नल को पति रूप में वरण करने योग्य दमयन्ती की क्षमता का उल्लेख है।

हिन्दी अनुवाद-उस राजा नल को (चित्र में) देखकर सौन्दर्य से मैं (इस नल के) योग्य हूँ (ऐसा मन में विचार कर) अपने आपको देखने के लिए हाथ में धारण किये गये दर्पण को भीम की पुत्री दमयन्ती को छोड़कर सौन्दर्य अभिमान रहित किस सुन्दर स्त्री के द्वारा श्वास वायु से मलिन नहीं कर दिया गया ? अर्थात् सभी ने कर दिया।

हिन्दी व्याख्या-यहाँ कवि अन्य सभी स्त्रियों को नल के अयोग्य बतलाते हुए दमयन्ती का प्रसंग उपस्थित करते हैं। अपने सौन्दर्य के अभिमान में चूर सुन्दरियों ने राजा नल को चित्र में देखकर "उनके योग्य मैं भी सुन्दर हूँ" ऐसा सोचकर अर्थात् निश्चय करके अपने हाथ में दर्पण ग्रहण किया, किन्तु दर्पण में अपने सौन्दर्य को नल के सौन्दर्य से तूच्छ मानकर उनका पूर्वाभिमान नष्ट हो गया तथा उन्होंने मान लिया कि दमयन्ती के अतिरिक्त उसे पाने के कोई योग्य नहीं है। इस निराशा से दुःखपूर्ण गहरी श्वास छोड़ती थीं। जिससे दर्पण भी मलिन हो जाता था। केवल दमयन्ती ही ऐसी थी जो अपने आपको नल के अनुरूप पाती थी।

संस्कृत व्याख्या - तम् नलम्। आलोक्य दृष्ट्वा। श्रिया सौन्दर्येण। अहमस्य नलस्य। योग्या = अनुरूपा। इति स्वम् = आत्मानम्, स्वावयवम् इत्यर्थः। ईक्षितुं दृष्टुं । करे धृतः गृहीतः। दर्पणः भैमी = भीमनन्दिनी, दमयन्तीमित्यर्थः। विहाय विनेत्यर्थः। कया सुरूपया = सुन्दर्या शोभनरूपवती अहमित्यभिमानवत्या नार्या।

अपदर्पया = दर्पशून्यया सत्या। श्वासेन = दुःखविश्वासेन। मलीमसः मलदूषितः, मलिनः न कृतः = न विहितः = अपितु सर्वथा एव कृतः इत्यर्थः। सौन्दर्यगर्विताः सर्वाः एव भैमीव्यतिरिक्ताः = दमयन्ती विरहिताः कामिन्य। तम् नलमवलोक्य = अहमेवास्य योग्य इति अभिमानात् करधृतदर्पणे आत्मानं विलोक्य नाहमस्य योग्या-इति निश्चयेन दुःखिताः सत्यः निःश्वासवातेन तं दर्पणं मलिनयन्ति स्म इत्याभिप्रायः।

यथोहयमानः खलु भोगभोजिना,
प्रसह्य वैरोचनिजस्य पत्तनम्।
विदर्भजाया मदनस्तथा मनो-
नलावरुद्धं वयसैव वेशितः ॥ ३२ ॥

अन्वय-यथा भोगभोजिना वयसा एव उहयमानः मदनः वैरोचनिजस्य अनलावरुद्धं पत्तनं प्रसह्य वेशितः खलु तथा (भोगभोजिना वयसा एव उहयमानः मदनः) विदर्भजायाः (नलावरुद्धम्) मनः (प्रसह्य वेशितः)।

शब्दार्थ-यथा = जिस प्रकार। खलु निश्चित रूप से। भोगभोजिना = सर्पभक्षी, सुख भोगने वाले। वयसा = गरुड़ के द्वारा, युवावस्था के द्वारा। उद्यमानः ले जाया जाता हुआ। मदनः कामदेव । वैरोचनिजस्य = बलि के पुत्र बाण के। अनलावरुद्धम् अग्नि से घिरे हुए। पत्तनम् नगर में। प्रसह्य = बलपूर्वक । वेशितः = प्रवेश कराया गया।

प्रसंग - श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में दमयन्ती के मन में राजा नल के प्रति स्नेह को उत्पन्न कराने का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद-जिस प्रकार निश्चित रूप से सर्प के शरीर को खाने वाले पक्षी गरुड़ के द्वारा ले जाया जाता हुआ प्रद्युम्न बलपूर्वक विरोचन-पौत्र अर्थात् बलिपुत्र वाणासुर के अग्नि से व्याप्त (शोणितपुर नाम के) नगर में प्रविष्ट हुआ था, उसी प्रकार सुख का अनुभव कराने वाली युवा अवस्था ने ही सखीजनों से तर्कित कामदेव को नल की चिन्ता करने वाली दमयन्ती के मन में बलपूर्वक प्रवेश कराया।

हिन्दी व्याख्या- प्रस्तुत श्लोक में कवि नल में दमयन्ती के मनौभिलाष का वर्णन कर रहे हैं। जिस प्रकार से सर्प के शरीर को खाने वाले पक्षी (प्रद्युम्न ने) गरुड़ की सहायता से अग्नि से घिरी विरोचन-पौत्र अर्थात् बलिपुत्र वाणासुर की नगरी शोणितपुर में प्रवेश किया, उसी प्रकार भोग विलासकारी यौवन अवस्था से प्राप्त कामदेव-कथा प्रसंगों में तथा वन्दीचारणादि के मुख से सुने गये एवं चित्रादि में देखे गये नल से आक्रान्त अर्थात् नल के प्रति आकृष्ट हुई दमयन्ती के मन में नल प्रविष्ट हुआ।

संस्कृत व्याख्या- मदनः कामः प्रद्युम्न इति यावत् भोगभोजिना सर्पशरीराशिना वयसा पक्षिणा गरुडेनेत्यर्थः। उह्यमानः = प्राप्यमाणः, अनलावरुद्धम् अग्निपरिवृतं वैरोचनिजस्य = बाणाऽसुरस्य। पत्तनं = नगरं, शोणितपुरमिति भावः। प्रसह्य सहसा यथा वेशितः प्रवेशित एव। खलु निश्चयेन तेन प्रकारेण, भोगभोजिना = भोगं सुखं। भुङ्क्ते। भोजयति वा तच्छीलेन, सुखभोगासक्तेन इत्यर्थः। वयसा एव यौवनेन एव। उह्यमानः परैः तर्क्यमाणः। मदनः कामः नलाऽवरुद्धं, नैषधसम्बद्धं। विदर्भजया वैदर्भ्या, दमयन्त्या इति भावः। मनः = चित्तं। प्रसह्य = बलेन। वेशितः प्रवेशितः। खलु निश्चयेन, नलस्य गुणगण श्रवणोत्तरं दमयन्त्याः मनसि यौवनेनैव नलविषयकः कामावेशः प्रापितः इति भावः।

नृपेऽनुरूपे निजरूपसम्पदां दिदेश,
तस्मिन् बहुशः श्रुतिं गते ।
विशिष्य सा भीमनरेन्द्रनन्दना,
मनोभवाज्ञैकवशंवदं मनः ॥ ३३ ॥

अन्वय-सा भीमनरेन्द्रनन्दना निजरूपसम्पदां अनुरूपे बहुशः श्रुतिं गते तस्मिन् नृपे मनोभावैकवशंवदं मनः विशिष्य दिदेश।

शब्दार्थ - भीमनरेन्द्रनन्दना भीम राजा की पुत्री। निजरूपसम्पदाम् अपने सौन्दर्य के। अनुरूपे = योग्य । बहुशः = बहुत बार। श्रुतिं श्रवण को। गते = प्राप्त करने पर। तस्मिन् नृपे उस राजा नल के प्रति। मनोभवाज्ञैकवशंवदीम् = एक मात्र कामदेव की आज्ञा के वशीभूत। विशिष्य अतिशय रूप से। दिदेश = लगा दिया।

प्रसंग-सन्दर्भ-श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में राजा भीम को पुत्री दमयन्ती के नल में आसक्त मन का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद-उस राजा भीम की पुत्री दमयन्ती ने अपने सौन्दर्य के योग्य (चारण आदि) अनेक व्यक्तियों से सुने गये उस राजा नल के प्रति एकमात्र कामदेव की आज्ञा के वशीभूत मन को अतिशय रूप से लगा दिया।

हिन्दी व्याख्या-राजाधिराज भीम की पुत्री दमयन्ती ने चारण बन्दी आदि जनों के मुखों से अनेक बार राजा नल के गुणों तथा प्रशंसा आदि को सुना था तथा अपनी रूप सम्पत्ति के योग्य उस राजा नल में मन को **विशेष** रूप से कामाज्ञा का वंशवद बना दिया अर्थात् जब दमयन्ती ने यह समझ लिया कि राजा नल सौन्दर्य आदि की दृष्टि से उसके पति के रूप में स्वीकार करने योग्य हैं, तब दमयन्ती का मन उक्त रूप वाले नल में काम के वशीभूत हो गया।

संस्कृत व्याख्या - भीमनरेन्द्रनन्दना = भीमभूपतनया दमयन्तीत्यर्थः। तिजरूपसम्पदां = स्वसौन्दर्य सम्पन्तीनाम् अनुरूपे = योग्ये । तस्मिन् = पूर्वोक्ते नृपे राजनि नले इत्यर्थः। बहुशः अनेक बारं। श्रुतिम् = श्रवणगोचरं गते = प्राप्ते सति। विशिष्य = अतिशयेन मनोभवाशैकवशंवदं अर्पितवती, नलं प्रति चित्तं निदधविति भावः । कामदेवादेशैकाधीनं। मनः चित्तं। दिदेश =

उपासनामेत्य पितुः स्म रज्यते,
दिने दिने सावसरेषु वन्दिनाम् ।
पठत्सु तेषु प्रतिभूपतीनलं,
विनिद्रोमाजनि शृण्वती नलम्॥ ३४॥

अन्वय-सा दिन-दिने वन्दिनां अवसरेषु पितुः उपासनां एत्य तेषु भूपतीन् प्रति पठत्सु नलं शृण्वती अलं रज्यते स्म, विनिद्रोमा अजनि।

शब्दार्थ-दिने-दिन = प्रतिदिन। वन्दिनाम् वन्दियों के। अवसरेषु अवसरों पर। पितुः उपासनां = पिता की सेवा में। एत्य आकर। भूपतीन् प्रति उन राजाओं के प्रति। पठत्सु = गुणगान करने पर। शृण्वती = सुनती हुई। अलम् पूर्णरूप से।

रज्यते स्म = प्रसन्न होती थी। विनिद्रोमा = रोमाञ्चयुक्त । अजनि = हो जाती थी।

प्रसंग-सन्दर्भ- श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में राजा नल के गुणों को सुनकर दमयन्ती के श्रवणानुराग सात्विक भाव का चित्रण किया गया है।

हिन्दी अनुवाद-वह दमयन्ती पिता की सेवा में उपस्थित होकर, प्रतिदिन बन्दियों के (नृपस्तुति के) अवसरों में अनुरक्त होती थीं। जब वे राजाओं का स्तुतिपाठ करते थे, उस समय नल के गुणों को सुनती हुई पूर्णरूप से प्रसन्न होती थी तथा रोमाञ्चयुक्त हो जाती थी।

हिन्दी व्याख्या-अब चार श्लोकों में श्रीहर्ष दमयन्ती के नल-विषयक श्रवणानुराग नामक सात्विक भाव का वर्णन करते हैं। जब चारण-भाट आदि राजा भीम के समीप आकर उपस्थित होते थे, तब वह दमयन्ती भी पिता के समीप आकर बैठ जाया करती थी। चारणादिबन्दिजनों द्वारा राजाओं के वर्णन किये जाने के अवसर पर बीच-बीच में नल सम्बन्धी प्रशंसापरक बातों को ध्यान से सुना करती थी। तब वह मन ही मन अत्यन्त, हर्षित और रोमाञ्चयुक्त हो जाया करती थी।

संस्कृत व्याख्या - सा = दमयन्ती। दिने दिने प्रतिदिनम्। वन्दिनोम् = स्तुतिपाठकानाम्। अववसरेषु = समयेषु। पितुः = जनकस्य भीमस्य। उपासनाम् = सेवाम्। एत्य प्राप्य। तेषु बन्दिषु। भूपतीन् प्रति भूपतीनुद्दिश्य। पठत्सु = वदत्सु। नलम् = निषधपतिम्। शृण्वती = आकर्णयन्ती। अलं सृज्यते रज्यते स्म रक्ताभूत् इत्यर्थः। अतएव विनिद्रोमा रोमाच्चिता, अजनि जाता, तस्याः रोमाञ्चतं नलगुणभ्रवणजन्यः रागः व्यक्तः अभूदिति भावः।

कथाप्रसङ्गेषु मिथः सखीमुखात्,

तृणेऽपि तन्व्या नलनामनि श्रुते ।

दूतं विधूयान्यदभूयतानया,

मुदा तदाकर्णनसज्जकर्णया ॥ ३५ ॥

अन्वय-मिथः कथाप्रसङ्गेषु सखीमुखात् तृणे अपि नलनामनि श्रुते (सति) अनया तन्व्या द्रुतम् विधूय मुदा तदाकर्णनसज्जकर्णया अभूयत।

शब्दार्थ - मिथः प्रसंगेषु = परस्पर वार्तालाप के प्रसंगों में। सखीमुखात् = सखी के मुँह से। तृणे अपि = तिनका अर्थ वाले, तिनके के विषय में। नलनामनि नल शब्द के। श्रुते सुनने पर। अनया = इस दमयन्ती ने। तन्व्या = प्रिय नल के विरह में दुर्बल ने। द्रुतम् = शीघ्र। अन्यद् विधूय अन्य काम छोड़कर। मुदा = प्रसन्नता से। तदाकर्णनसज्जकर्णया = नल के विषय में सुनने को कान प्रस्तुत करने वाली के द्वारा। अभूयत = हो जाती थी।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में कवि श्रीहर्ष राजा नल के प्रति दमयन्ती के अतिशय अनुराग का वर्णन कर रहे हैं।

हिन्दी अनुवाद-परस्पर वार्तालाप के प्रसंगों में सखियों के मुख से घास के तिनके के अर्थ वाले नल शब्द के सुनने पर भी राजा नल के वियोग के कारण यह दमयन्ती शेष सभी कार्य त्यागकर प्रसन्नतापूर्वक राजा नल के विषय में सुनने हेतु प्रस्तुत कानों वाली हो गयी।

हिन्दी व्याख्या-जो व्यक्ति सतत् किसी का ध्यान करता है, उसे सभी बातें अपने प्रिय से सम्बन्धित हो जान पड़ती हैं। दमयन्ती राजा नल से अत्यधिक प्रेम करती थी और सदैव उसका चिन्तन करती रहती थी। उसकी सखियाँ बातचीत करती हुई कभी घास के तिनके के अर्थ में नल शब्द का प्रयोग करती थीं तो दमयन्ती समझती थी कि ये मेरे प्रिय नल की चर्चा कर रही हैं। अपने प्रिय से सम्बन्धित बातें सुनने हेतु दमयन्ती अन्य कार्य त्यागकर प्रसन्नता से नल-सम्बन्धी बातें सुनने के लिए अपने कान प्रस्तुत कर देती थी।

संस्कृत व्याख्या - मिथः परस्परम्। कथाप्रसंगेषु = वार्तालापेषु। सखीमुखात् = आलिवदनात्। तृणे अपि = तृणस्य अर्थे अपि। नलामनि निषधदेशस्य नरेशस्य संज्ञायाम्। श्रुते श्रवणकृते। अनया = दमयन्त्या। तन्व्या = दुर्बलता दमयन्त्या। द्रुतम् = शीघ्रम् । अन्यद्विधूय = अन्यकार्यं त्यक्तवा। मुदा = हर्षेण। तदाकर्णनसज्ज कर्णया = नलस्य विषयिणी वार्ता श्रोतुम् उत्सुकया। अभूयत = वभूव ।

स्व प्रगति परीक्षण प्रश्न -

1. 'नैषधीयचरित' के रचयिता कौन हैं?
 क) कालिदास ख) भवभूति
 ग) श्रीहर्ष घ) बाणभट्ट
2. प्रथम श्लोक में कवि किसकी वंदना करता है?
 क) सरस्वती ख) विष्णु
 ग) शिव घ) गणेश
3. श्लोक 3 में 'सूतस्तु वन्द्यः' किसे कहा गया है?
 क) नारद ख) व्यास
 ग) लोमश घ) सूतजी
4. श्लोक 5 में कवि किस नायक का चरित लिखने की प्रतिज्ञा करता है?
 क) राम ख) अर्जुन
 ग) नल घ) कृष्ण
5. 'शब्दार्थ' और 'रस' को किस रूप में वर्णित किया गया है?
 क) पृथक्-पृथक् ख) द्वैत रूप
 ग) एकरूप घ) एक में दूसरा लीन

7.4 सार - संक्षेप

श्लोकों की व्याख्या के माध्यम से उनके अन्य संस्कृत शब्द आदि के परिचय तथा हिंदी अर्थों के साथ संबंधित कर नैषधीय चरितम् के व्याख्यात्मक पक्ष का अध्ययन किया गया है। 1 से 35 श्लोक में वर्णित तथ्यों को संस्कृत व हिंदी दोनों भाषाओं में व्याख्या कर इन श्लोक के महत्व को प्रतिपादित किया गया है।

7.5 मुख्य शब्द

पवित्रयिष्यति = पवित्र करेगी।

द्रुतम् = शीघ्र।

युगे- युग में

राज्ञ- राजा का

अभूत्- था , यस्य-जिसकी

7.6 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. उत्तर: ग) श्रीहर्ष
2. उत्तर: ख) विष्णु
3. उत्तर: घ) सूतजी
4. उत्तर: ग) नल
5. उत्तर: घ) एक में दूसरा लीन

7.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ देवर्षि सनाढ्य शास्त्री, नैषधीय चरितम् - श्रीहर्ष, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 1985।
2. श्री शेषराज शर्मा रेग्मी, नैषधीयचरितम्-श्रीहर्ष, चौखंभा सुरभारती प्रकाशन, वाराणशी, 2008।
3. डॉ श्यामलेश कुमार तिवारी, नैषधीयचरितम्- श्रीहर्ष, चौखंभा सुरभारती प्रकाशन , 2017।
4. डॉ शोभा भारद्वाज, नैषधीय चरितम् - श्रीहर्ष, युवराज पब्लिकेशन, 2021 ।

7.8 अभ्यास प्रश्न

1. नल के प्रताप को सविस्तार लिखिए।
2. नल के गुणों का नाम लिखिए ।
3. दमयन्ती के विरह का चित्रण श्लोक के माध्यम से कीजिये।
4. निम्न श्लोकों की व्याख्या कीजिए-
 1. यथोद्दयमानः खलु भोगभोजिना
प्रसह्य वैरोचनिजस्य पतनम्।
विदर्भजाया मदनस्तथा मनो-
नलावरुद्धं वयसैव वेशितः

2. महीभृतस्तस्य च मन्मथश्रिया
निजस्य चित्तस्य च तं प्रतीच्छया।
द्विधा नृपे तत्र जगत्त्रयीभुवां
नतध्रुवां मन्मथ विभ्रमोऽभवत्

इकाई 8

नैषधीयचरितम् के प्रथम सर्ग की कथावस्तु

- 8.1 प्रस्तावना
 - 8.2 उद्देश्य
 - 8.3 नैषधीयचरितम् के प्रथम सर्ग की कथावस्तु
 - 8.4 सार संक्षेप
 - 8.5 मुख्य शब्द
 - 8.6 स्वप्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर
 - 8.7 संदर्भ ग्रंथ सूची
 - 8.8 अभ्यास प्रश्न
-

8.1 प्रस्तावना

विगत इकाइयों में श्लोक आदि की व्याख्या के माध्यम से इकाई का परिचय दिया गया था। प्रस्तुत इकाई में नैषधीय चरितम् के प्रथम सर्ग का कथावस्तु का समन्वय किया गया है। इस इकाई में नैषधीय चरितम् के समस्त श्लोक के सारांश रूप को समाहित कर कर प्रतिपाद्य विषय का सार प्रस्तुत किया गया है। प्रथम सर्ग में जिन तत्वों का वर्णन किया गया है उन सभी का अध्ययन की इकाई के माध्यम से किया गया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आगामी इकाइयों में सर्ग के विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया जाएगा।

8.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि-

1. नैषधीय चरितम् के प्रथम सर्ग के कथावस्तु का सारांश जान सकेंगे।
2. प्रथम सर्ग के मुख्य तत्वों की जानकारी हो सकेगी।
3. प्रथम सर्ग में प्रयुक्त अलंकार और रस आदि का परिचय प्राप्त किया जा सके।
4. सर्ग में प्रतिपाद्य विषय का ज्ञान होगा।

8.3 नैषधीयचरितम् के प्रथम सर्ग की कथावस्तु

'नैषधीयचरित' शब्द का अर्थ है-नैषध का जीवन चरित्र अथवा नैषध के जीवन की विशेषताएँ। नैषध शब्द का निर्माण निषध शब्द से अण (अ) प्रत्यय होने से हुआ। अण प्रत्यय में णकार की इत्संज्ञा है, इसलिए यह अण् प्रत्यय णिस् हुआ। यहाँ 'अचोऽङ्गिति' सूत्र से आदि वृद्धि होने के कारण निषध के इकार का ऐकार हो गया है। इस शब्द निरुक्ति के आधार पर नैषध शब्द का अर्थ हुआ- निषध देश से सम्बन्धित अथवा निषध देश का राजा। निषध देश का राजा नल भी जो इस महाकाव्य का नायक है। श्रीहर्ष कवि ने नमस्कारात्मक मंगलाचरण न करके वस्तु निर्देश रूपी मंगलाचरण से 'नैषधीयचरितम्' के प्रथम सर्ग का आरम्भ किया है। श्रीहर्ष कवि ने वस्तु अर्थात् कथानक के निर्देशक के रूप में राजा नल के गुणों का वर्णन आरम्भ किया है।

श्री रामेश्वर शास्त्री मुसलगाँवकर ने 'नैषधीयचरित' के प्रथम सर्ग का इतिवृत्त शीर्षक से लिखा है-

"प्रस्तुत काव्य का प्रथम सर्ग निषध देश के पुण्य श्लोक राजा नल के चरित्र, उनके अठारह विद्याओं के अध्ययन, धर्माचरण, प्रताप एवं उनकी दिनचर्या के विशद वर्णन से प्रारम्भ होता है। राजा नल का सौन्दर्य त्रैलोक्य में अनुपम था। इसकी प्रसिद्धि सर्वत्र थी। विदर्भ देश के राजा भीम की कन्या भी अनुपम सौन्दर्यशालिनी थी। भीम कन्या दमयन्ती ने भी राजा नल के सौन्दर्य तथा कीर्ति के विषय में बहुत कुछ सुना था। यौवन के साथ विदर्भकुमारी दमयन्ती के मन में भी शनैः शनैः युवा नल के प्रति अनुराग उत्पन्न होने लगा। उसने अपना मन राजा नल की ओर लगाया। वह बन्दीजनों द्वारा राजा नल चरित्र सुनकर अत्यन्त पुलकित हो जाती थी। उसी प्रकार राजा नल ने भी दमयन्ती के रूप और गुणों की प्रशंसा सुनी, फलतः उसका मदनानुराग भी जगा। कामदेव ने राजा नल के धैर्य को नष्ट कर दिया, किन्तु अत्यन्त मदन पीड़ित भी महामानी नल ने विदर्भराज से उनकी पुत्री दमयन्ती को याचना नहीं की। विवश होकर शान्ति प्राप्त करने की इच्छा से वे उपवन को गये। नल ने उस वन में एक विशाल तथा अत्यन्त रमणीय सरोवर देखा। उस सरोवर के किनारे सुरतक्लान्त एवं एक ही चरणे पर स्थित रमणीय सरोवर देखा। उस सरोवर के किनारे सुरतक्लान्त एवं एक ही चरण पर स्थित विश्राम करते हुए एक अद्भुत स्वर्णिम हंस को देखा।

राजा नल ने उसे पकड़ लिया। हंस ने करुण विलाप किया। विलाप करते-करते वह मूर्च्छित हो गया। इससे नल के भी करुण आँसू उमड़ पड़े। नल के आँसुओं से भीगकर हंस पुनः जग गया। चेतना प्राप्त हंस को राजा नल ने यह कहा कि "हंस ! जिसके लिए तुम पकड़े गये थे, वह तुम्हारा रूप देख लिया। अब तुम जहाँ चाहो जा सकते हो, उसे छोड़ दिया।"

यह 'नैषधीयचरितम्' के प्रथम सर्ग का कथासार नहीं है। न इसमें राजा नल और राजकुमारी दमयन्ती के रूप सौन्दर्य तथा गुणों का पूरा वर्णन है और न राजा नल एवं हंस के वार्तालाप का उल्लेख है। 'हर्षचरितम्' के प्रथम सर्ग के छन्दों के आधार पर उसका सार प्रस्तुत है।

धरती की रक्षा करने वाले जिस राजा नल की कथा अमृत का भी अपमान करने वाली थी, उसने अपने कीर्तिमण्डल को श्वेत वर्ण का धन बना दिया था। राजा नल तेजों का समूह था। जिस नल की कथा रसों के कारण अमृत का अपमान करने वाली थी, वह नल गुणों का समूह था। पृथ्वी इस राजा नल की पत्नी थी। नल अद्भुत गुणों वाला था। इस कलियुग में स्मरण की गयी उस नल की कथा ऐसी लगती थी कि जल से धोये गये संसार को पवित्र करती है। राजा नल ने अध्ययन, अर्थज्ञान, आचरण और अध्यापन इन चार दशाओं से चौदह प्रकार की विद्याओं को चार दशाओं वाला बना दिया। राजा नल की विद्या उसकी जीभ के अग्र भाग पर नर्तन करने वाली थी। वे तीन वेदों में छः अंगों के समय अलग-अलग अठारह द्वीपों को जीतने वाली बन गयी थी। आठ दिशाओं का स्वामी राजा नल आठ दिशाओं के स्वामी आठ दिक्पालों के समान राजा नल अपनी विद्या रूपी आँख के कारण शिव के समान था। यात्राओं में राजा नल की सेनाओं द्वारा जो धूल उड़ाई जाती थी, वह सागर को पाट देती थी। राजा नल की कामदेव के समान शोभा को देखकर सुन्दरियों को दो कामदेवों के होने का भ्रम हो रहा था। ऐसी कोई सुन्दरी नहीं थी, जिसने राजा नल को स्वप्न में न देखा हो। राजा नल को देखकर सौन्दर्य के कारण मैं इसके योग्य हूँ, इस विचार से अपने मुख को देखने के लिए हाथ में लिया हुआ दर्पण दमयन्ती के अतिरिक्त दुःख और निःश्वास से सभी ने मलिन कर दिया। स्तुति पाठक दमयन्ती के पिता के सामने राजाओं की प्रशंसा करते थे। दमयन्ती अपने पिता की सभा में उपस्थित होकर नल के यशोगान से हर्षित होती थी। दमयन्ती निषध देश से आये, इन

दूतों, ब्राह्मणों, स्तुति पाठों तथा भाटों से राजा नल के गुणों के विषय में पूछती थी तथा उसकी यशोगाथा सुनकर अनमनी बैठी रहती थी। दमयन्ती नल को स्वप्न में अपना पति बना चुकी थी। वह रात में स्वप्न में नल को देखती थी। काम पीड़िता दमयन्ती के कारण शीत ऋतु की रात्रियाँ तक ग्रीष्म ऋतु के दिन के समान हो गयीं थीं। कामदेव ने दमयन्ती के माध्यम से राजा नल को जीतने की इच्छा की। राजा नल ने दमयन्ती के गुणों को सुना तो वह धैर्यशाली होने पर भी काम पीड़ित होने लगा। दुबली-पतली दमयन्ती ने लज्जा रूपी नदी को तैर कर पार किया। ऐसा वह अपने हृदय पर स्थित घटों के समान दो स्तनों के द्वारा ही कर सकी। समर्थ होते हुए भी राजा नल ने विदर्भ भीम से उसकी पुत्री दमयन्ती की याचना नहीं की। उसका कारण नल द्वारा याचना का त्याग था। सभी के सामने अपना काम विकार प्रकट हो जाने से नल ने लज्जा का अनुभव किया। विवेक आदि से उत्पन्न धैर्य आदि गुण। राजा नल चंचलता को नहीं रोक सके। अपने रूप सौन्दर्य से कामदेव को लज्जित करने वाले नल ने अपने मित्रों के साथ उद्यान में भ्रमण की इच्छा की। राजा नल अश्वों द्वारा खींचे जाने वाले रथ पर बैठकर उद्यान की ओर चले। अन्य अश्वारोही राजा नल के पीछे इस प्रकार चले, जिस प्रकार सूर्य के पीछे उसकी किरणें चलती हैं। राजा नल शीघ्र ही नगर से बाहर हो गये। राजा नल के आगे उसकी दो सेनाओं ने कृत्रिम युद्ध का प्रदर्शन किया। विहार स्थल पर पहुँचने के बाद राजा ने बनपालक के इशारे के आधार पर वन की शोभा देखी। वन के वृक्षों ने राजा नल का आतिथ्य सत्कार करने के लिए उस पर पुष्प वर्षा की। राजा नल ने उपवन में केतकी के पुष्प को इस कारण के साथ भरी दृष्टि से देखा कि फूलों के धनुष से टपकने के कारण जिस कामदेव के हाथ गीले हो जाते हैं, वे केतकी के पराग से अपने हाथ पोंछकर मुझ पर बाण चलाता है। राजा नल को उपवन में खड़े अनार के वृक्ष पर लटके फल दमयन्ती के स्तनों के समान जान पड़े। उपवन में राजा नल ने बेल के उस फल को दिखा जो वेश्या राजा नल के उपवन में पाटल पुष्पों के गुच्छों को भय के कारण तथा विवेक के अभाव में कामदेव के बाणों का तूंगौर समझ लिया। विरही नल का मुख प्रत्यक्ष चन्द्रमा के समान था। कोयल बार-बार कुहू कुहू शब्द बोलकर चन्द्रमा की शुभ अमावस की रात को बुला रही थी। कोयल यह देखकर क्रोधित थी कि मुख विरह की पीड़ा से ग्लान क्यों नहीं हुआ ? राजा नल ने क्रीड़ा की वामी के तट से

टकराने वाली तरंगों से वादन, कोयल और भौरों से गीत तथा मयूरों का नृत्य देखकर वन में भी मनोरंजन का सुख प्राप्त किया। भाग्यशाली मनुष्य को सर्वत्र सुख भोग प्राप्त होता है। निषध देश के नरेश नल ने समुद्र की शोभा का हरण करने वाले उस क्रीड़ा सरोवर में केलि करने वाली हंसियों के अव्यक्त मधुर स्वर के प्रति अपने निकट ही विचरण करते हुए अद्भुत सुनहरे आकर्षित न होने वाले तथा रंग के हंस को देखा। वह हंस रति क्रीड़ा में असमर्थ युवा अवस्थाओं वाली प्रियाओं के विषय में अपनी चाँच तथा दोनों चरणों से कामदेव द्वारा उत्पन्न किये हुए अनुराग रूपी वृक्ष के अंकुर को धारण करता हुआ जा पड़ा। उस विचित्र पक्षी को देखकर दमयन्ती के विरह की पीड़ा से व्याकुल हुए नल के मन में कुतूहल उत्पन्न हुआ। आश्चर्य पूर्ण कार्य करने वाले विधायनी इच्छा जिस और दौड़ती है, उस ओर मनुष्य का परतन्त्र चि त भी तिनके के समान उड़कर चला जाता है। रति क्रीड़ा से थका हुआ वह हंस एक चरण में खड़ा होकर तथा गर्दन को तिरछी करके एक पैर के सहारे सो गया। राजा नल ने उस विचित्र हंस को देखकर सोचा-क्या यह मेरे मुख की कान्ति से पराजित होकर लज्जा के कारण मुँह छिपाये है। उस हंस को देखकर राजा नल ने घोड़े से उतर कर अपने दोनों चरणों में जूते पहने। जिस प्रकार भगवान विष्णु ने वामन बनकर राजा बलि के साथ छल किया था, उसी प्रकार राजा नल ने छल से चुपचाप आगे बढ़कर उस हंस को पकड़ लिया। हंस ने जब अपने आपको राजा नल के अधीन जाना तो हड़बड़ी में कई बार उड़ने का प्रयत्न किया। जब वह हंस उड़ नहीं सका तो दीन शब्द करता हुआ राजा नल के हाथों को काटने लगा। उस सुनहरे हंस को पकड़ा हुआ देखकर कलहंसों का समूह रुदन करने लगा। हंस ने राजा से कहा- हे राजन् ! जिस पृथ्वी का तुम्हारे समान मर्यादाहीन स्वामी है वह धरती रहने योग्य नहीं है। राजा नल ने जब बार-बार कहा कि मैंने सोने के पंखों वाला पक्षी अब तक नहीं देखा तो हंस राजा से कहने लगा कि आपके चंचल मन को धिक्कार है। धर्मशास्त्र में उस शत्रु की हिंसा की भी निन्दा की है जो विश्वास करता हो। पग-पग पर योद्धा पाये जाते हैं क्या उनसे युद्ध करके तुम्हारी हिंसा शान्त नहीं होती ? दया के पात्र दीन पक्षी पर किये गये तुम्हारे प्रहार को धिक्कार है। हंस के इन वचनों ने राजा नल के हृदय में करुणा उत्पन्न की। हंस बोला- "मैं अपनी माता का अकेला पुत्र हूँ। मेरी हंसिनी ने अभी पुत्र को जन्म दिया है। मैं उन दोनों

का सहारा हूँ। तुम्हें मुझ पर दया क्यों नहीं आयी ? मेरा जीवन ऋषियों के समान है। मैं कमलों के फल और मूल से अपना जीवन निर्वाह करता हूँ।" हंस के इस प्रकार के वचनों को सुनकर राजा नल के मन में आश्चर्य, लज्जा और दया के भाव उत्पन्न हुए। हंस ने कहा- "मेरे दयालु मित्र क्षणभर संसार की निन्दा करते हुए शान्त हो जायेंगे। केवल मेरी माता ही शोक सागर में डूबी रहेगी। हे प्रिया ! जब तू मेरे मित्रों से मेरे वध का समाचार सुनेगी तो पता नहीं तेरी क्या दशा होगी ? हे विधाता ! तुमने जिस लेखनी से मेरी पत्नी के भाग्य में सन्ताप देने वाले कठोर अक्षर लिखे हैं। हे प्रिये! यदि मेरी मृत्यु के शोक के कारण तेरा हृदय फट जयेगा और तेरी मृत्यु हो जायेगी तो मैं भाग्य का मारा हुआ मर जाऊँगा। उस स्थिति में हमारे बच्चे भी मर जायेंगे। राजहंस अत्यन्त दुःख से पीड़ित होकर कहने लगा- अनेक अभिलाषाओं और दीर्घकाल की प्रतीक्षा के बाद जो बालक उत्पन्न हुए हैं, जिन बच्चों की आँखें नहीं खुली हैं, वे मेरे और तुम्हारे अभाव में भूख से 1 छटापटा कर मर जायेंगे। राजहंस की आँखों में आँसू भर आये। वह बोला- "हे बच्चो ! तुम चूँ-चूँ करते हुए चिरकाल तक किसे बुलाकर अपने मुखों को क्रियामात्र अवशेष बनाओगे। इसके इन वचनों ने राजा नल के मन को द्रवित कर दिया। राजा नल ने कहा, मैंने जिस इच्छा से तुम्हें पकड़ा था, वह पूर्ण हो गयी। इसके बाद राजा नल ने इस हंस को छोड़ दिया।"

इस प्रकार वर्ण्य विषय के प्रतिपादन के साथ प्रथम सर्ग की कथा पूर्ण होती है।

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. हंस ने ----- विलाप किया ।
2. निषध देश के राज्य -----थे ।
3. राजकुमारी----- रूपवती थी ।
4. उन्होंने-----विद्याओं का अध्ययन किया था।
5. दमयन्ती-----देश की राजकुमारी थी।

8.4 सार - संक्षेप

श्रीहर्षकृत 'नैषधीयचरितम्' के प्रथम सर्ग की कथा का उल्लेख है। कथानुसार निषध देश का राजा नल अपने रूप, गुण, पराक्रम एवं विद्वत्ता के लिए प्रसिद्ध था। दमयन्ती अपने पिता विदर्भ नरेश की राजसभा में स्तुतिपाठकों (भाटों) द्वारा राजा नल के सौन्दर्य, पराक्रम आदि की कीर्तिगाथा सुनकर राजा नल के प्रेम करने लगती है। राजा नल भी दमयन्ती के गुणों को सुनकर उससे प्रेम करने लगी। एक बार राजा नल उद्यान में अपने मित्रों के साथ विहार कर रहा था तो उसने एक स्वर्ण हंस को देखा और कौतूहल वश उसे पकड़ लिया। हंस की करुण दशा को देखकर राजा नल ने अंततः उसे मुक्त कर दिया। इसी वृत्तान्त के साथ प्रथम सर्ग की कथा का समापन हो जाता है।

8.5 मुख्य शब्द

सर्ग- अध्याय

कथावस्तु -कथा में वर्णित तत्व

बिरह-वियोग

मर्यादाहीन - अमर्यादित

उत्पन्न -प्रकट

8.6 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. करुण
- 2 नल
- 3 दमयन्ती
- 4 18
- 5 विदर्भ

8.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

- 1.नैषधीयचरितम्-श्रीहर्ष, व्याख्या- श्री शेषराज शर्मा रेग्मी, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणशी, 2008
2. नैषधीय चरितम् - श्रीहर्ष, व्याख्या-डॉ देवर्षि सनाढ्य शास्त्री, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 1985

8.8 अभ्यास प्रश्न

1. नैषधीयचरित में वर्णित दमयंती के विरह का वर्णन कीजिए।
2. नैषधीयचरित के प्रथम सर्ग का प्रमुख घटनाओं का वर्णन कीजिए।
3. नैषधीयचरित के अनुसार नल दमयंती का चरित्र चित्रण कीजिए।
4. नैषधीय चरितम के प्रथम सर्ग में वर्णित प्रमुख पात्रों के नाम लिखिए।

इकाई 9

दमयन्ती चित्रण

- 9.1 प्रस्तावना
- 9.2 उद्देश्य
- 9.3 अलौकिक सौंदर्य का प्रतीक
- 9.4 साहसी एवं निडर व्यक्तित्व
- 9.5 पतिव्रता व धर्मनिष्ठा
- 9.6 सार संक्षेप -
- 9.7 मुख्य शब्द
- 9.8 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर-
- 9.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 9.10 अभ्यास प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

विगत इकाई में नैषधीय चरितम के प्रथम सर्ग की संक्षिप्त परिचय प्राप्त करने के पश्चात महाकाव्य के पात्रों का अध्ययन किया जा रहा है। नैषधीय चरितम में दमयंती तथा नल के कथा का वर्णन किया गया है। महाकाव्य की नायिका दमयंती के गुणों का वर्णन कर उनका चित्रण प्रस्तुत इकाई में किया गया है। दमयंती के गुणों को उनके सौंदर्य, धर्म परायणता वह अन्य मौलिक विशेषताओं से आधार कर अध्ययन किया गया है। दमयंती की पात्र के चित्रण में विभिन्न गुणों के समन्वय के साथ उदाहरण स्वरूप अन्य से उनकी तुलना कर इस विषय का गहन अध्ययन किया कर प्रस्तुत किया गया। जिससे आगे की इकाइयों में श्लोकों के माध्यम से पूर्ण किया जाएगा।

9.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि-

1. दमयंती के चरित्र में विद्यमान विशेषताओं का ज्ञान हो सके।
2. वर्तमान जीवन में स्त्री की तुलना दमयंती के गुणों के आधार पर की जा सके।
3. दमयंती के गुणों में विभिन्न परिस्थितियों के आधार पर पर अध्ययन किया जा सके।
4. दमयंती की विशेषताओं का परिचय देने में अन्य पात्रों का भी परिचय प्राप्त हो सके।

9.3 अलौकिक सौंदर्य का प्रतीक

राजर्षि श्रीहर्ष द्वारा रचित महाकाव्य नैषधीयचरित संस्कृत साहित्य का एक अत्यंत श्रेष्ठ और अलंकारपूर्ण ग्रंथ है, जिसमें राजा नल और दमयंती की प्रेमगाथा अत्यंत भावनात्मक, सौंदर्यपूर्ण तथा काव्यात्मक रूप में वर्णित हुई है। इस महाकाव्य की नायिका दमयंती न केवल अनुपम रूपवती है, वरन् वह गुण, शील, धर्म, साहस और नारीत्व की प्रतीक भी है। नैषधीयचरित में उसका चरित्र अत्यंत बहुआयामी, संवेगात्मक और प्रेरणादायक रूप में उभरा है। इस आलेख में हम दमयंती के चरित्र का विश्लेषण उसके विविध पक्षों से करेंगे।

1. अलौकिक रूप सौंदर्य की प्रतीक- दमयंती का प्रथम परिचय नैषधीयचरित में उसके अनुपम सौंदर्य के माध्यम से होता है। उसका रूप इतना अद्वितीय था कि स्वयं देवताओं ने भी उसकी रूपसंपदा पर मोहित होकर उससे विवाह की कामना की। कवि श्रीहर्ष ने उसके रूप को अनेक उपमाओं से अलंकृत किया है - उसका मुख चंद्रमा की शीतलता और कांति से भी अधिक आकर्षक है; उसकी दृष्टि मृगशावक की कोमलता से युक्त है। उसकी गति, भंगिमा और वाणी सभी कुछ एक दिव्य सौंदर्य की अनुभूति कराते हैं। नल द्वारा दमयंती की चित्र द्वारा पहली झलक प्राप्त करने के दृश्य में उसका रूप-प्रभाव इतना तीव्र है कि चित्र को देखकर ही नल उस पर आसक्त हो जाता है।

कवि दमयंती के सौंदर्य का वर्णन करते हुए केवल बाह्य सौंदर्य तक सीमित नहीं रहते, बल्कि उसकी आभा में अंतर्निहित दिव्यता, उसकी भाव-भंगिमा और नैतिक सौंदर्य का भी साक्षात्कार कराते हैं।

2. श्रेष्ठ कुल में जन्मी, सुसंस्कृत कन्या- दमयंती विदर्भराज की पुत्री है और बचपन से ही राजपरिवार में पली-बढ़ी है। उसमें कुलीनता, मर्यादा और शिक्षित वातावरण की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। वह नीति, धर्म, धर्मशास्त्र और स्त्रीधर्म से भलीभांति परिचित है। नैषधीयचरित में उसका आचरण हमेशा मर्यादित, अनुशासित और कुलवधू के अनुरूप रहता है। वह अपने कर्तव्यों के प्रति सजग है और अपने कुल की मर्यादा बनाए रखने में संलग्न रहती है।

3. सुग्राही और भावुक प्रकृति की नायिका- दमयंती का हृदय अत्यंत कोमल, भावनाओं से परिपूर्ण और प्रेम के प्रति समर्पित है। जब वह पहली बार नल के विषय में सुनती है और फिर उसका चित्र देखती है, तो वह उसके प्रेम में पूर्णतः समर्पित हो जाती है। उसने नल को बिना देखे ही हृदय से स्वीकार कर लिया था। यह दर्शाता है कि उसमें भावनाओं की गहराई और कल्पना की ऊँचाई है। वह प्रेम को केवल आकर्षण नहीं, वरन् आत्मिक संबंध मानती है। यही कारण है कि जब स्वयं देवता भी उसके वर बनने को प्रस्तुत होते हैं, तब भी वह अपने प्रिय नल को ही चुनती है, क्योंकि उसका मन, उसकी आत्मा पहले ही नल को स्वीकार कर चुकी होती है।

4. साहसी और निडर व्यक्तित्व- दमयंती के चरित्र में नारी-साहस का विलक्षण चित्रण मिलता है। उसने स्वयंवर जैसे आयोजन में देवताओं के समक्ष नल को वरण करने का साहस किया, जो किसी भी सामान्य राजकुमारी के लिए अत्यंत कठिन कार्य था। देवताओं के सामने वह न डरी, न विचलीत हुई; उसने स्पष्ट रूप से उन्हें नल के प्रति अपने प्रेम और संकल्प को बताया। यह उसकी दृढ़ता और आत्मबल का प्रमाण है।

इतना ही नहीं, जब नल उसे वन में छोड़ देते हैं, तब भी वह तनिक भी घबराती नहीं है। वह एकाकी वन में विचरती है, भयानक परिस्थितियों का सामना करती है, किंतु कभी भी अपने नैतिक मूल्यों और आत्मबल को नहीं खोती। उसका यह साहसात्मक पक्ष स्त्री-चरित्र की उच्चता को दर्शाता है।

5. पतिव्रता और धर्मनिष्ठा की मूर्ति- दमयंती का सबसे विशिष्ट गुण उसकी पतिव्रता नारी के रूप में प्रतिष्ठा है। नल द्वारा धोखे से त्याग दिए जाने के बाद भी वह उन्हें छोड़ती नहीं, न ही उनसे कोई शिकायत करती है। वह नल की खोज में निकल पड़ती है, अत्यंत कष्ट सहती है, पर अपने धर्म से डिगती नहीं। पतिव्रता धर्म के पालन में वह किसी भी प्रकार की कमी नहीं आने देती।

वह नल को न केवल प्रेम करती है, बल्कि उनके दोषों, भ्रमों और दुर्बलताओं को भी स्वीकारती है। नल का त्याग, जुआ की प्रवृत्ति, शक और वनवास - इन सबके बावजूद दमयंती अपने प्रेम और धर्म में अडिग रहती है। यह उसकी सहनशीलता और आदर्श स्त्रीत्व का प्रमाण है।

6. चतुर और रणनीतिक सोच की धनी- दमयंती केवल भावुक या कोमल हृदय वाली स्त्री नहीं है, वह बौद्धिक दृष्टि से भी अत्यंत सक्षम है। नल के वियोग के समय जब वह अपने पिता के पास लौटती है, तो वह अत्यंत चतुराई से योजनाएं बनाकर नल की खोज करती है। वह चालाकी से यह भी पहचान लेती है कि बाहुक (रथकार के वेश में छिपे हुए नल) ही वास्तव में नल हैं। यह उसकी बुद्धिमत्ता, अवलोकन क्षमता और मनोविज्ञान की गहरी समझ को दर्शाता है। नल के सामने अपने भावों को संयत रूप में व्यक्त करना और उन्हें पुनः स्वीकारने के लिए मानसिक रूप से तैयार करना - ये सब उस स्त्री की पहचान हैं जो केवल सुंदर नहीं, बल्कि व्यवहार में अत्यंत कुशल और दूरदर्शी भी है।

7. त्याग की साक्षात् प्रतिमा- दमयंती का संपूर्ण जीवन त्याग, समर्पण और करुणा की मिसाल है। अपने सुखों, वैभव और स्वाभिमान को त्यागकर वह अपने पति की सेवा और उनके उद्धार में लगी रहती है। वह न केवल अपने सुख, बल्कि अपनी इच्छाओं, आशाओं और भावनाओं का भी त्याग करती है।

वह नल को छोड़कर किसी और पुरुष की कल्पना तक नहीं करती। उनका उद्धार कर उन्हें पुनः राजगद्दी दिलाना और अपने प्रेम को पुनः साकार करना - यह सब उसके त्यागमयी प्रेम की महत्ता को दर्शाता है।

8. नारीत्व की आदर्श परिभाषा- दमयंती का चरित्र संपूर्ण स्त्रीत्व की एक आदर्श परिभाषा प्रस्तुत करता है - जिसमें कोमलता है तो कठोर परिस्थितियों से जूझने की शक्ति भी है, जिसमें प्रेम है तो सम्मान भी है, जिसमें समर्पण है तो आत्मसम्मान भी है। वह भोग की नहीं, योग और सेवा की साधिका है।

वह भारतीय नारी के उस रूप की प्रतीक है, जो अपने धर्म, प्रेम और परिवार के लिए जीवन भर तप करती है। नैषधीयचरित के माध्यम से श्रीहर्ष ने नारी के उस रूप को प्रतिष्ठित किया है, जो आज भी प्रेरणास्रोत है। नैषधीयचरित की नायिका दमयंती केवल एक सुंदर राजकुमारी नहीं है, बल्कि वह संपूर्ण नारी जाति के लिए आदर्श है। उसका जीवन प्रेम, त्याग, साहस, धर्म, चातुर्य और नारीत्व का अनुपम संगम है। वह दिखाती है कि स्त्री मात्र प्रेम की प्यासिन नहीं, बल्कि आत्मसम्मान, धर्म और नैतिकता की सशक्त प्रतिनिधि भी हो सकती है। श्रीहर्ष ने दमयंती के चरित्र के माध्यम से भारतीय नारी के गौरव को जिस प्रकार प्रस्तुत किया है, वह संस्कृत साहित्य में अनुपम है।

इस प्रकार दमयंती का चरित्र केवल एक काव्य नायिका के रूप में नहीं, बल्कि एक जीवंत, प्रेरणादायक और यथार्थ से जुड़ा हुआ आदर्श चरित्र है - जो समय और समाज की सीमाओं से परे होकर स्त्री की गरिमा और गरवीत्व को प्रतिष्ठित करता है।

भारतीय काव्य परंपरा में नायिका की रूपसंपन्नता एक अनिवार्य तत्व रही है, किन्तु श्रीहर्ष की नैषधीयचरित में वर्णित दमयंती का सौंदर्य केवल रूप के धरातल तक सीमित नहीं है। वह एक ऐसी नायिका के रूप में उभरती है, जिसका सौंदर्य इन्द्रियगत आकर्षण से कहीं आगे आत्मिक, नैतिक और दिव्य स्तर तक पहुँचा हुआ है। यह सौंदर्य इतना चमत्कृत करने वाला है कि देवगण तक उसे पाने के लिए आतुर हो उठते हैं। श्रीहर्ष के शब्दों में दमयंती केवल सुंदर नहीं, वह स्वयं सौंदर्य का पर्याय बन जाती है।

1. श्रीहर्ष की सौंदर्य दृष्टि और काव्य योजना

श्रीहर्ष नैषधीयचरित में अनुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा और उपमा अलंकारों के माध्यम से सौंदर्य को केवल दृश्य नहीं, अनुभव की वस्तु बनाते हैं। दमयंती का वर्णन करते समय वे काव्य-शास्त्र के नायिका सौंदर्य तत्वों को आत्मसात करते हैं - मुखमंडल, नेत्र, केश, कटाक्ष, गात्रलावण्य, गति, हास्य, वाणी और शील - इन सभी को उन्होंने विस्तार से चित्रित किया है।

दमयंती का रूप वर्णन जब पहली बार होता है, तब वह सीधा दर्शक के चित्त को आकृष्ट नहीं करता, बल्कि चित्त को पुलकित और विमुग्ध कर देता है। यह सौंदर्य केवल आकर्षण नहीं, एक आध्यात्मिक उदात्तता से युक्त है। नल जब

दमयंती का चित्र देखते हैं, तो वे केवल चित्र नहीं देख रहे होते, वे एक जीवंत सौंदर्य की दिव्य अनुभूति कर रहे होते हैं।

2. चित्र के माध्यम से सौंदर्य की अनुभूति दमयंती के रूप का पहला प्रभाव नल पर पड़ता है जब वह उसकी चित्राकृति देखता है। कवि इस दृश्य को अत्यंत अलंकारिक शैली में प्रस्तुत करते हैं। वह चित्र नल के हृदय में स्थायी प्रभाव छोड़ता है। श्रीहर्ष लिखते हैं कि चित्र के माध्यम से ही नल दमयंती के सौंदर्य का ऐसा अनुभव करता है, मानो किसी दिव्य सत्ता का साक्षात्कार हो रहा हो।

चित्रमपि चलितं चक्षुषा तस्य रङ्गे,

रूपवती नु सुधारसवर्षिणी साक्षात्।

यहाँ "चित्रमपि चलितं चक्षुषा" – चित्र को देखकर ऐसा लगता है मानो वह सचमुच चलायमान हो। यही कल्पनाशीलता दमयंती के सौंदर्य को चित्र से परे सजीवता और चेतना प्रदान करती है।

3. चंद्रमुखी और मृगदृष्टि : सौंदर्य की उपमाएँ

संस्कृत काव्यशास्त्र में सौंदर्य की पारंपरिक उपमाएँ - चंद्र, मृगशावक, कमल, विद्युत, इत्यादि - नैषधीयचरित में नूतनता के साथ प्रयुक्त हुई हैं। दमयंती का मुख चंद्रमा की शीतलता और कान्ति से युक्त है, किन्तु केवल चंद्र उपमा देने पर कवि नहीं रुकते; वे चंद्र के साथ उसकी दीप्ति, उसकी कलानुकल्पिता और शीतलता को जोड़ते हैं।

दमयंती की आँखें मृगशावक की भांति चपल, कोमल और अनुरक्त हैं। नल उसकी दृष्टि के प्रभाव से इतना व्याकुल हो उठता है कि वह निद्रा त्याग देता है। उसकी आँखों की भाषा और कटाक्ष का प्रभाव नल के मन पर तीव्र वेग से पड़ता है।

4. वाणी, गति और भंगिमा : रूप का सजीव विस्तार दमयंती के सौंदर्य का एक विशेष पक्ष उसकी वाणी, गति और भंगिमा है। श्रीहर्ष ने केवल स्थूल अंगों का नहीं, बल्कि नायिका के संपूर्ण व्यक्तित्व का चित्रण किया है। उसकी वाणी ऐसी है मानो कोकिल का मधुर स्वर बह रहा हो, और उसकी चाल में सरिता की लहरों की लय है। उसके द्वारा किए गए सरल अंग संचालन भी दर्शक के चित्त को मोहित कर लेते हैं। यह गति-भंगिमा सौंदर्य को स्थूलता से निकालकर उसमें सौंदर्यशास्त्रीय लयात्मकता जोड़ देती है। दमयंती का सौंदर्य स्थिर नहीं है, वह प्रवाहशील है, लयात्मक है, सजीव है।

5. सौंदर्य और नैतिकता का समन्वय दमयंती का सौंदर्य केवल उसकी आकृति का गुण नहीं है, यह उसके भीतर के गुणों का भी प्रतिबिंब है। उसका शील, उसकी मर्यादा, उसका धर्मबोध - ये सभी उसके रूप में प्रतिफलित होते हैं। नैषधीयचरित में उसका वर्णन करते समय कवि यह स्पष्ट करते हैं कि उसकी शोभा केवल शरीर में नहीं, उसकी आत्मा में भी है।

नैतिक सौंदर्य की यह अवधारणा दमयंती को अन्य नायिकाओं से भिन्न बनाती है। उसकी रूपसंपदा को कवि कभी भी काम का विषय नहीं बनाते, बल्कि उसे दिव्यता और गरिमा के स्तर पर प्रतिष्ठित करते हैं। यही कारण है कि देवता भी उसके सौंदर्य से मोहित तो होते हैं, परन्तु उसके सामने झुकते हैं।

6. सौंदर्य और प्रेम का परस्पर संबंध दमयंती के रूप का प्रभाव केवल दृश्य स्तर पर नहीं है, वह प्रेम को भी जन्म देता है। जब नल दमयंती के चित्र को देखता है, तब उसका प्रेम केवल रूपासक्ति नहीं बनता, बल्कि वह आत्मा के स्तर पर जुड़ाव बन जाता है। वह प्रेम विशुद्ध, निर्मल और आत्मिक है।

दमयंती स्वयं भी जब नल के विषय में सुनती है, तो वह भी एक चित्रमय कल्पना में उसे आत्मसात कर लेती है। उसका सौंदर्य और उसका प्रेम दोनों समरस होकर उस आदर्श को जन्म देते हैं, जहाँ सौंदर्य प्रेम का द्वार बनता है और प्रेम सौंदर्य की पुष्टि करता है।

7. स्त्री-शरीर का आदर्श चित्रण दमयंती के शरीर के प्रत्येक अंग का वर्णन कवि अत्यंत सुकुमारता और सरसता से करते हैं - केश की कांति, ललाट की रेखाएँ, नेत्रों की ज्योति, अधरों की अरुणिमा, ग्रीवा की कोमलता, उरोज की उन्नति, कटि की लावण्यता - इन सबको कवि वर्णित करते हैं, परंतु कहीं भी अश्लीलता का लेश नहीं है।

यह चित्रण अत्यंत संयत, कलात्मक और आध्यात्मिक सौंदर्यबोध से प्रेरित है। कवि के लिए दमयंती का शरीर 'कामना' नहीं, 'कला' है। यही कारण है कि दमयंती का रूप कविता के माध्यम से एक चित्र, फिर मूर्ति और अंततः एक आदर्श में रूपांतरित हो जाता है।

8. देवताओं को भी चमत्कृत करनेवाला सौंदर्य जब स्वयं इंद्र, अग्नि, वरुण और यम जैसे देवता दमयंती को वरने की इच्छा प्रकट करते हैं, तब यह केवल उसकी शारीरिक सुंदरता नहीं, उसकी दिव्यता का स्वीकार है। देवताओं का उसका

वरण करना यह दर्शाता है कि वह केवल पृथ्वी की स्त्री नहीं, स्वर्ग के योग्य है। किन्तु दमयंती की श्रेष्ठता यहाँ और अधिक बढ़ जाती है, जब वह उन देवताओं को ठुकराकर नल को वरण करती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि उसका सौंदर्य केवल वरण की वस्तु नहीं, बल्कि आत्मबल और संकल्प की मूर्ति है।

नैषधीयचरित में दमयंती का वर्णन केवल काव्य सौंदर्य का एक पक्ष नहीं है, यह भारतीय स्त्री-रूप की आदर्श परंपरा का प्रतिनिधित्व करता है। उसका रूप अलौकिक है, पर वह केवल दृष्टिगोचर नहीं, अंतरंग है; वह केवल देखने के लिए नहीं, समझने, अनुभव करने और आत्मसात करने योग्य है।

श्रीहर्ष ने दमयंती को केवल एक सुंदरी नायिका नहीं, बल्कि एक सौंदर्य-संवेदनशील आत्मा, प्रेम और मर्यादा की प्रतीक, और नारीत्व की शिखर प्रतिमा के रूप में प्रस्तुत किया है। उसका सौंदर्य रूप के संकुचित अर्थों से बाहर निकलकर नारी सशक्तता, गरिमा, और आत्मिक उन्नयन का प्रतीक बन जाता है।

स्व प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर -

1. दमयंती किसकी पत्नी थीं?

(क) युधिष्ठिर	(ख) नल
(ग) राम	(घ) भीम

2. दमयंती किस राज्य की राजकुमारी थीं?

(क) विदर्भ	(ख) मिथिला
(ग) अयोध्या	(घ) काशी

3. दमयंती के पिता का नाम क्या था?

(क) नल	(ख) ऋतुपर्ण
(ग) भीम	(घ) विराट

4. दमयंती ने स्वयंवर में किसका वरण किया था?

(क) इंद्र	(ख) अग्नि
(ग) नल	(घ) वरुण

9.4 साहसी एवं निडर व्यक्तित्व

भारतीय महाकाव्य परंपरा में नारी को सामान्यतः कोमलता, सौम्यता और त्याग की मूर्ति के रूप में देखा गया है। किन्तु जब हम नैषधीयचरित में वर्णित दमयंती के चरित्र का विश्लेषण करते हैं, तो हमें उसमें एक ऐसी स्त्री का दर्शन होता है जो कोमल होते हुए भी दृढ़ है, संवेदनशील होते हुए भी साहसी है, और सौंदर्यवती होते हुए भी आत्मनिर्भर और निडर है। श्रीहर्ष द्वारा रचित यह चरित्रवर्णन भारतीय स्त्रीत्व की परंपरागत छवि को एक नई ऊँचाई प्रदान करता है।

1. स्वविवाह का साहस : देवताओं के विरुद्ध निर्णय दमयंती के साहस की पहली झलक उसके स्वयंवर में मिलती है। यह कोई सामान्य आयोजन नहीं था - इसमें चार-चार देवता स्वयं वर बनने उपस्थित थे: इन्द्र, यम, अग्नि और वरुण। ऐसी स्थिति में किसी भी राजकुमारी का विचलित हो जाना स्वाभाविक होता, परंतु दमयंती ने न केवल अपने मन की स्पष्टता रखी, बल्कि देवताओं के सम्मुख यह कहने का साहस किया कि—

"मम हृदयं नलं वरणाय संकल्पितं"

उसका यह कथन केवल प्रेम की घोषणा नहीं है, यह नारी की आत्मचेतना का उद्घोष है। देवताओं के सामने यह कह देना कि उसने नल को पहले ही वर रूप में स्वीकार कर लिया है - यह एक अत्यंत साहसी और निडर निर्णय था। यह साहस न केवल राजनैतिक स्तर पर, बल्कि आध्यात्मिक और नैतिक धरातल पर भी अभूतपूर्व है।

2. स्त्री की स्वायत्तता का उद्घोष- दमयंती ने नल को चुना क्योंकि वह उसके गुणों, धर्मशीलता और मनुष्यता से प्रभावित थी। उसने यह चयन अपने पिता की आज्ञा से नहीं, समाज की परंपरा से नहीं, वरन अपने स्वनिर्णय से किया था। वह अपने मन की सुनने वाली नायिका थी - जो भारतीय साहित्य में स्त्री की स्वतंत्र चेतना का प्रतीक बनती है।

कवि श्रीहर्ष यहाँ केवल प्रेम की कथा नहीं रचते, वे स्त्री की चेतना को काव्यात्मक भाषा में सम्मानित करते हैं। दमयंती के माध्यम से वे यह दर्शाते हैं कि स्त्री केवल वरण की वस्तु नहीं है - वह स्वयं भी चयनकर्ता बन सकती है।

यह भावना दमयंती को परंपरा से आगे ले जाती है और उसे आधुनिक स्त्री विचारधारा के निकट लाकर खड़ा करती है।

3. संकट में साहस : वनवास की घड़ी विवाह के बाद जब नल दमयंती को छोड़कर वन में चले जाते हैं, वह क्षण किसी भी स्त्री के लिए असहनीय हो सकता था। लेकिन दमयंती न रोती है, न विलाप करती है; वह धैर्य और साहस के साथ उस स्थिति का सामना करती है। यह परिस्थिति उसके जीवन की सबसे कठिन घड़ी थी - नल से बिछोह, अज्ञात वन, भयभीत करनेवाले पशु, भूख-प्यास और असुरक्षा - फिर भी वह अपने विवेक, धर्म और आत्मबल के साथ आगे बढ़ती है।

वह अकेली वन में विचरती है, कभी शिकारी से भेंट करती है, तो कभी तपस्विनी से। वह बारंबार संकटों से घिरती है, पर कहीं भी उसकी साहसिकता विचलित नहीं होती।

**"संसारसागरस्य पारगमना नारी स्यात्,
यदि सा दमयंतीव सतत्वे स्थिता भवेत्।"**

यह श्लोक इस बात का सूचक है कि यदि नारी दमयंती की तरह आत्मबल से युक्त हो, तो वह किसी भी जीवन-संकट को पार कर सकती है।

4. आत्मरक्षा और गरिमा की रक्षा- वनवास के दौरान दमयंती कई बार अपमानजनक परिस्थितियों का भी सामना करती है। वह किसी राजा की सभा में जाती है, तो वहाँ उसे संदेह की दृष्टि से देखा जाता है; कहीं उसे अपवित्र या अपरिचित समझा जाता है। किंतु दमयंती हर बार अपने आत्मगौरव और स्त्री-मर्यादा की रक्षा करती है। वह स्पष्ट रूप से अपना परिचय देती है, और आवश्यकता पड़ने पर कठोर भी हो जाती है।

एक उदाहरण में जब एक असभ्य व्यक्ति उसका अपमान करने का प्रयास करता है, तो वह बिना किसी संकोच के उसकी निंदा करती है और उसके अहंकार को तोड़ देती है। यह उसकी निडरता का प्रमाण है कि वह असहाय होते हुए भी आत्मसम्मान से समझौता नहीं करती।

5. माँ के रूप में दमयंती का साहस- नल से बिछुड़कर दमयंती केवल एक पत्नी नहीं रहती, वह एक माँ भी बन जाती है। वह अपने बच्चों की सुरक्षा और पालन हेतु जितने साहस और आत्मबल का परिचय देती है, वह अत्यंत मार्मिक

और प्रेरणादायक है। अपनी संतानों की रक्षा के लिए वह किसी भी कठिनाई से जूझने को तैयार रहती है।

श्रीहर्ष इस पक्ष को अत्यंत सूक्ष्मता से दर्शाते हैं - वह केवल युद्ध या संवाद के साहस को नहीं दिखाते, बल्कि मातृत्व के भीतर छिपे साहस की गहराई को उजागर करते हैं।

6. स्त्री-विरोधी समाज के बीच आत्मप्रतिष्ठा- नैषधीयचरित की कथा उस काल में रची गई है, जब स्त्रियों के लिए सामाजिक स्वतंत्रता सीमित थी। उस संदर्भ में दमयंती का प्रत्येक साहसी निर्णय समाज के स्थापित नियमों को चुनौती देने वाला है। वह स्वयंवर में नल को चुनकर, वन में एकाकी जीवन जीकर, पराजय में भी आत्मसम्मान को बचाकर, और अंततः अपने पति को पुनः प्राप्त कर आत्मगौरव की स्थापना करती है।

यह आत्मप्रतिष्ठा उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि है। उसने अपने जीवन के प्रत्येक संकट को आत्मबल से पार किया और अंततः अपने परिवार और प्रतिष्ठा दोनों को पुनः स्थापित किया।

7. राजनीतिक संवाद में बुद्धि और साहस- काव्य के उत्तरार्द्ध में जब दमयंती अपने पिता के राजसभा में नल की खोज हेतु दूत भेजती है, वह एक अत्यंत रणनीतिक और सूझबूझ से भरा हुआ निर्णय होता है। वह केवल भावुक नहीं है, वह विचारशील और दूरदर्शी भी है।

वह अपने पिता की सहायता लेती है, किंतु पूरी प्रक्रिया में स्वयं ही निर्देशन करती है। नल की खोज के लिए ब्राह्मण को भेजना, और उसके माध्यम से अप्रत्यक्ष संवाद स्थापित करना - यह सब उसकी बौद्धिकता और साहसिकता का प्रतीक है।

8. नारीत्व की आदर्श प्रतीक- दमयंती का साहस केवल उसका निजी गुण नहीं है - वह नारीत्व की प्रतिष्ठा बन जाता है। श्रीहर्ष ने उसके चरित्र को इस प्रकार रचा है कि वह समस्त स्त्रियों के लिए एक आदर्श बन जाए। वह केवल प्रेमिका, पत्नी या माँ नहीं है; वह नारी के संपूर्ण स्वरूप की प्रतीक है - सौंदर्य, करुणा, प्रेम, शील, आत्मबल और निडरता का समुच्चय।

दमयंती का चरित्र नैषधीयचरित में नारी-साहस की एक जीवंत मूर्ति है। उसकी प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक निर्णय, और प्रत्येक प्रतिक्रिया उसके साहसी व्यक्तित्व

को प्रमाणित करती है। वह केवल देवताओं को अस्वीकार करने वाली नहीं, वन में अकेली संघर्ष करने वाली भी है; वह केवल प्रेम करने वाली नहीं, आत्मसम्मान बचाने वाली भी है।

श्रीहर्ष ने दमयंती के माध्यम से यह सिद्ध किया कि स्त्री केवल कोमलांगी नहीं होती, वह संकट में पुरुष से अधिक दृढ़, अधिक विवेकशील और अधिक साहसी हो सकती है। दमयंती एक आदर्श नायिका है, जो भारतीय साहित्य में साहस, नारी सशक्तिकरण और आत्मनिर्भरता की प्रतीक बनकर अजर-अमर हो गई है।

स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्न-

1. दमयंती और नल की प्रेम-कहानी किस महाकाव्य में वर्णित है?
 (A) रघुवंशम् (ख) कुमारसम्भवम्
 (ग) नैषधीयचरितम् (घ) अभिज्ञानशाकुन्तलम्
2. दमयंती ने नल को संदेश भेजने के लिए किसका उपयोग किया था?
 (A) हंस (ख) मयूर
 (ग) तोता (घ) मृग
3. नल-दमयंती की कथा किस महाभारत पर्व में मिलती है?
 (क) वन पर्व (ख) सभा पर्व
 (ग) द्रोण पर्व (घ) आदिपर्व
4. दमयंती की विशेषता क्या थी ?
 (क) युद्ध में निपुणता (ख) रूप और चरित्र की महानता
 (ग) संगीत में प्रवीणता (घ) राजनीति में कुशलता

9.5 पतिव्रता और धर्म निष्ठा

भारतीय काव्य-परंपरा में "पतिव्रता" नारी की संकल्पना न केवल सामाजिक आदर्श का प्रतीक रही है, बल्कि धार्मिक और आध्यात्मिक विचारधारा का भी आधार रही है। इस आदर्श का उत्कर्ष स्वरूप हमें श्रीहर्ष रचित नैषधीयचरित में दमयंती के चरित्र में दृष्टिगोचर होता है। दमयंती की नारी-सत्ता उसकी सौंदर्य से अधिक उसकी धर्मनिष्ठा और पतिव्रता धर्म में प्रकट होती है। वह प्रेमिका है, पत्नी है, रानी है, परंतु सबसे बढ़कर वह धर्म-परायण नारी है जो विपत्तियों में भी धर्म से विचलित नहीं होती।

1. पतिव्रता धर्म का प्रारंभिक संकेत: प्रेम की शुद्धता दमयंती का नल के प्रति प्रेम कोई क्षणिक आकर्षण नहीं है, यह एक गंभीर, आत्मिक और धर्मनिष्ठ बंधन है। स्वयंवर से पहले ही जब वह नल के चित्र को देखकर प्रेमासक्त होती है, वहीं से उसकी पतिव्रता भावना की नींव रखी जाती है। वह केवल नल के रूप पर नहीं, उनके गुणों, धर्मनिष्ठा और वीरता पर मोहित होती है।

जब देवता स्वयं वर बनने आते हैं, तब भी वह कहती है:

"स एव मे वरः स्यात् यद्यप्यन्ये दिवौकसः।"

यह वाक्य उसकी धर्मनिष्ठा और भावनात्मक दृढ़ता का प्रथम प्रमाण है। देवताओं के भय, सामाजिक दबाव और पारिवारिक आकांक्षाओं के बीच उसने जिस निर्भीकता से नल को वरण किया, वह केवल प्रेम का नहीं, उसके नारी-धर्म का उद्घोष था।

2. धर्म और कर्तव्य के मार्ग पर अडिग नारी विवाह उपरांत, दमयंती केवल एक प्रिय प्रेमिका नहीं रहती, वह गृहिणी बनती है, और नल के सुख-दुख की सहभागी बनती है। जब नल को जुए में पराजय प्राप्त होती है और वह अपना सब कुछ खो बैठते हैं, तब दमयंती न तो उन्हें दोष देती है, न ही उपालम्भ। वह उनका साथ छोड़ने की बात तो दूर, उनके साथ वनवास तक को स्वेच्छा से स्वीकार करती है।

"त्वया सह वनं गच्छामि, यत्र त्वं तत्राहम्।"

यह कथन न केवल उसकी प्रेम-निष्ठा को, बल्कि पत्नीधर्म की पराकाष्ठा को प्रकट करता है। वह नल के दुख में उनकी छाया बन जाती है - एक पतिव्रता नारी का यह गुण उसे साधारण स्त्री से श्रेष्ठ बनाता है।

3. वनवास की कठिनाइयों में धर्म की परीक्षा वन में जब नल संतुष्ट, दुखी और भ्रमित अवस्था में दमयंती को छोड़कर चले जाते हैं, तब यह उसके जीवन की सबसे कठोर परीक्षा बन जाती है। वह एकाकी, निराश्रय, भयभीत जंगल में होती है, परंतु फिर भी वह नल से कोई क्रोध, कोई कटुता नहीं रखती। कवि श्रीहर्ष लिखते हैं कि:

"दमयंती धर्मवती, नित्यं पतिव्रता व्रते।

न लप्स्यते पतिं त्यक्तुं, नालसः नापि दुखिता॥"

उसका यह भाव यह दर्शाता है कि उसके लिए नल केवल पति नहीं, धर्म का अंग हैं। उनका त्याग, उनका भ्रम, उनका कष्ट - सब उसे स्वीकार है, पर नल का वियोग स्वीकार नहीं।

4. क्षमा और सहनशीलता का अद्वितीय रूप पतिव्रता नारी का एक गुण होता है - क्षमा और सहनशीलता। दमयंती इस गुण की मूर्ति है। नल ने उसे एक संदेह के कारण वन में त्यागा, बिना कोई उत्तर दिए। यह त्याग किसी भी स्त्री के लिए अपमानजनक और पीड़ादायक होता, किंतु दमयंती फिर भी नल के लिए सद्भावना और श्रद्धा रखती है।

"नल मे पतिरस्तु नित्यं, दोषदर्शिनं स्यात् तथापि।"

यह कथन दर्शाता है कि दमयंती पति के दोषों को भी स्वीकार करने को तत्पर है। उसकी श्रद्धा व्यक्ति पर नहीं, धर्म पर आधारित है - और यही उसे "धर्मनिष्ठा की मूर्ति" बनाता है।

5. पति के उद्धार हेतु कर्तव्यपालन जब दमयंती को ज्ञात होता है कि नल अब किसी अन्य रूप में, परिव्राजक रूप में, कहीं जी रहे हैं, तो वह उन्हें पुनः प्राप्त करने के लिए योजना बनाती है। वह अपने पिता के माध्यम से दूत भेजती है, और उस दूत के माध्यम से नल तक अपना संदेश पहुँचाती है।

यहाँ भी वह अपने पति के स्वाभिमान का ध्यान रखती है, उसे विवश नहीं करती, केवल संकेत देती है कि वह उनका स्वागत करती है। उसका यह व्यवहार केवल बुद्धिमत्ता नहीं, गहन धर्मबोध का परिचायक है। वह नल की इच्छा और

आत्मसम्मान दोनों का सम्मान करती है - यही एक धर्मनिष्ठा नारी की विशिष्टता होती है।

6. यथार्थवादी धर्म: निष्ठा में अंधता नहीं दमयंती की धर्मनिष्ठा अंध नहीं है; वह विवेकपूर्ण है। जब समय आता है, वह नल से प्रश्न करती है, उनके व्यवहार की व्याख्या माँगती है, परंतु यह सब वह कटुता से नहीं, बल्कि संतुलन और करुणा से करती है।

श्रीहर्ष के श्लोकों में दमयंती का यह स्वरूप अत्यंत मर्मस्पर्शी है - वह रोती नहीं, वह उत्तर माँगती है, पर पति का अपमान नहीं करती। वह हर क्षण इस बात का ध्यान रखती है कि पतिव्रता होने का अर्थ आत्मविलोपन नहीं, बल्कि आत्मसमर्पण है - विवेकपूर्ण, मर्यादित और धर्मपूर्ण समर्पण।

7. आधुनिक दृष्टिकोण से पतिव्रता धर्म की पुनर्परिभाषा दमयंती का चरित्र हमें पतिव्रता धर्म की पुनः व्याख्या करने का अवसर देता है। यह केवल पति की सेवा या अंधानुकरण नहीं, बल्कि: पति के दोषों को समझकर भी सहारा देना संकट में साथ छोड़ने की बजाय सहचरी बनना परित्याग के बाद भी कटुता न रखना पति के पुनः उद्धार हेतु संकल्पित रहना धैर्य, शील और करुणा के साथ धर्म का निर्वाह करना यह दृष्टिकोण दमयंती को केवल एक पुराकालीन नायिका नहीं बनाता, बल्कि वह आज की स्त्री के लिए भी आदर्श प्रस्तुत करती है।

8. धार्मिक, सामाजिक और पारिवारिक मूल्यों का समन्वय दमयंती की पतिव्रता भावना केवल वैयक्तिक प्रेम या विवाह तक सीमित नहीं है। वह अपने परिवार, राज्य, संतान और समाज के लिए भी धर्म का पालन करती है। वह किसी भी स्थिति में झूठ, छल या पराधीनता का सहारा नहीं लेती। वह अपने आत्मसम्मान को बनाए रखते हुए धर्म का आदर्श रूप प्रस्तुत करती है।

दमयंती नैषधीयचरित की वह नायिका है जो "पतिव्रता" और "धर्मनिष्ठा" जैसे शब्दों को नई गरिमा प्रदान करती है। उसका जीवन संघर्षों से भरा है, परंतु उन संघर्षों में उसने अपने धर्म को छोड़ा नहीं। नल के प्रति उसकी प्रेमनिष्ठा, त्याग, क्षमा, बुद्धिमता और आत्मबल - यह सब उसे केवल एक काव्य-नायिका नहीं, भारतीय संस्कृति की प्रतीक बनाते हैं।

दमयंती का चरित्र यह सिखाता है कि नारी की महानता केवल उसकी भावुकता या त्याग में नहीं, बल्कि उसके विवेकपूर्ण धर्माचरण में है। वह अपने

पति को अपना भगवान मानती है, पर उसकी पूजा अंध नहीं है - वह जागरूक, तर्कशील और आत्मसम्मान से युक्त है।

9.6 सार - संक्षेप

दमयंती में विद्यमान विभिन्न गुणों को परिलक्षित कर उनकी चारित्रिक विशेषताओं के माध्यम से स्वरूप का वर्णन किया गया है। दमयंती तत्कालीन समाज में नारियों की चरित्र विशेषताओं का लक्षण प्रस्तुत करती है, इनके माध्यम से वर्तमान जीवन में नारियों की गुणों की तुलना की जा सकती है। अतः दमयंती के स्वरूप चित्रण के माध्यम से उनके विशेषताओं का अध्ययन किया गया है।

9.7 मुख्य शब्द

- 1 पराधीनता- परतंत्रता
2. पुरा- प्राचीन
3. निराश्रय- आश्रयरहित
4. स्वेच्छा- अपनी इच्छा
5. सत्ता- साम्राज्य

9.8 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

9.3

1. उत्तर: (B) नल
2. उत्तर: (A) विदर्भ
3. उत्तर: (C) भीम
4. उत्तर: (C) नल

9.4

5. उत्तर: (C) नैषधीयचरितम्
6. उत्तर: (A) हंस
7. उत्तर: (A) वन पर्व
8. उत्तर: (B) रूप और

9.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ देवर्षि सनाढ्य शास्त्री, नैषधीय चरितम - श्रीहर्ष, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 1985।
 2. श्री शेषराज शर्मा रेग्मी, नैषधीयचरितम-श्रीहर्ष, चौखंभा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2008।
 3. डॉ श्यामलेश कुमार तिवारी, नैषधीयचरितम- श्रीहर्ष, चौखंभा सुरभारती प्रकाशन 2017।
 4. डॉ शोभा भारद्वाज, नैषधीय चरितम - श्रीहर्ष, युवराज पब्लिकेशन, 2021 ।
-

9.10 अभ्यास प्रश्न

- प्रश्न 1: दमयंती का शारीरिक सौंदर्य कैसा था?
- प्रश्न 2: दमयंती के सौंदर्य का प्रभाव किस-किस पर पड़ा?
- प्रश्न 3: दमयंती के स्वरूप की तुलना किससे की गई है?
- प्रश्न 4: दमयंती के रूपवती होने के साथ उनमें अन्य गुण कौन से थे?
- प्रश्न 5: दमयंती के रूप का वर्णन करने वाले प्रमुख काव्य-प्रयुक्त अलंकार कौन से हैं?

इकाई 10

नैषधीयचरितम् के प्रथम सर्ग के 36 से 55 तक श्लोकों की व्याख्या

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 नैषधीयचरितम् के प्रथम सर्ग के 36 से 55 तक श्लोकों की व्याख्या

10.4 सार - संक्षेप

10.5 मुख्य शब्द

10.6 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

10.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

10.8 अभ्यास प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

नैषधीय चरितम् के नायक की स्वरूप का अध्ययन कर हम इनके प्रथम सर्ग के श्लोकों का व्याख्या सहित अध्ययन करेंगे। प्रस्तुत इकाई में नैषधीय चरितम् के प्रथम सर्ग से श्लोकों की व्याख्या की जाएगी। श्री हर्ष की परिचय तथा नल की स्वरूप वर्णन के पश्चात इस विषय के व्याख्यात्मक पक्ष का अध्ययन किया जाएगा। नैषधीय चरितम् के प्रथम सर्ग के 36 से 55 श्लोक तक नल की स्वरूप का वर्णन किया गया है। श्लोकों की व्याख्या के माध्यम से नल के स्वरूप का अध्ययन किया जाएगा। दमयंती के चरित्र चित्रण के पश्चात श्लोक के माध्यम से कथा को समझ जाना सुगम हो जाता है। इसी आधार पर संस्कृत भाषा के श्लोक के द्वारा उन में प्रतिपाद्य विषय को जानकर भाषा के ज्ञान तथा व्याकरण टिप्पणी आदि को समाहित कर व्याख्या की गई है।

10.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि-

1. नल के चरित्र को विशेष श्लोक के माध्यम से जान सके।
2. व्याकरण भावार्थ आदि के माध्यम से संस्कृत भाषा को समझ सके।
3. संस्कृत भाषा की व्याख्यात्मक तथा व्याकरण शैली से परिचित हो सके।
4. नैषधीय चरितम् के श्लोक के महत्व से परिचित हो सके।

10.3 नैषधीयचरितम् के प्रथम सर्ग के 36 से 55 तक श्लोकों की व्याख्या

नैषधीय चरितम् के प्रथम सर्ग के 36 से 55 श्लोकों की व्याख्या द्वारा प्रतिपाद्य विषय को प्रस्तुत किया गया है-

स्मरात्परासोरनिमेष लोचनाद्
विभेमि तद्भिन्नमुदाहरेति सा।
जनेन यूनः स्तुवता तदास्पदे
निदर्शनं नैषधमभ्यषेचयत् ॥ ३६ ॥

अन्वय-परासोः अनिमेषलोचनात् स्मरात् विभेमि । तद्भिन्नम् उदाहर इति सा यूनः स्तुवता जनेन तदास्पदे निदर्शनं नैषधम् अभ्यषेचयत् ।

शब्दार्थ-परासोः = प्राणों से रहित। अनिमेषलोचनात् = निमेषशून्य नयनों के कारण। स्मरात् = कामदेव से। विभेमि = डरती हूँ। तद्भिन्नम् = कामदेव से भिन्न अन्य जन को। उदाहर = उदाहरण के रूप में उपस्थित करो। इति = इस प्रकार। सा = दमयन्ती। यूनः स्तुवता = युवकों की प्रशंसा करती हुई। जनेन = सखियों के द्वारा। तदास्पदे = उस कामदेव के स्थान पर। नैषधम् = नल को। अभ्यषेचयत् = उपमान के पद पर प्रतिष्ठित किया।

प्रसंग-सन्दर्भ-श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में सौन्दर्यातिशय के कारण सखियों द्वारा कामदेव के स्थान पर नल को पुकारे जाने का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद-मरे हुए (अतएव) निमेषहीन नेत्रों वाले कामदेव से मैं डरती हूँ। (अतः) उससे भिन्न कोई दूसरा उदाहरण दो, ऐसा कहकर उस दमयन्ती ने युवकों की स्तुति करने वाले लोगों के द्वारा कामदेव के स्थान पर दृष्टान्त रूप में नल को अभिषिक्त कराया।

व्याख्या-कामदेव देव-योनि का होने के कारण निमेषहीन है। उसकी पलकें नहीं गिरती हैं। शंकरजी के द्वारा भस्म कर दिये जाने से वह मरा हुआ भी है। मरे हुए व्यक्ति की भी आँखें निमेषहीन होती हैं। अतः जब सखी या वन्दीजन युवकों की प्रशंसा करते समय कामदेव की उपमा देता है, तब दमयन्ती कहती है- "कामदेव की आँखें निमेषहीन हैं तथा वह मरा हुआ है, इसलिए मुझे डर लगता है। कामदेव के स्थान पर कोई दूसरा उदाहरण दो।" कामदेव के समान किसी दूसरे व्यक्ति के न होने से लोग नल की उपमा देते थे। इस प्रकार दमयन्ती ने लोक विश्रुत दृष्टान्त कामदेव के स्थान पर राजा नल को अभिषिक्त करा दिया। लोक में भी जब कोई व्यक्ति मर जाता है, तब उन्हीं गुणों से सम्पन्न किसी दूसरे व्यक्ति को उसका उत्तराधिकारी बनाया जाता है।

संस्कृत व्याख्या - परासोः = मृतकत् प्राणहीनतत्वात्। अनिमेषलोचनाद् = निमेषरहित नेत्रात्। स्मरात् = कामदेवात्। बिभेमि = भयमनुभवामि। तद्भिन्नम् = स्मराद् भिन्नम्। उदाहर= पुरुषम् उदाहरणरूपेण प्रस्तुतं कुरु। इति = अनेन प्रकारेण। यूनः = युवकान्। स्तुवता = प्रशंसां कुर्वता। जनेन= सखी समुदायेन। तदास्पदे = स्मरस्य उपमान स्थाने। नैषधम् = निषधानां राजानं नलम्। निदर्शनम् = उदाहरणम्। अभ्यषेचत् = अभिषेकं कृतवती स्थापयामास।

नलस्य पृष्टा निषधागता गुणान्

मिषेण दूतद्विजवन्दिचारणाः ।

निपीय तत्कीर्तिकथामथानया

चिराय तस्थे विमनायमानया ॥ ३७ ॥

अन्वय-निषधागता दूर्ताद्वजवन्दिचारणाः मिषेण नलस्य गुणान् पृष्टाः अथ तत्कीर्तिकथां निपीय अनया चिराय विमनायमानया तस्थे।

शब्दार्थ-निषधागता-निषध देश से आये हुए। । मिषेण = किसी बहाने से। नलस्य गुणान् = नल के गुणों को। पृष्टाः = पूछा। तत्कीर्तिकथाम् = उस राजा नल के यश सम्बन्धी वर्णन को। निपीय = भलीभाँति पान कर। विमनायमानया तस्थे अन्यमनस्क रहा करती थी।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में दमयन्ती द्वारा नल के गुणों को निषधवासियों से पूछे जाने का वर्णन है।

अनुवाद - (दमयन्ती द्वारा) निषध देश से आये हुए दूतों, ब्राह्मणों, बन्दीजनों, भाटों, चारणों आदि से किसी बहाने से नल के गुणों को पूछा गया। तब वह उस राजा नल के 'यश सम्बन्धी वर्णन को भली-भाँति सुनकर अथवा पान कर अन्यमनस्क हो जाया करती थी।

हिन्दी व्याख्या- जब निषध देश से कोई भी दूत, ब्राह्मण बन्दी तथा चारण आता था, तब वह दमयन्ती उससे किसी बहाने से अनेक प्रश्न उस देश का राजा कौन है ? प्रजा पालन कैसा करता है ? उसमें कौन-कौन से गुण हैं ? इत्यादि पूछती थी। इसके बाद उनके द्वारा सुनाये गये **विशेष** गुणों से प्रभावित होकर मन में सोचती थी कि ऐसे अत्यधिक सद्गुणों से युक्त राजा नल को मैं किस प्रकार प्राप्त कर सकेंगी ? इस भावना में चिरकाल तक उदास रहती थी अथवा ऐसे अत्यधिक सद्गुण सम्पन्न राजा नल के प्रति मेरा अनुराग हुआ है, अतएव उन्हें पाकर मैं कृतकृत्य हो जाऊँगी, इस भावना से चिरकाल तक आनन्दित होती थी।

संस्कृत व्याख्या -अनया दमयन्त्या निषधेभ्यः आगता दूता सन्देशहराः द्विजाः ब्राह्मणाः वन्दिनः स्तावकाः - सौन्दर्यशौर्यादीन् । पृष्टाः = जिज्ञासिताः। अथ = ततः। तत्कीर्ति नटाः। मिषेण = व्याजेन। नलस्य गुणान् = कथाम् = नलयशोगाथाम्। निपीय पानं कृत्वा, समाकर्ण्य। चिराय = अतिकालं यावत्। विमनायमानया = अन्तर्मनायमानया सत्या। तस्थे = स्थितम् ।

प्रियं प्रियां च त्रिजगज्जयिष्रियौ

**लिखाधिलीलागृहभित्तिकावपि।
इति स्म सा कारुतरेण लेखितं
नलस्य च स्वस्य च सख्यमीक्षते ॥ ३८ ॥**

अन्वय-सा त्रिजगज्जयिश्चियौ कौ अपि प्रियं प्रियां च अधिलीलागृहभित्ति लिखि इति कारुतरेण लेखितं नलस्य च स्वस्य च सख्यम् ईक्षते स्म।

शब्दार्थ-अधिलीलागृहभित्ति = विलासगृह की दीवार पर। त्रिजगज्जयिश्चियौ = तीनों लोकों की सुन्दरता को जीतने वाले। कौ अपि किन्हीं दो। प्रियम् प्रियाम् च = प्रेमी और प्रेयसी को। लिख = चित्र बनाओ। इति = इस प्रकार। कारुतरेण = श्रेष्ठ चित्रकार के द्वारा। लेखितम् = बनाये हुए। नलस्य = नल के। स्वस्य = अपने। सख्यम् = रूपसादृश्य का। ईक्षते = देखती थी।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में महाकवि द्वारा चित्र एवं स्वप्न आदि में दर्शनजन्य दमयन्ती के अनुराग का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

हिन्दी अनुवाद-वह दमयन्ती, "तीनों लोकों को जीतने वाली शोभा से युक्त किन्हीं दो प्रेमी और प्रेमिका के चित्र विलासगृह की दीवार पर बनाओ" ऐसा कहने पर चित्रकार द्वारा लिखे गये, अपने तथा नल के रूप-साम्य को देखा करती थी।

व्याख्या-प्रियतम के विषय में बातचीत करना, उनका चित्र देखना, उन्हें स्वप्न में देखना और स्वप्न की बातें करना विरहिणियों के मनोविनोद के उपाय होते हैं। अतः प्रियतम नल के चित्र-दर्शन द्वारा उत्कण्ठा दूर करने की इच्छा से वह दमयन्ती चित्रकारों से कहती थी- "लीलागृह की भित्ति पर संसार के सबसे सुन्दर किसी प्रेमी-प्रेमिका का चित्र बनाओ" तब चित्रकारों के द्वारा स्वाभाविक नल और दमयन्ती का चित्र बना दिया जाता था, क्योंकि ये दोनों ही संसार में सर्वाधिक सुन्दर थे, जिसे वह देखा करती थी और दोनों के सौन्दर्य की समानता को देखकर मुग्ध होती थी।

व्याख्या- अधिलीलागृहभित्ति = क्रीडागृहस्य भित्तौ विलास भवन कुड्ये वा। त्रिजगज्जयिश्चियौ = त्रिलोकाभिभाविनी शोभायुक्तौ। कौ अपि = द्वौ। प्रियम् = पुरुषम्। प्रियाम् = प्रेयसीम्। लिख = चित्रीकुरु । इति = एवं प्रकारेण आदिश्य। सा दमयन्ती। कारुतरेण = कुशल चित्रकारेण। लेखितम् चित्रितम्। स्वय = निजस्य

नलस्य नैषधस्य। सख्यम् = सौन्दर्य-साम्यम्। ईक्षते स्म अद्राक्षीत पश्यति स्म वा।

मनोरथेन स्वपतीकृतं नलं
निशि क्व सा न स्वपती स्म पश्यति।
अदृष्टमप्यर्थमदृष्टवैभवात्
करोति सुप्तिर्जनदर्शनाऽतिथिम् ॥ ३९ ॥

अन्वय- स्वपती सा मनोरथेन स्वपतीकृतं नलं क्व निशि न पश्यति स्म ?
सुप्तिः अदृष्टवैभवात् अदृष्टमपि अर्थ जनदर्शनाऽतिथिं करोति।

शब्दार्थ- मनोरथेन संकल्प के द्वारा / स्वपतीकृतं अपने पति बनाये गये।
स्वपती = सोती हुई। क्वनिशि = किस रात्रि में। न पश्यति स्म = नहीं देखती थी।
सुप्तिः स्वप्न । अदृष्टवैभवात् = पुरातन भाग्य के बल से। अदृष्टमपि अर्थम् न देखे गये विषय को भी। जनदर्शनातिथिम् जनों का दर्शनगोचर।

प्रसंग-सन्दर्भ- श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में दमयन्ती द्वारा अपने प्रारब्ध कर्मों के सुपरिणामस्वरूप नल को देखे जाने का वर्णन है।

अनुवाद- सोती हुई वह दमयन्ती संकल्प के द्वारा अपने पति बनाये गये नल को किस रात्रि में नहीं देखती थी ? अर्थात् प्रत्येक रात में वह नल को स्वप्न में देखती थी, क्योंकि स्वप्न पुरातन भाग्य के बल से पूर्व में न देखे गये विषय को भी जनों का दर्शनगोचर बना देता है।

व्याख्या- यद्यपि दमयन्ती ने नल को चित्रादि में देखा था, कभी साक्षात् नहीं देखा था, फिर भी चित्रादि के स्मरण से वह स्वप्न में नल को देख लेती थी, क्योंकि स्वप्न पंहुले कभी न देखे गये पदार्थ को भी पूर्वजन्मकृत भाग्य के बल से मनुष्य को अवश्य दिखला दिया करता है। चूँकि दमयन्ती को राजा नल के दर्शन भाग्य द्वारा कराये गये हैं, अतः विवाह नल के प्रति भाग्य द्वारा अनुमोदित प्रतीत होता है।

संस्कृत व्याख्या- स्वपती = शयनं कुर्वती। सा= भैमी दमयन्ती। मनोरथेन= संकल्पेन अभिलाषेण वा। स्वपतीकृतं = स्वभर्तृकृतं स्वनाथकृतं वा। नलं नैषधं।

क्व कुत्र। निशि रात्रौ । न पश्यति स्म = स्वप्ने रात्रौ दृष्टवती। तथाहि सुप्तिः = स्वप्नः, अदृष्टवैभवात् = धर्माऽधर्मप्रभावात् प्राक्तनभाग्यबलात् वा। अर्धम् = वस्तु। जनदर्शनातिथिम् = लोकलोचनगोचरं करोति = विदधाति ।

**निमीलितादक्षियुगाच्च निद्रया
हृदोऽपि बाह्येन्द्रियमौनमुद्रितात् ।
अदर्शि संगोप्य कदाप्यवीक्षितो
रहस्यमस्याः स महन्महीपतिः ॥४० ॥**

अन्वय-निद्रया निमीलितात् अक्षियुगात् च बाह्येन्द्रियमौनमुद्रितात् हृदः अपि संगोप्य कदापि अवीक्षितः महत् रहस्यं स महीपतिः अस्याः अदर्शि।

शब्दार्थ-निद्रया= निद्रा ने। निमीलितात् =मूँदे गये। अक्षियुगात्= दो नेत्र से। बाह्येन्द्रियमौनमुद्रितात् = बाहरी इन्द्रिय के व्यापारभाव से निष्क्रिय। हृदः अपि= हृदय से भी। संगोप्य = छिपाकर कदापि कभी भी। अवीक्षितः न देखे गये। महत् रहस्यम् = अत्यधिक रहस्य रूप। महीपतिः= राजा। अदर्शि = दिखला दिया।

प्रसंग-सन्दर्भ-श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में निद्रा द्वारा दमयन्ती को नल के दर्शन कराये जाने का वर्णन है।

अनुवाद - निद्रा ने मूँदे गये दोनों नेत्रों से और बाह्य इन्द्रिय के व्यापार भाव से निष्क्रिय हृदय में भी छिपाकर कभी भी न देखे गये अत्यधिक रहस्यरूप उस राजा नल को इस दमयन्ती को दिखला दिया।

व्याख्या-जिस प्रकार कोई चतर दती किसी प्रियतम नायक को दसरो से छिपाकर नायिका के लिए दिखला देती है. उसी प्रकार निद्रा ने भी कभी नहीं देखे गये एवं अतिशय रहस्य बने हुए इस प्रसिद्धतम नायक राजा नल को नायिका दमयन्ती को दिखला दिया। कहने का तात्पर्य यह है कि दमयन्ती ने नल को स्वप्न में देखा, किन्तु उसके नेत्रद्वय को तथा बाह्यइन्द्रिय की क्रिया से रहित हृदय को भी इसका पता न लग सका।

संस्कृत व्याख्या- निद्रया-सुषुप्त्या, पक्षान्तरे, निद्राजन्याज्ञानेन । निमीलितात् = मुद्रितात्, पक्षान्तरे-तिरोहितात् । अक्षियुगात् = नेत्रयुगलात्,

पक्षान्तरे कलियुगत् च बाह्येन्द्रि मौनमुद्रितात् = बाह्य इन्द्रियाणां चक्षुरादीनां मौनेन स्वविषयग्रहणाभावेन मुद्रितात् प्रति स्तब्धात् = मनसः बहिः-स्वातन्त्र्यात्-इति भावः, हृदः अपि । = हृदयात् अपि। सङ्गोप्य गोपयित्वा इत्यर्थः। कदादपि कस्मिन्नपि काले। अवीक्षितः = अदृष्टः अस्याः दमयन्त्याः । महत्वपूर्ण गोपनीय वस्तु, सः पूर्वक्तः महीपतिः = राजा नलः इत्यर्थः। अदर्शि = दर्शयाञ्च = क्रे। यथा काचित् दासी कस्यैचित् कामिन्यै कञ्चन कान्तं संगोप्य दर्शयति तथैव निद्रा दमयन्त्यै नलं संगोप्य अदर्शयत्।

अहो अहोभिर्महिमा हिमागमे-
 स्यतिप्रपेदे प्रति तां स्मरार्दिताम्।
 तपर्तुपूर्तावपि मेदसां भरा
 विभावरीभिर्बिभरांबभूविरे ॥ ४१ ॥

अन्वय - अहो स्मरार्दिताम् तां प्रति हिमागमेऽपि अहोभिः महिमा अति प्रपेदे। तपर्तुपूर्तौ अपि विभावरीभिः मेदसां भरा विभरांबभूविरे।

शब्दार्थ - अहो = आश्चर्य है। अहोभिः दिवसों ने। हिमागमे हिम आगमे = हेमन्त ऋतु के आगमन पर, शीत ऋतु में। अपि = भी। स्मरार्दिताम् = स्मर + आर्दिताम् = कामदेव के द्वारा पीडिता को। ताम् प्रति = उसके प्रति, दमयन्ती के प्रति। महिमा वृद्धि, दीर्घता, बड़ा होना। अति प्रपेदे = अधिक मात्रा प्राप्त की गयी। विभावरीभिः = रात्रियों ने। तपर्तुपूर्ती अपि = तप + ऋतु + पूर्ती अपि = ग्रीष्म ऋतु की समाप्ति पर भी। मेदसां भराः = मज्जा की प्रचुरता, चर्बी की अधिकता। विभरांबभूविरे = धारण की गयी।

प्रसंग-सन्दर्भ-श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में नल के विरह में दमयन्ती के विरहभाव का चित्रण किया गया है।

अनुवाद- आश्चर्य की बात है कि काम-पीडित उस (विरहिणी) के लिए हेमन्त ऋतु के आ जाने पर भी दिनों ने दीर्घता को प्राप्त कर लिया तथा ग्रीष्म ऋतु की समाप्ति पर रात्रियों ने भी अतिशय स्थूलता अर्थात् दीर्घता धारण कर ली।

व्याख्या- कष्ट के क्षण हमेशा बड़े होते हैं और विरहिणियों के लिए जो सद्यः पतिप्रणयिहृदया होती हैं, उनके लिए तो एक क्षण एक वर्ष के समान और

एक दिन एक युग के समान लगता है अर्थात् अल्पकाल भी बहुत बड़ा प्रतीत होने लगता है। यही कारण है कि उस विरहिणी दमयन्ती के लिए हेमन्त ऋतु में भी दिन बड़े हो रहे थे और ग्रीष्म ऋतु में रातें बड़ी हो रही थीं। जबकि स्वाभाविकता इसके विपरीत होती है। ग्रीष्म में रातें और हेमन्त में दिन छोटे होते हैं, परन्तु नल की वियोगिनी दमयन्ती को हेमन्त ऋतु सम्बन्धी दिन तथा ग्रीष्मकालीन रात्रियाँ अत्यधिक लम्बी प्रतीत हो रही थीं।

संस्कृत व्याख्या- अहो= आश्चर्यम्, यत्। अहोभिः =दिनैः हिमागमे अपि= शीतौः आगमे अपि । स्मरार्दिताम् = ताम् कॉमपीडिताम्, दमयन्तीम् प्रति, महिमा दीर्घता। अतिप्रपेदे अतिमात्रं प्राप्ता, दिवसा अति दीर्घाः बभूवुः इत्यर्थः विभावरीभिः अपि रजनीभिः अपि । तपर्तपुर्ती अपि= ग्रीष्मर्तीः समाप्ती अपि मेदसां भराः = मज्जायाः अधिकता, स्थूलता। विभरांबभूविरे= बधिरे।

स्वकान्तिकीर्तिव्रजमौक्तिकस्रजः

श्रयन्तमन्तर्घटनागुणश्रियम्।

कदाचिदस्या युवधैर्यस्रोपिनं

नलोऽपि लोकादशृणोद् गुणोत्करम् ॥ ४२ ॥

अन्वय-नलः अपि कदाचित् लोकात् स्वकान्तिकीर्तिव्रजमौक्तिकस्रजः अन्तर्घटनागुणश्रियं श्रयन्तं युवधैर्यलोपिनं अस्याः गुणोत्करं अशृणोत् ।

शब्दार्थ-नलः अपि = नल ने भी। कदाचित् = किसी समय। लोकात् = लोगों से। स्वकान्तिकीर्तिव्रजमौक्तिकस्रजः अपने सौन्दर्य सम्बन्धी यशः समूह रूप मोतियों की माला को। अन्तर्घटनागुणश्रियम् = अन्दर से गूँथने वाले सूत्र की शोभा को। श्रयन्तम् = धारण करते हुए। युवधैर्यलोपिनम् = युवकों के धैर्य को लुप्त करने वाले। गुणोत्करम् = गुण समूह को। अशृणोत् = सुना।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में नल का भी दमयन्ती के प्रति अनुराग सूचित हो रहा है।

अनुवाद-नल ने भी किसी समय लोगों से अपने सौन्दर्य सम्बन्धी यशः समूह रूप मोतियों की माला को अन्दर से गूँथने वाले सूत्र की शोभा को धारण

करते हुए युवकों के धैर्य को लुप्त करने वाले इस दमयन्ती के सौन्दर्य सम्बन्धी गुण समूह को सुना।

हिन्दी व्याख्या-यहाँ तक कवि द्वारा नल के सौन्दर्यख्यान का उल्लेख किया गया, अब दमयन्ती के अप्रतिम सौन्दर्य का वर्णन है। दमयन्ती का सौन्दर्य युवकों के धैर्य को समाप्त करने वाला था। उसके सौन्दर्य से उत्पन्न कीर्ति समूह मोतियों की माला के समान थी और उसके गुण बीच में गुंथे हुए सूत्र के समान थे। दमयन्ती के इस गुण-समूह को किसी समय नल ने लोगों से सुना।

संस्कृत व्याख्या- नलः अपि नैषधः अपि कदाचित् कस्मिंश्चित् समये। लोकात् आगन्तुकजनात्, मौक्तिकस्रक मुक्ताहारः तस्याः अन्तः अभ्यन्तरे घटनागुणश्रियं गुम्फनसूत्रलक्ष्मीम्-शोभाम् श्रयन्तं भजन्म्। युवक ौर्यलोपिनम् = तरुण-धीरत्व नाशकम्, अस्याः दमयन्त्याः गुणोत्करम् = सौन्दर्यसन्दोहम्-सौन्दर्य सौशील्यादिगुण समूहम् । अशृणोत् = श्रुतवान् ।

तमेव लब्ध्वावसरं ततः स्मरः

शरीरशोभाजयजातमत्सरः ।

अमोघशक्त्या निजयेव मूर्तया

तया विनिर्जेतुमियेष नैषधम् ॥ ४३ ॥

अन्वय- ततः शरीरशोभाजयजातमत्सरः स्मरः तमेव अवसर लब्ध्वा मूर्तया निजया अमोघशक्त्या इव तय नैषधं विनिर्जेतु इयेष ।

शब्दार्थ-ततः := तब दमयन्ती के गुणों का (राजा नल द्वारा) श्रवण कर लिए जाने के पश्चात्। शरीर - शारीरिक सौन्दर्य के जीत लिये जाने से द्वेष मुक्त। स्मरः = कामदेव ने। तमेव = उसी। अवसरं लब्ध्वा = अवसर को पाकर। मूर्तया = शरीर धारिणी। निजया अमोघशक्त्या = अपनी सफल शक्ति के समान। तया = उस (दमयन्ती) के द्वारा। विनिर्जेतुं इयेष = जीतने की इच्छा की।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में दमयन्ती के प्रति नल का रागोदय भाव वर्णित है।

हिन्दी अनुवाद-दमयन्ती के गुणों का (राजा नल द्वारा) श्रवण कर लिये जाने के पश्चात् शारीरिक सौन्दर्य को जीत लिये जाने से द्वेषयुक्त कामदेव ने

उसी अवसर को पाकर शरीरधारिणी अपनी अमोघशक्तिरूपिणी दमयन्ती के द्वारा राजा नल को जीतने की इच्छा की।

व्याख्या-संसार का सामान्य नियम है कि कोई व्यक्ति किसी प्रबल व्यक्ति से पराजित होकर उसके साथ द्वेष करता हुआ अवसर पाकर अपनी अमोघ शक्ति से उसे पराजित करने की इच्छा करता है। यही बात यहाँ कामदेव के साथ चरितार्थ हो रही है। कामदेव को अपने सौन्दर्य पर गर्व था, लेकिन समस्त ब्रह्माण्ड में सर्वाधिक सौन्दर्यशाली राजा नल ने सौन्दर्य में कामदेव को पराजित कर दिया था। इसे जानकर कि मैं राजा नल के द्वारा सौन्दर्य में पराजित कर दिया गया हूँ, उसके मन में राजा नल के प्रति मत्सरभाव उत्पन्न हो गया अर्थात् वह राजा नल का शत्रु बन गया, नल से बदला लेने का अवसर ढूँढने लगा। जब राजा नल के हृदय में दमयन्ती के प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया, तब उचित अवसर जानकर नल से प्रतिकार लेने के इच्छुक कामदेव ने दमयन्ती के रूप में विद्यमान अपनी अमोघ शक्ति का प्रयोग राजा नल पर करने की इच्छा की।

संस्कृत व्याख्या-ततः = दमयन्त्याः गुणश्रवणानन्तरम्। शरीरशोभाजयजातमत्सरः = देहसौन्दर्यस्य जयेन जात् उत्पन्नः मत्सरः वैरः यस्य ताद्वशः। स्मरः = कामः । तमेव = गुणश्रवणात्मकम् एव । अवसरम् = प्रसङ्ग । लब्ध्वा = प्राप्य। मूर्तयाः आमोघशक्त्या इव = अकुण्ठसामर्थ्येन इव। तया = दमयन्त्या। नैषधं नलम् विनिर्जेतुम् = पराभवितुम् । इयेष = इच्छति स्म। = शरीरधारिण्या। निजया = स्वकीयया।

अकारि तेन श्रवणतिथिर्गुणः

क्षमाभुजा भीमनृपात्मजाश्रियः।

तदुच्चधैर्यव्ययसंहितेषुणा

स्मरेण च स्वात्मशरासनाश्रयः ॥४४॥

अन्वय- तेन क्षमाभुजा भीमनृपात्मजाश्रियः गुणः श्रवणातिथिः अकारि च तदुच्चधैर्यव्यय संहितेषुणा स्मरेण स्वात्मशरासनाश्रयः (गुणः श्रवणातिथिः अकारि)।

शब्दार्थ- तेन= उसने। क्षमाभुजा= पृथ्वी के पालक राजा ने। भीमनृपात्मजाश्रितः राजा भीम की कन्या (दमयन्ती) के अधीन रहने वाले। गुणः=

(सौन्दर्य और वैदुष्य आदि गुणों को। श्रवणातिथि:= कान का अतिथि। अकारि = बनाया। तदुच्चधैर्यव्यय संहितेषुणा = उस राजा नल के उत्कृष्ट धैर्य को नष्ट करने के लिए बाणों का संधान करने वाले। स्मरेण = कामदेव ने। स्वात्मशरासनाश्रयः = अपने धनुष पर आश्रित रहने वाली। गुणः = प्रत्यञ्चा को।

प्रसंग-सन्दर्भ-श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में दमयन्ती के प्रति अनुरागी राजा नल के काम संतप्त मन का चित्रण किया गया है।

अनुवाद-उस राजा नल ने राजा भीम की कन्या दमयन्ती के अधीन रहने वाले सौन्दर्य और वैदुष्य आदि गुणों को कान का अतिथि बनाया अर्थात् कान तक पहुँचाया तथा उस (नल) के अत्यधिक धैर्य को नष्ट करने के लिए बाणों का सन्धान करने वाले कामदेव के द्वारा अपने धनुष पर आश्रित रहने वाली प्रत्यञ्चा को अपने धनुष पर चढ़ाया गया।

व्याख्या-जैसे ही राजा नल ने दमयन्ती के सौन्दर्य सम्बन्धी गुणों का श्रवण किया, वैसे ही कामपीडित नल का धैर्य नष्ट हो गया, क्योंकि नल दमयन्ती प्रति अतिशय रूप से अनुरक्त हो गये थे। जैसे ही कामदेव ने दमयन्ती के गुणों को सुना, नल के अत्यधिक धैर्य को नष्ट करने के लिए बाण चढ़ाये हुए कामदेव ने अपने धनुष की डोरी को कान तक खींचा।

संस्कृत व्याख्या - तेन = राजा नलेन। भीमनृपात्मजायाः दमयन्त्याः। श्रियः गणः = तदीयः सौन्दर्यादिः । श्रवणातिथिः = श्रोत्रविषयः । अकारि = कृतः श्रुत इत्यर्थः। ततः तदुच्चधैर्यव्ययसंहितेषुणा = तस्य नलस्य। उन्नत धैर्यनाशाय संहितेषुणा स्मरेण च स्वात्मनः शरासनाश्रयः = चापनिष्ठो। गुणो = मौर्वी। श्रवणातिथिरकारि। आकर्ण कृत इत्यर्थः।

अमुष्य धीरस्य जयाय साहसी

तदा खलु ज्यां विशिखैः सनाथयन् ।

निमज्जयामास यशांसि संशये

स्मरस्त्रिलोकीविजयार्जितान्यपि ॥ ४५ ॥

अन्वय-तदा खलु अमुष्य धीरस्य जयाय विशिखैः ज्यां सनाथसन् साहसी स्मरः त्रिलोकीविजयार्जितानि यशांसि अपि संशये निमज्जयामास ।

शब्दार्थ - तदा = उस समय। खलु निश्चय ही। अमुष्य = इसके। धीरस्य धीर स्वभाव वाले नल के। जयाय = जीतने के लिए। विशिखैः = बाणों के द्वारा। ज्याम् = धनुष की डोरी को। सनाथयन् = संयुक्त । स्मरः कामदेव ने। त्रिलोकी विजयार्जितानि तीनों लोकों पर विजय करता हुआ। साहसी = साहस वाले। स्मरः करने के कारण प्राप्त। यशसि यशों को। संशये सन्देह में। निमज्जयामास = डुबा दिया।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में कवि श्रीहर्ष नल के धैर्य-लोपरूपी कार्य को कामदेव के लिए दुष्कर बता रहे हैं।

अनुवाद-नल का धैर्य नष्ट करने हेतु कामदेव के संकल्प के समय इस स्थिर चित्त वाले राजा नल को जीतने के लिए बाणों से धनुष की डोरी को संयुक्त करते हुए साहसी कामदेव ने तीनों लोकों को जीतने से प्राप्त यशों को भी सन्देह में डुबा दिया था।

व्याख्या-राजा नल स्वभाव से अत्यधिक धीर थे। दमयन्ती के प्रेम और वियोग ने भी उनके स्वभाव को चंचल नहीं बनाया था। कामदेव ने यह निश्चय किया कि मैं राजा नल का धीर स्वभाव समाप्त करके इसे चंचल बना दूँगा। इस प्रकार मैं राजा नल पर विजय प्राप्त कर लूँगा। ऐसा निश्चय करके कामदेव ने अपने धनुष को डोरी पर बाणों को रखा। कामदेव नल को नहीं जीत सकेगा। इस प्रकार उसने अपने त्रिलोक-विजय के यश को संशय में डाल दिया। वह राजा नल को नहीं जीत सकेगा, इससे उसका त्रिलोक-विजय का यश नष्ट हो जायेगा।

व्याख्या - तदा = तस्मिन् समये। खलु निश्चयेन। अमुष्य धीरस्य धैर्य-शालिनः नृपस्य नलस्य । जयाय = विजयाय, = जेतुम्। विशिखैः = बाणैः। ज्याम् = प्रत्यञ्चाम् । सनाथयन् = बाणयुक्तां कुर्वन् । साहसी = साहसपूर्णः। स्मरः = कामः। त्रिलोकीविजयार्जितानि = त्रिभुवनविजयेन प्राप्तानि । यशांसि = यशः समूहम् । संशये = सन्देहे। निमज्जयामास = पातयामास ।

अनेन भैमीं घटयिष्यतस्तथा
 विधेरबन्धयेच्छतया व्यलासि तत् ।
 अभेदि तत्तादृगनङ्गमार्गणै
 र्यदस्य पौष्यैरपि धैर्यकञ्चुकम् ॥ ४६ ॥

अन्वय-अस्य तत् तादृक् धैर्यकञ्चुकं पौष्यैः अपि अनङ्गमार्गणैः यत् अभेदि तत् तथा अनेक भैमीं घटयिष्यतः विधेः अवन्धयेच्छतया व्यलासि ।

शब्दार्थ - अस्य = इस नल का। तादृक् = उस प्रकार। धैर्यकञ्चुकम् = धैर्यरूपी कवच। पौष्यैरपि = कुसुमनिर्मित। अनङ्गमार्गणैः = कामदेव के बाणों से। अभेदि= विदीर्ण हो गया। अनेन =इस नल के साथ। भैमीम् = दमयन्ती का। घटयिष्यतः =संगम कराने वाले। विधेः विधाता के। अबन्धयेच्छतया = अमोघ संकल्प का ही। व्यलासि =विलास था।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में महान् एवं धीर व्यक्ति होते हुए नल के संयोगवश काम के वशीभूत हो जाने का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद - नल के साथ दमयन्ती का संगम कराने वाले विधाता (ब्रह्मा) के अमोघ संकल्प का ही विलास था कि कामदेव के वैसे कुसुम निर्मित वाणों से भी नल का धैर्यरूपी कवच भिन्न हो गया।

व्याख्या- यद्यपि साहसी कामदेव ने अपने बल से तीनों लोकों के लोगों पर विजय प्राप्त कर ली थी, इसलिए उसका यश चारों ओर फैल गया था, लेकिन जब उसने धैर्यशाली नल पर विजय प्राप्त करने की इच्छा की, तब अपने यश को सन्देह में डाल दिया, क्योंकि राजा नल महान् धैर्यशाली थे, उन्हें कामदेव के द्वारा जीत पाना एक दुष्कर कार्य था, फिर भी उसने नल से सामना करने का साहस किया। जिससे दुर्भेद्य इस नल का धैर्यरूपी कवच कामदेव के पुष्पमय अर्थात् अति कोमल वाणों से विदीर्ण हो गया, उस कारण उस नल के साथ उस प्रकार दमयन्ती का संगम कराने वाले भाग्य के सफल मनोरथ का ही वह विलास था।

व्याख्या-अनेन-नलेन सह। भैमीम् = दमयन्तीम् । घटयिष्यतः = संयोजयिष्यतः । विधेः = ब्रह्मणः अमोघसंकल्पत्वेन तत्। तथा = तेन प्रकारेण

विलासितम्। चत् पौष्पौः अपि = पुष्पमयैः अपि न तु कठिनैरितिभावः। अनङ्गबाणैः, अस्य-नलस्य, तादृक = अतिकठोरम् । तत् = प्रसिद्धम् । धैर्यकञ्चुकम् = ४ गीरत्वकवचम् । अभेदि = भिन्नम्। दमयन्तीनलयोः दाम्पत्यघटनाय कामबाणैः नलधैर्य कञ्चुकभेदनाद् विधातुः अमोघसंकल्पत्वं विज्ञायते इत्यर्थः, दैवानुकूल्ये किं दुष्करम् ? इति भावः।

किमन्यदद्यापि यदस्त्रतापितः

पितामहो वारिजमाश्रयत्यहो।

स्मरं तनुच्छायतया तमात्मना

शशाक शङ्के स न लङ्गितुं नलः ॥ ४७ ॥

अन्वय-किमन्यत् ? अहो, यदस्त्रतापितः पितामहः अद्यापि वारिजं आश्रयति। तं स्मरं स नलः आत्मनः तनुच्छायतया लङ्घितुं न शशाक (इति) शङ्के।

शब्दार्थ - किमन्यत् = और क्या कहा जाये। यदस्त्रतापितः = जिसके अस्त्र से संतप्त किये गये। पितामहः = ब्रह्मा। वारिजम् = कमल का। आश्रयन्ति आश्रय लिए हुए हैं। तं स्मरम् उस कामदेव को। आत्मनः = अपनी। तनुच्छायतया = परछाई होने के कारण। लङ्घितम् = लाँघने के लिए। न शशाक = समर्थ न हो सके। शङ्के = शङ्का करता हूँ।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में धैर्य भङ्ग के कारण राजा नल द्वारा कामदेव को न लाँघ जाने का वर्णन किया जा रहा है।

अनुवाद-और क्या कहा जाय ? आश्चर्य है कि जिस कामदेव के अस्त्रों से ब्रह्मा आज भी कमल का आश्रय लिए हुए हैं, उस कामदेव को वह नल अपने शरीर की कान्ति से युक्त होने के कारण अतिक्रमण कर सकने में समर्थ न हो सके, ऐसा मैं मानता हूँ।

व्याख्या-कवि का मानना है कि जिस कामदेव ने अतिशय वृद्ध को या पिता के भी पिता ब्रह्मा जी को ऐसा संतप्त कर दिया कि बहुत समय के व्यतीत होने पर भी वे आज तक सन्ताप निवारक शीतल कमल पर निवास करते हैं, वह

कामदेव अपने प्रबल प्रतिद्वन्द्वी नल को नहीं संतप्त करेगा, यह कैसे सम्भव है ?

अपह्वानस्य जनाय यन्निजाम्
अधीरतामस्य कृतं मनोभुवा।
अबोधि तज्जागरदुःखसाक्षिणी
निशा च शय्या च शशाङ्ककोमला ॥ ४९ ॥

अन्वय-निजां अधीरतां जनाय अपह्वानस्य अस्य मनोभुवा यत् कृतं तत् जागरदुःखसाक्षिणी शशाङ्ककोमला शय्या च निशा च अबोधि।

शब्दार्थ - निजाम् = अपनी। अधीरताम् = अधीरता को, व्याकुलता को। जनाय = लोगों से। अपह्वानस्य = छिपाते हुए। अस्य = इस राजा नल के साथ। मनोभुवा = कामदेव ने। जागरदुःखसाक्षिणी = जागरण के दुःख की साक्षी बनी हुई। शशाङ्ककोमला = मृगविशेष की गोद के समान कोमल। अबोधि = जाना।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में विरही राजा नल की अतिशय अधीरता का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद-अपनी अधीरता को लोगों से छिपाते हुए इस राजा नल के साथ कामदेव ने जो किया था, उसे जागरण के दुःख की साक्षी बनी हुई मृगविशेष की गोद के समान कोमल बिस्तर और रात को ही जाना

हिन्दी व्याख्या-दमयन्ती के वियोग में दुःखी नल अपनी व्याकुलता को लोगों से छिपाने का प्रयास करते रहे। इसीलिए नल की दमयन्ती-विरहजन्या अधीरता को दूसरे किसी ने नहीं पहचाना, वे रात भर जागते हुए कोमल शय्या पर लेटे रहते थे अर्थात् अपनी शय्या पर करवटें ही बदलते रहते थे और रातें व्यतीत करते रहते थे। अतः राजा नल की शारीरिक एवं मानसिक कष्टजन्य विकलता को प्रत्यक्ष रूप से देखने वाली मृगविशेष की गोद के समान अथवा चन्द्रमा के समान शुभ्र और कोमल शय्या ही थी अथवा रात्रि ही थी।

संस्कृत व्याख्या - निजाम् = स्वकीयाम्। अधीरताम् = अधैर्यं चपलतामिति भावः। जनाय = लोकाय। अपह्वानस्य = गोपायतः दर्शनं न कारयतः, अस्य नलस्य। मनोभुवा = कामदेवेन यज्जागरणप्रलापादिकं कृतम् तत् सर्वं

जागरणदुःखस्य साक्षिणी-अनिद्रापीडायाः साक्षाद्दष्टी, शशाङ्ककोमला = शशस्य मृगविशेषस्य अङ्क उत्सङ्ग तद्वत् कोमला मृदुला। शय्या च शयनीयं च। निशा च = रात्रिश्च, अबोधि = जानाति स्म ज्ञातवती वा। निशा शय्या च नलजागरदुःखसाक्षिणीति भावः ।

**स्मरोपतप्तोऽपि भृशं न स प्रभु-
विदर्भराजं तनयामयाचत ।
त्यजन्त्यसूशर्म च मानिनो वरम्
त्यजन्ति न त्वेकमयाचितव्रतम् ॥५० ॥**

अन्वय - भृशं स्मरोपतप्तोऽपि स प्रभुः विदर्भराजं तनयां न अयाचत। मानिनः असून् शर्म च वरं त्यजन्ति, तु एकम् अयाचितवृत्तं न त्यजन्ति ।

शब्दार्थ - भृशम् = अत्यधिक। स्मरोपतप्तः = काम द्वारा संतप्त हो जाने पर। विदर्भराजम् = विदर्भ

अनुवाद-काम द्वारा अत्यधिक संतप्त किये जाने पर भी राजा नल ने विदर्भ नरेश भीम से उनकी पुत्री दमयन्ती को नहीं माँगा, क्योंकि मनस्वीजन प्राणों और सुख को भले ही छोड़ दिया करते हैं, लेकिन एक-मात्र याचना न करने के नियम का त्याग नहीं करते।

व्याख्या-चूँकि नल ने अपनी कान्ति से कामदेव को नीचा दिखा दिया था अर्थात् पराजित कर दिया था, इसलिए कामदेव सदैव नल से बदला लेने के लिए इच्छा रखता था। इसलिए उसने राजा नल के हृदय में दमयन्ती के प्रति अनुरागातिशय उत्पन्न कर दिया, जिससे वे संतप्त होकर रातें जागते हुए व्यतीत कर देते थे। ऐसी दशा को जानकर कामदेव चाहते थे कि यह राजा नल विदर्भ नरेश भीम से उनकी कन्या दमयन्ती की माँग करे, लेकिन स्वाभिमानी राजा नल ने कामसंतप्त होते हुए भी दमयन्ती की याचना नहीं की, क्योंकि मनस्वी जनों की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि वे अपने प्राणों और सुखों का त्याग सरलतापूर्वक कर सकते हैं, लेकिन किसी से न माँगने सम्बन्धी अपने नियम का कभी भी उल्लंघन नहीं किया करते।

संस्कृत व्याख्या - भृशम् = अधिकं गाढम्, स्मरोतप्ताः। अपि कामसंतप्तः अपि, प्रभुः समर्थः सः नलः विदर्भराजं भीमनृपतिं तनयां दमयन्तीं। न अयाचत् = न याचितवान् । तथाहि-मानिनः अभिमानिनः मनास्विनः इत्यर्थः, असून् प्राणान्, शर्म च सुखं च त्यजन्ति जहति। वरं = प्राणसुखत्यागोऽपि मनाक् प्रियः। तु = किन्तु एकम् = अद्वितीयम्, अचायितव्रतम् = अयाचनानियमं तु न त्यजान्ति नो जहति, मनस्विनां प्राणादित्यागदुःखादपि याचनादुःखं दुःसहं भवनीति भावः ।

मृषाविषादाभिनयादयं क्वचित्

जुगोप निःश्वासततिं वियोगजाम् ।

विलेपनस्याधिकचन्द्रभागता

विभावनाच्चापललाप पाण्डुताम् ॥५१॥

अन्वय-अयं वियोगजां विश्वासततिं क्वचित्, मृषाविषादाभिनयात् जुगोप, च पाण्डुतां विलेपनस्य अभि किचन्द्रभागताविभावनात् अपललाप।

शब्दार्थ - अयं = इस (राजा नल) ने। वियोगजाम् = विरह से उत्पन्न। निःश्वासततिम् = निःश्वास व समूह को। मृषाविषादाभिनयात् = झूठे दुःख के बहाने से। जुगोप छिपाया। पाण्डुताम् = पीलेपन को विलेपनस्य = चन्दन के लेप में। अधिक चन्द्रभागताविभावनात् = चन्दन में कर्पूर के अंश के अधिक हो की कल्पना से। अपललाप = छिपाया।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में विरही नल द्वारा निःश्वासों तथा पाण्डुता को छिपाये जाने का वर्णन है।

अनुवाद- इस राजा नल ने विरह से उत्पन्न निःश्वासों के समूह को अथवा आहों की परम्परा को किसी दूसरी वस्तु के विषय में झूठे दुःख के बहाने से छिपाया और पीलेपन को चन्दन में कर्पूर के अंश के अधि एक होने की कल्पना से छिपाया।

व्याख्या- नल की अतिशय विरही भावना को अभिव्यक्त करते हुए कवि कह रहे हैं कि राजा नल दमयन्ती के वियोग के कारण लम्बी-लम्बी साँसें लेकर आह भर रहे थे और उसी के वियोग में वह पीले पड़ गये थे। इन लक्षणों से

किसी को प्रतीत न हो जाय कि वे दमयन्ती के विरह में संतप्त हैं, इसलिए राजा नल ने आहाँ की परम्परा को किसी दूसरी वस्तु का बहाना बनाकर छिपाया अर्थात् यह उजागर नहीं होने दिया कि वे कामसंतप्त व के पीलेपन को यह कहकर छिपाया कि चन्दन के लेप में कर्पूर का अंश अधिक हो गया है। हैं। इसी प्रकार मुख के इन्हीं कारणों से लोग नल की विकलता को नहीं जान पाते थे।

संस्कृत व्याख्या - अयम् = नलः। वियोगजाम् = दमयन्ती विरहजनिताम् निःश्वासपरम्परां मिथ्याखेदप्रकाशनात्। जुगोप = = सवन्वार गोपितवान् वा, च। पाण्डुताम् = विशदतां शरीरपाण्डिमानं च, चन्दनादि लेपन द्रव्यस्य, अधिक चन्द्रभागताविभावनात् = अधिकः चन्द्रभागः कर्पूररार्शः यस्मिन् तस्यभावः तता तस्याः विभावनात् जापनात् अपललाप = अपलपितवान् निङ्खते रस्म ।

शशाक निहनोतुमनेन तत्प्रियाम्

अयं बभाषे यदलीकवीक्षिताम् ।

समाज एवालपितासु वैणिकै

मूर्मुच्छ यत्पञ्चममूर्च्छनासु च ॥ ५२ ॥

अन्वय-अयं यत् अलीकवीक्षितां प्रियां बभाषे च यत् वैणिकैः पञ्चममूर्च्छनासु आलपितासु समाजे एव मुमूर्च्छ, अयं, तत् अनेन निहनोतुं शशाक।

शब्दार्थ-अयम् = इस (राजा नल) ने। चत् जो। अलीकवीक्षितां मिथ्यारूप में देखी गयी। प्रियाम् = प्रिया (दमयन्ती) से। बभाषे वार्तालाप किया। वैणिकैः वीणावादकों द्वारा। पञ्चममूर्च्छनासु = पञ्चम स्वर की मूर्च्छनाओं के। आलपितासु = आलापों के अवसर पर। समाजे एव सभा में ही। मुमूर्च्छ = मूर्च्छित हो गये। निहनोतुं छिपाने में। शशाक समर्थ हो सके।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में दमयन्ती के साथ हुई वार्ता तथा विरह से उत्पन्न मूर्च्छा को नल द्वारा छिपाये जा सकने का वर्णन है।

अनुवाद-इस राजा नल ने जो मिथ्या रूप में देखी गयी प्रिया (दमयन्ती) से वार्तालाप किया और जो वीणावादकों द्वारा पञ्चम मूर्च्छना के आलाप किये जाने

पर सभा में ही (वे) मूच्छित हो गये। भाग्य से वे उसे छिपा सकने में समर्थ हो सके।

हिन्दी व्याख्या- राजा नल का दमयन्ती के प्रति इतना अधिक अनुराग था कि उसे चारों ओर दमयन्ती ही दिखाई देती थी, इसलिए भावना के वशीभूत होकर मिथ्या रूप में देखी गयी प्रिया दमयन्ती से जो कहा तथा वीणा बजाने वालों के पञ्चम स्वर की मूर्च्छनाओं के अवसर पर जनसभा में ही जो मूर्च्छित हुए उसे भाग्य ही छिपा सका अर्थात् उक्त भाषण एवं स्वयं मूर्च्छित हो जाने सम्बन्धी दोनों बातों को भाग्य के बल पर लोग नहीं देख सके।

व्याख्या- अयम् राजा नलः। अलीकवीक्षितां मिथ्याऽवलोकितां प्रियां बल्लभां दमयन्तीमित्यर्थः । यत् बभाषे भाषितवान्। निरन्तरध्यानवशात्पुरः सम्प्रातां विदित्वेति शेषः। वैणिकैः वीणावादकैः वीणावादन-चतुरैर्वा। पञ्चममूर्च्छनासु पञ्चमस्वरमूर्च्छासु । आलपितासु पुनः पुनर्गीतासु सतीसु। समाने एव = सभास्थितजनसमूहे एव च। यत् यस्मात्कारणात्। मुमुच्छे मूर्च्छाम् आप्नोत, स्फुटतां न प्राप्नोति इति भावः । तत् = भाषणम्, अनेन प्रकारेण। निहन्तुं = गोपायितुम् आच्छादयितुम् वा समर्थो बभूव।

अवाप सापत्रपतां स भूपति

धुरि जितेन्द्रियाणां कीर्तितस्थितिः ।

असंवरे शम्बरवैरिविक्रमे

क्रमेण तत्र स्फुटतामुपेयुषि ॥ ५३॥

अन्वय-जितेन्द्रियाणाम् धुरि कीर्तितस्थितिः स भूपतिः तत्र असंवरे शम्बरवैरिविक्रमे क्रमेण स्फुटतां उपेयुषि (सति) सापत्रपतां अवाप।

शब्दार्थ - जितेन्द्रियाणाम् = जितेन्द्रिय पुरुषों में। धुरि अग्रगण्य। कीर्तितस्थितिः कीर्तिमान् स्थापित करने वाले। भूपतिः राजा नल। तत्र समाज में। असंवरे न छिपाये जा सकने वाले। शम्बरवैरिविक्रमे = शम्बर नामक असुर के शत्रु अर्थात् कामदेव के पराक्रम अर्थात् काम द्वारा उत्पन्न विकार के। स्फुटतां उपेयुषि = प्रकटता को प्राप्त हो जाने पर। सापत्रपतां = सलज्जता को। अवाप = प्राप्त हुए।

प्रसंग-सन्दर्भ-श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में राजा नल के कामजन्य विकारों को लोगों द्वारा जान लिये जाने का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद-जितेन्द्रिय पुरुषों में अग्रगण्य अपनी कीर्ति को स्थापित करने वाले वे राजा नल उस सभा (समाज) में न छिपाये जा सकने वाले काम द्वारा उत्पन्न विकार के क्रमशः प्रकट हो जाने पर अत्यधिक लज्जा को प्राप्त हुए।

व्याख्या-राजा नल अपने सौन्दर्य तथा इन्द्रियों पर संयम रखने में अग्रणी रहे थे, फिर भी दमयन्ती के प्रति आसक्त हो जाने के कारण अपने कामजन्य विकार-पाण्डुता, चपलता, मूर्च्छा आदि को नहीं छिपा सके अर्थात् जनसमुदाय में उनकी गोपनीयता के भङ्ग हो जाने के कारण वे लज्जित हो गये, क्योंकि काम विकार को गोपनीय नहीं बनाया जा सकता। अतः नल की ऐसी शारीरिक अवस्था हो जाने पर लोगों द्वारा वास्तविकता का समझ लिया जाना स्वाभाविक ही था।

व्याख्या-जितेन्द्रियाणाम् = वशीकृत-हृषीकाणांजनानाम्। धुरि = अग्रे। कीर्तितस्थितिः = स्तुतमर्यादः। स = प्रसिद्धः। भूपतिः = राजा नलः। तत्र समाजे। असंवरे = निरोधुम् अशक्ये। शम्बरवैरिविक्रमे = मदनपराक्रमे, मदननानाविधविकार इति भावः। क्रमेण = परिपाट्या, स्फुटताम् = प्रकाशताम्, उपेयुषि = प्राप्तवति सति। साऽपन्त्रपताम् = अनेभ्यो लज्जितताम्, अवाय = प्रायः, जनसमाजे कामविकारे व्यक्ते सति नलो लज्जितो बधूवेति भावः।

अलं नलं रोद्युममी किलाभवन्
गुणा विवेकप्रभवा न चापलम्।
स्मरः स रत्यामनिरुद्धमेव यत्
सृजत्ययं सर्गनिसर्ग ईदृशः ॥ ५४॥

अन्वय-अमी विवेकप्रभवाः गुणाः नलं चापलं रोद्धुम् अलं न अभवन्, अयम् ईदृशः सर्गनिसर्गः यत् स स्मरः रत्याम् अनिरुद्धम् एव सृजति।

शब्दार्थ - अमी = ते। विवेकप्रभवाः = युक्तायुक्त ज्ञान से उत्पन्न। गुणाः = धैर्यादि गुण, विशेषताएँ। नलम् = नल की। चापलम् = चपलता को, चंचलता को। रोद्धुम् = रोकने के लिए, रोकने में। अलम् = पर्याप्त, समर्थ। न अभवन्

= नहीं हुए। किल = निश्चय से। अयम् = यह। ईदृशः = इस प्रकार । सर्ग-निसर्गः = संसार का स्वभाव, सृष्टि की प्रकृति। यत् = कि। सः स्मरः = वह कामदेव। रत्याम् = अपनी पत्नी रति में होने पर। अनिरुद्धम् एव = अनिरुद्ध की हीन चंचलता को ही। सृजति= जन्म देता है, उत्पन्न करता है।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में नल के कामजन्य विकारों का वर्णन है।

अनुवाद-ये युक्तायुक्त ज्ञान से उत्पन्न गुण भी नल की चपलता को रोकने में समर्थ नहीं हुए। इस प्रकार प्रकृति का यह स्वभाव ही है कि वह कामदेव रति से अनिरुद्ध की हीन चंचलता को जन्म देता है अथवा अनुराग होने पर चञ्चलता को जन्म देता है।

व्याख्या-राजा नल त्याज्य और ग्राह्य आदि विवेक तथा धैर्य आदि गुणों से युक्त था, फिर भी कामदेव के प्रभाव से वह चञ्चल हो उठा अर्थात् उन्माद, मूर्च्छा आदि से युक्त हो गया। वस्तुतः यह सृष्टि का नियम है कि रति अर्थात् अनुराग होने पर कामदेव चञ्चलता को जन्म देता है अर्थात् कामदेव रति-कर्म में चञ्चलता को जन्म देता है अथवा कामदेव 'रति' नाम की अपनी प्रिया में अनिरुद्ध नामक अपने पुत्र को ही जन्म देता है। अनिरुद्ध कामदेव के पुत्र का नाम है। इस प्रकार विवेकादि गुण सम्पन्न होने पर भी नल दमयन्ती की विरहजन्य काम-पीड़ा से अतिशय चञ्चल हो उठा।

संस्कृत व्याख्या- अमीः एते, पूर्वं वर्णिताः। विवेकप्रभावाः ज्ञानात् उत्पन्नाः। गुणाः = सद्गुणाः। नलम् = नैषधम् । चापलम् = चंचलताम्। रोद्धम् = निवारयितुम्। अलम् = समर्थाः। न अभवन्। किल = निश्चयेन। अयम् = एषः। ईदृशः = एव विधिः। सर्गनिसर्गः एव सृष्टैः स्वभावः एव। सः = प्रसिद्धः। स्मरः = कामः। रत्याम् = एतन्नामिकायाम् स्वपल्याम्, प्रीतौ वा। अनिरुद्धम् = एतन्नामकं कृष्णस्यनप्तारं चांचल्यं वा। सृजात = उत्पादयति।

अनङ्गचिह्नं स विना शशाकं नो
यदासितुं संसदि यत्नवानपि।
क्षणं तदारामविहारकैतवान्
निषेवितुं देशमियेष निर्जनम् ॥ ५५॥

अन्वय-यदा स यत्नवान् अपि अनङ्गचिन्हं विना संसदि क्षणं आसितुं न शशाक तदा आरामविहारकैतवात् निर्जनं देशं निषेवितु इयेष।

शब्दार्थ-यदा सः जब वह (नल)। यत्नवान् अपि = प्रयास करने पर भी अनद्वचितम् = मुच्छ, प्रलाप आदि कामविकार के बिना। संसदि सभा में। आसितम् बैठने के लिए। न शशाक नहीं हुए। आरामविहारकैतवात् उद्यान भ्रमण के बहाने। निर्जनम् देशम् निर्जन स्थानका। निषेवित् सेवन करने के लिए। इयेष = इच्छा की।

प्रसंग-सन्दर्भ- श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में नल द्वारा निर्जन उद्यान में भ्रमण की इच्छा किये जाने का वर्णन है।

अनुवाद-जब (राजा) नल प्रयत्न करने पर सभा में मूच्छर्छा, प्रलाप आदि काम विकारों के बिना बैठने में समर्थ नहीं हुए, तब उन्होंने उद्यान-भ्रमण के बहाने निर्जन स्थान के सेवन करने के लिए इच्छा की।

व्याख्या-राजा की कुछ सीमाएँ, विशेषताएँ होती हैं। वे दमयन्ती के प्रति आसक्त थे, वे नहीं चाहते थे कि विरहजन्य विकारों-प्रलाप, मूच्छर्छा, पाण्डुता, निःश्वास आदि से सभाजन परिचित हो जावें अर्थात् वे चाहते थे कि मेरी व्याकुलता का भान किसी जन को न लग जावे। इसलिए उन विकारों को शान्त करने के लिए प्रयत्न करते रहे, लेकिन जब वे शान्त नहीं हुए, तब उन्होंने सोचा कि लोगों के बीच में इस दशा में रहना मेरे लिए उचित नहीं है, तब उन्होंने अपने मन में अन्यत्र निर्जन स्थान में भ्रमण करने का विचार करके लोगों से कहा कि मैं भ्रमणादि करने का इच्छुक हूँ और इस बहाने से उन्होंने एतत्सम्बन्धी प्रबन्ध करने का आदेश दिया।

संस्कृत व्याख्या-यदा यस्मिन् काले। सः राजा नलः। यत्नवान् अपि = कृतप्रयत्नः अपि। अनङ्गचिह्नम् = मूच्छर्छाप्रलापादिकामविकारम्। बिना = ऋते। संसदि सभायाम्। यदा = यस्मिन् काले आसितुम् = स्थातुम् उपवेष्टम् वा। क्षणम् = किञ्चित् कालमपि। न शशाक न समर्थः अभूत्। तदा तस्मिन् काले। आराम विहार कैतवात् = उपवनक्रीडाछलात्। निर्जनं देशम् = जनरहितं स्थानम्। निषेवितुम् = आश्रयितुम्। इयेष = ऐच्छत्। लजपरिहारार्थम् इति भावः।

प्रश्न : - सही जोड़ी बनाइये ।

(क) सा	-	(क) कहाँ
(ख) द्रुतम	-	(ख) कब
(ग) कुत्र	-	(ग) अपने
(घ) कदा	-	(घ) वह
(ङ) स्वस्य	-	(ङ) शीघ्र

10.4 सार - संक्षेप

नैषधीय चरितम् के प्रथम सर्ग में 36 से 55 श्लोक तक व्याख्या के अंतर्गत व्याकरण, भावार्थ आदि को समाहित कर प्रतिपाद्य विषय को प्रस्तुत किया गया है। व्याख्यात्मक शैली का अध्ययन करने से श्लोक आदि को व्याख्या उद्धरणों के माध्यम से अध्याय में प्रस्तुत किया गया।

10.5 मुख्य शब्द

स्वपती -सोती हुई
मनोरथेन- संकल्प के द्वारा
पश्यति- देखना
इक्षते- देखती थी
तेन -उसने
अपि -भी

10.6 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. (घ) 2. (ङ) 3(क) 4(ख) 5(ग)

10.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ देवर्षि सनाढ्य शास्त्री, नैषधीय चरितम् - श्रीहर्ष, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 1985।
2. श्री शेषराज शर्मा रेग्मी, नैषधीयचरितम्-श्रीहर्ष, चौखंभा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2008।
3. डॉ श्यामलेश कुमार तिवारी, नैषधीयचरितम्- श्रीहर्ष, चौखंभा सुरभारती प्रकाशन 2017।
4. डॉ शोभा भारद्वाज, नैषधीय चरितम् - श्रीहर्ष, युवराज पब्लिकेशन, 2021 ।

10.8 अभ्यास प्रश्न

1. नल के प्रति दमयंती के अनुराग के भाव को स्पष्ट कीजिए ।
2. प्रथम सर्ग में ऋतुओं को वर्णित करने वाले श्लोक को लिखिए ।
3. कामदेव तथा नल की तुलना का स्पष्ट कीजिए ।

प्रश्न .4 श्लोक की व्याख्या करें-

अनेन भैमीं घटयिष्यतस्तथा
विधेरबन्ध्येछतया व्यलासि तत् ।
अभेदि तताद्गनङ्गमार्गणै
र्यदस्य पौष्यैरपि धैर्यकञ्चुकम् ॥

प्रश्न .5 श्लोक की व्याख्या करें-

किमन्यदद्यापि यदस्रतापितः
पितामहो वारिजमाश्रयत्यहो।
स्मरं तनुच्छयतया तमात्मना
शशाक शङ्के स न लङ्गितुं नलः ॥

इकाई 11

नैषधीयचरितम् के प्रथम सर्ग के 56 से 75 तक श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 नैषधीयचरितम् के प्रथम सर्ग के 56 से 75 तक श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

11.4 सार - संक्षेप

11.5 मुख्य शब्द

11.6 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

11.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

11.8 अभ्यास प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

नैषधीय चरितम् के नायक की स्वरूप का अध्ययन कर हम इनके प्रथम सर्ग के श्लोकों का व्याख्या सहित अध्ययन करेंगे। प्रस्तुत इकाई में नैषधीय चरितम् के प्रथम सर्ग से श्लोक की व्याख्या की जाएगी। श्री हर्ष की परिचय तथा नल की स्वरूप वर्णन के पश्चात इस विषय के व्याख्यात्मक पक्ष का अध्ययन किया जाएगा नैषधीय चरितम् के प्रथम सर्ग के 56 से 75 श्लोक तक नल की स्वरूप का वर्णन किया गया है। श्लोकों की व्याख्या के माध्यम से नल के स्वरूप का अध्ययन किया जाएगा दमयंती के चरित्र चित्रण के पश्चात श्लोक के माध्यम से कथा को समझ जाना सुगम हो जाता है। इसी आधार पर संस्कृत भाषा के श्लोक के द्वारा उन में प्रतिपाद्य विषय को जानकार भाषा के ज्ञान तथा व्याकरण टिप्पणी आदि को समाहित कर व्याख्या की गई है।

11.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि-

1. श्लोकों की व्याख्या करने में समर्थ हो सके।
2. नल के चरित्र को विशेष श्लोक के माध्यम से जान सके।
3. व्याकरण भावार्थ आदि के माध्यम से संस्कृत भाषा को समझ सके।
4. व्याख्यात्मक तथा व्याकरण शैली से परिचित हो सके।
5. नैषधीय चरितम् के श्लोक के महत्व से परिचित हो सके।

11.3 नैषधीयचरितम् के प्रथम सर्ग के 56 से 75 तक श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

अथ श्रिया भर्त्सितमत्स्यकेतनः
 समं वयस्यैः स्वरहस्यवेदिभिः ।
 पुरोपकण्ठोपवनं किलेक्षिता
 दिदेश यानाय निदेशकारिणः ॥ ५६ ॥

अन्वय-अथ श्रिया भर्त्सितमत्स्यकेतनः स्वरहस्यवेदिभिः वयस्यै समं पुरोपकण्ठोपवनं किल ईक्षिता निदेशकारिणः यानाय दिदेश।

शब्दार्थ - अथ = इसके पश्चात्। श्रिया = कान्ति से, सौन्दर्य से। भर्त्सितमत्स्यकेतनः = कामदेव को तिरस्कृत करने वाले नल ने। स्व रहस्यवेदिभिः = अपना रहस्य जानने वाले। वयस्यैः समम् = मित्रों के साथ। पुरोपकण्ठोपवनम् = पुर + उपकण्ठ + उपवनम् = नगर के समीपवर्ती उपवन को। ईक्षिता = देखने का इच्छुक । इति = इस कारण। किल = निश्चित रूप से। निदेशकारिणः = आज्ञापालन करने वालों को, सेवकों को। यानाय = वाहन लाने के लिए। दिदेश = आदेश दिया।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में उद्यान विहार के इच्छुक राजा नल द्वारा सेवकों को आदेश दिये जाने का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद- तदनन्तर सौन्दर्य से कामदेव को तिरस्कृत करने वाले नल ने अपने रहस्य को जानने वाले मित्रों के साथ नगर के पास में स्थित उद्यान को देखने की इच्छा से सेवकों को वाहन लाने के लिए आदेश दिया।

हिन्दी व्याख्या- उद्यान-विहारार्थ इच्छा करने के बाद कामपीडित होकर भी अपनी शारीरिक शोभा से कामदेव को तिरस्कृत करने वाले राजा नल ने उन मित्रों के साथ नगर के निकट के उपवन में जाने की इच्छा से सेवकों को सवारी लाने के लिए आदेश दिया, जो मित्र यह जानते थे कि राजा नल विहार के लिए उद्यान नहीं जा रहे हैं, अपितु अपने अन्दर उत्पन्न हुए काम के चिन्हों को छिपाने के लिए जा रहे हैं।

संस्कृत व्याख्या - अथ = अनन्तरम् । श्रिया = कान्त्या, सौन्दर्येण । भर्तियतमत्स्य केतनः = मीनकेतनस्य कामस्य तिरस्कारं कृतवान् सः नलः। स्वरहस्यवेदिभिः निजस्य मर्म ज्ञातृभिः। वयस्यैः मित्रैः। समम् = सार्द्धम्। पुरोपकण्ठोपवनम् = नगरसमीपवर्तिनम् उद्यानम्। ईक्षिता = दृष्टम् इच्छुकः। इति = अनेन कारणेन । निदेशकारिणः = सेवकान्। यानाय = यानस्य आनयनाय। दिदेश = आज्ञापयामास ।

अमी ततस्तस्य विभूषितं सितं
जवेऽपि मानेऽपि च पौरुषाधिकम् ।
उपाहरन्नश्वमजस्त्रचञ्चलैः
खुराञ्चलैः क्षोदितमन्दुरोदरम् ॥ ५७॥

अन्वय-ततः अमी तस्य विभूषितं सितं जवे अपि माने अपि पौरुषाधिकं अजस्रचञ्चलैः खुराञ्चलैः क्षोदितमन्दुरोदरं अश्वम् उपाहरन् ।

शब्दार्थ - ततः = उसके बाद। अमी वे सेवक। विभूषितम् = भलीभाँति सजे हुए। सितम् = परिमाण में भी। पौरुषाधिकम् = पुरुष की अपेक्षा अधिक सफेद। जवे अपि = वेग में भी। माने अपि परिमाण वाले। अजस्त्रचञ्चलैः = निरन्तर

चञ्चल। खुराञ्चलैः = खुरों के अग्रभागों से। क्षोदितमन्दुरोदरं = घुड़साल का फर्श खोदने वाले। अश्वम् घोड़े को। उपाहरन् = ले आये।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में सेवकों द्वारा उत्तम घोड़े को नल के समीप लाये जाने का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद-उसके बाद वे सेवक भलीभाँति सजे हुए श्वेतवर्ण, वेग तथा ऊँचाई में भी पुरुष की अपेक्षा अधिक परिमाण वाले और निरन्तर चञ्चल खुरों के अग्रभागों से घुड़साल का फर्श खोदने वाले घोड़े को उस नल के लिए लाये।

हिन्दी व्याख्या-जब राजा नल उद्यान-भ्रमण करना चाहते थे, तब नल के आदेशानुसार उसके आज्ञाकारी सेवक उत्तम लक्षणों से सम्पन्न विविध अलंकारों से सुसज्जित श्वेत वर्ण वाले घोड़े को उसके समीप लाये। वह घोड़ा सामान्य घोड़ा नहीं था, बल्कि तीव्र गति वाला, ऊँचाई में पुरुष से भी अधिक परिमाण वाला था। वह निरन्तर अपनी चञ्चल टापों द्वारा घुड़साल के फर्श को खोदता रहता था।

संस्कृत व्याख्या-ततः = तदनन्तरम् । तस्य = नलस्य। अमी = निदेशकारिणः भृत्याः। विभूषितम् = अलंकृतम् । सितम् = श्वेतवर्णम् जवे अपि = वेगे अपि। माने अपि च = परीक्षणे अपि च। पौरुषाधिकम् = पुरुषप्रमाणाधिकम्। अजसचञ्चलैः = निरन्तरचपलैः। खुराञ्चलैः = शफाग्रभागे। क्षोदितमन्दुरोदरम् = शोदितं चूर्णीकृतं मन्दुरायाः वाजिशालायाः उदरं मध्यभागं येन तादृशम् अश्वम् = घोटकम् हयम् वा उपाहरत् = उपानीतवन्तः ।

अथान्तरेणावदुगामिनाध्वना

निशीथिनीनाथमहरसहोदरैः ।

निगालगाद्देवमणेरिवोत्थितै

विराजितं केसरकेशरश्मिभिः ॥ ५८ ॥

अन्वय - अथ अन्तरेण अवदुगामिना अध्वना निगालगाद् देवमणेः उत्थितैः इव निशीथिनीनाथमहस्सहोदरैः केसरकेशरश्मिभिः विराजितम् ।

शब्दार्थ-अथ = घोड़े के आ जाने के अनन्तर। आन्तरेण = अन्दर की ओर से। अवदुगामिना = गर्दन के पिछले भाग की ओर जाने वाले। अध्वना = मार्ग से। निगालगात् = गलप्रदेश में विद्यमान। देवमणेः = देवमणि नामक भौरी से। उत्थितैः इव = मानो उठे हुए। निशीथिनीनाथमहस्सहोदरैः = चन्द्रमा की किरणों

के समान। केसरकेशरश्मिभिः = केसर के बालों की किरणों से। विराजितम् = सुशोभित हुए (अश्व पर सवार हुए)।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषधमहाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में उस घोड़े का वर्णन

हिन्दी अनुवाद-घोड़े के आ जाने के अनन्तर गर्दन के पिछले भाग की ओर जाने वाले मार्ग से गलप्रदेश में विद्यमान देवमणि नामक शुभलक्षण सूचक चिह्न विशेष से मानो उठे हुए चन्द्रमा की किरणों के समान केसर रूप केशों की किरणों से शोभित (उस घोड़े के ऊपर राजा नल सवार हुए)।

हिन्दी व्याख्या-राजा नल की सवारी के रूप में सेवकों द्वारा जो घोड़ा लाया गया, उसका वर्णन किया जा रहा है। उस घोड़े के पिछले भाग की ओर जाने वाले मार्ग से होकर गलप्रदेशस्थ देवमणि (दक्षिणावर्त घूमी हुई बालों की भौरी रूप देवमणि नामक शुभलक्षण सूचक चिह्न विशेष) से कण्ठ के बीच में स्थित गर्दन के ऊपरी प्रदेश की ओर जाते हुए मार्ग से निकले हुए तथा चन्द्रमा की किरणों के समान उज्ज्वल वर्ण वाले केसर के बालों की किरणों से शोभित या पक्षिराज गरुड के समान आचरण करने वाले घोड़े पर वे राजा नल सवार हुए।

संस्कृत व्याख्या-अथ सप्तभिः कुलकमाह-अथ आनयनान्तरम् सः नलः हयमारुरोह-अश्वोपहाराऽनन्तरं, निशीथिनीनाथ महस्सहोदरैः चन्द्रकिरणसदृशैः, शुक्लैरिति भावः। निगालगात् = गलोद्देशस्थात्। देवमणिः = देवमणिनामक दक्षिणावर्तात्। आन्तरेण = कण्ठमध्यवर्तिना। अवटुगामिना = कृकाटिकापर्यन्तगतेन। अध्वना = मार्गेण। उत्थितैः इव = उदगतैः इव स्थितैरिति शेषः। निशीथिनीनाथमहस्सहोदरैः निशीथिनी रात्रिः तस्याः नाथः चन्द्रः, तस्य महंसि किरणाः, तेषां सहोदरैः सदृशैः चन्द्रांशुसदृशैः। केसरकेशरश्मिभिः = स्कन्ध प्ररूढाः केसरकेशाः तेषां रश्मिभिः अथवा केसरकेश एवं रश्मयः तैः। विराजितम् = शोभितम् (अश्वम्) ।

अजस्त्रभूमीतटकुट्टनोदगतै

रूपास्यमानं चरणेषु रेणुभिः ।

रयप्रकर्षाध्ययनार्थमागतै

र्जनस्य चेतोभिरिवाणिमाङ्कितैः ॥ ५९॥

अन्वय-अजस्रभूमीतटकुट्टनेत्थितैः रेणुभिः रयप्रकर्षाध्ययनार्थम् आगतैः अणिमाङ्कितैः जनस्य चेतोभिः इव चरणेषु उपास्यमानम्।

शब्दार्थ-अजस्रभूमीतटकुट्टनोद्गतैः = निरन्तर पृथ्वी तट के ताडन से उठी हुई। रेणुभिः = धूलियों से। रयप्रकर्षाध्ययनार्थम् = वेग के उत्कर्ष को सीखने के लिए। आगतैः = आये हुए। अणिमाङ्कितैः = अणु परिमाण से युक्त। चेतोभिः = मनो के द्वारा। उपास्यमानम् = सेवित होने वाले।

प्रसंग सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में मनुष्य के मन की गति से भी तीव्र गति वाले अश्व का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद-निरन्तर पृथ्वीतल के ताडन से उठी हुई धूलियों से मानो तीव्र वेग को सीखने के निमित्त आये हुए अणु परिमाण से युक्त लोगों के अन्तःकरण के द्वारा सेवित होने वाले (अश्व पर नल सवार हुए)।

हिन्दी व्याख्या-तीव्र वेग को सीखने के लिए आये हुए, अणु परमाणु वाले लोगों के चित्तों के समान, लगातार पृथ्वीतल पर ताडन किए जाने से उठी हुई धूलियों के द्वारा उस घोड़े के चरण सेवित किये जा रहे थे, अर्थात् उस घोड़े का वेग मनुष्यों के मन से भी अधिक तीव्र था। अतः लोगों के मन तीव्र वेग की शिक्षा प्राप्त करने के निमित्त उस घोड़े के समीप आये हुए थे। जिस प्रकार अध्ययन के लिए शिष्य गुरु चरणों में उपासना करते हैं, वैसे ही अतिशय वेग के अध्ययन के लिए आये हुए अणु परमाणु मनुष्यों के मनो के समान धूलियों से चरणों में उपासना किये गये घोड़े पर राजा आरुढ़ हुए, ऐसा भाव है।

संस्कृत व्याख्या-अजस्रभूमीतटकुट्टनोद्गतैः = अजस्र निरन्तरं भूमीतटकुट्टनं पृथ्वीतलचूर्णनं तेन उद्गतैः उत्थितैः। रेणुभिः = धूलिभिः। रयप्रकर्षाध्ययनार्थम् = रयप्रकर्षस्य वेगातिशयस्य अध्ययनार्थम् अभ्यासाय । आगतैः = आयातैः। अणिमाङ्कितैः अणुत्वपरिमाण विशिष्टैः। जनस्य लोकस्य चेतोभिः। इव मनोभिः इव । चरणेषु = पादेषुः उपास्यमानम् = सेव्यमानम् (हयमारुरोह)।

चलाचलप्रोथतया महीभृते

स्ववेगदर्पानिव वक्तुमुत्सुकम् ।
 अलं गिरा वेद किलायमाशयम्
 स्वयं हयस्येति च मौनमास्थितम् ॥ ६० ॥

अन्वय-चलाचलप्रोथतया महीभृते स्ववेगदर्पान् वक्तुं उत्सुकम् इव, 'गिरा अलं अयं स्वयं हयस्य आशयं वेद किल' इति मौनं च आस्थितम्।

शब्दार्थ - चलाचलप्रोथतया = चञ्चल नथुनों के होने से। महीभृते राजा नल से। स्ववेगदर्पान् = अपने वेग के गर्व को। वक्तुम् कहने के लिए। उत्सुकम् इव मानो उत्सुक। गिरा = वाणी से। हयस्य = घोड़े के। आशयम् = आशय को। वेद किल जानते ही हैं। मौनम् आस्थितम् = मौनभाव को धारण किये हुए।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में घोड़े की चेष्टा तथा नल की अश्वलक्षणज्ञता का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद- अत्यधिक चलायमान नथुनों के होने से राजा नल से अपने वेग के सम्बन्ध में अभिमानयुक्त बातों को कहने के लिए उत्कण्ठित के समान परन्तु वाणी के द्वारा मत कहो, यह राजा नल अपने आप ही घोड़े के अभिप्राय को जानते ही हैं, इस कारण मौनभाव को धारण किये हुए (घोड़े पर राजा नल सवार हुए)।

हिन्दी व्याख्या-अश्व की चञ्चलता उसके नथुनों अथवा ओष्ठ के फड़कने से स्पष्टतः झलकने लगती है, दूसरी ओर राजा नल लक्षणज्ञता के पारखी थे। जब अश्व अपने वेग सम्बन्धी दर्पयुक्त बातों को नल से कहना चाहता था, तब उसे भान हुआ कि इस नल से वाणी के द्वारा कुछ मत कहो, ये तो स्वयं ही घोड़े के वास्तविक अभिप्राय को जानने वाले हैं। इसी कारण बाद में घोड़े ने मौन धारण कर लिया। ऐसे मौन धारण करने वाले घोड़े पर राजा नल सवार हुए।

संस्कृत व्याख्या-चलाचलप्रोथतया = अतिचञ्चलनासिकत्वेन। महीभृते = राज्ञे नलायेत्यर्थः । स्ववेगदर्पान् = वेगातिरेकान् । वक्तुम् = कथयितुम्। उत्सुकमिव उद्यतमिव। गिरा = वाण्या। अलम् = व्यर्थम् । अयम् = नलः, स्वयम् = आत्मना एव। हयस्य = अश्वस्य। आशयम् अभिप्रायम्। वेद जानाति। किल निश्चयेन। इति = एवं विचार्य। मौनं तूष्णीकत्वम् आस्थितं च आश्रितं च (तं हयं क्षितिपाकशासनः स आरूरोह)।

महारथस्याध्वनि चक्रवर्तिनः,
 परानपेक्षोद्वहनाद्यशः सितम् ।
 रदावदातांशु मिषादनीदृशां
 हसन्तमन्तर्बलमर्वतां रवे॥ ६१ ॥

अन्वय-महारथस्य चक्रवर्तिनः अध्वनि परानपेक्षोद्वहनाद् यशः सितम् रदावदातांशु मिषात् रवेः अनीदृशाम् अर्वताम् अन्तर्बलम् हसन्तम् (अयं नलः आरुरोह)।

शब्दार्थ - महारथस्य = महारथी के। चक्रवर्तिनः = चक्रवर्ती के अर्थात् नल के। अध्वनि = मार्ग में। परानपेक्षोद्वहनात् = पर + अनपेक्षा उद्वहनात् दूसरे की अपेक्षा अर्थात् सहायता के बिना रथ का उद्वहन करने से, रथ खींचने से, उत्पन्न अथवा प्राप्त। यशः सितम् = यश के कारण धवल। रदावदातांशुमिषात् = रद + अवदात + अंशु मिषात् = दाँतों की स्वच्छ किरणों के बहाने से। रवेः सूर्य के। अनीदृशाम् इस प्रकार की विशेषता से रहित। अर्वताम् = घोड़ों के। अन्तर्बलम् = बल को, बल के प्रति। हसन्तम् = हँसते हुए, हँसी उड़ाते हुए घोड़े पर। अयम् = यह। नलः नल। आरुरोह आरुह हुआ, सवार हुआ।

प्रसंग-सन्दर्भ- श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत श्लोक में कविवर श्रीहर्ष राजा नल के घोड़े का वर्णन करते हुए कह रहे हैं-

हिन्दी अनुवाद-महारथी एवं चक्रवर्ती राजा नल को मार्ग में दूसरों की अपेक्षा अर्थात् सहायता के बिना ही वहन करने के कारण उत्पन्न यश से शुभ्र अर्थात् श्वेत रंग वाले तथा दाँतों की शुभ्र किरणों के बहाने इस प्रकार के यश से हीन सूर्य के घोड़ों के बल की मन ही मन हँसी उड़ाते हुए घोड़े पर राजा नल सवार हुए।

हिन्दी व्याख्या-राजा नल महारथी चक्रवर्ती थे। दस हजार धनुर्धारियों से अकेला युद्ध करने वाला महारथी कहलाता है। सार्वभौम शासक को चक्रवर्ती कहा जाता है। सूर्य के सात घोड़े आकाश मार्ग में रथ को खींचते हैं। तात्पर्य यह है कि उन्हें एक-दूसरे की सहायता की आवश्यकता होती है। राजा नल का घोड़ा उनके रथ को आकाश में अकेल ही खींचता था। सूर्य के रथ में एक पहिया है और राजा

नल का रथ दो पहियों वाला था। सात घोड़े मिलकर एक पहिये वाला रथ खींचें, उनकी अपेक्षा दो पहियों वाला रथ अकेले खींचने वाला राजा नल का घोड़ा श्रेष्ठ एवं शक्तिशाली हुआ। सूर्य के घोड़े हरे रंग के हैं। नल का घोड़ा श्वेत रंग का था। ऐसा प्रतीत होता है कि यश के कारण ही उसका रंग श्वेत हो गया था। काव्यशास्त्र के अनुसार यश का रंग सफेद माना गया है। घोड़ों के दाँत सफेद होते हैं। राजा नल के घोड़े के दाँत भी सफेद थे। अपने दाँतों से निकलने वाली श्वेत किरणों अर्थात् श्वेत आभा के कारण राजा नल का घोड़ा अपने मन में सूर्य के घोड़ों की शक्तिहीनता पर हँसता हुआ प्रतीत हो रहा था। प्रत्येक शक्तिशाली शक्तिहीनों की हँसी उड़ाता है। राजा नल का घोड़ा भी ऐसा ही कर रहा था। काव्यशास्त्र के अनुसार हँसी का रंग भी श्वेत है।

संस्कृत व्याख्या - महारथस्य = दश सहस्र रथिमिः सह योद्धम् समर्थस्य। चक्रवर्तिनः = सार्वभौम शासकस्य। अध्वनि = आकाश मार्ग। परानपेक्षोद्वहनात् = परेषाम् अन्येषाम् अनपेक्षया सहायतां विना प्रापणात्, कारणात्। यशः सितम् = कीर्त्या धवलम्। रवेः सूर्यस्य। अनीदृशाम् = इत्थम्भूतत्वाभाववताम्, नलस्याश्वस्य समानतां कर्तुमयोग्यानाम्। अर्वताम् = अश्वानाम्। बलम् = शक्तिम्। अन्तः स्वमनसि । हसन्तम् = उपहासं कुर्वन्। अयं राजा नलः इत्थं भूतं स्वम् अश्वम् आरुरोह।

सितत्विषश्चंचलता मुपेयुषो,
मिषेण पुच्छस्य च केसरस्य च।
स्फुटां चलच्चामर युग्मचिह्नकै
रनिहनुवानं निजवाजिराजताम् ॥ ६२ ॥

अन्वय-सितत्विषाः चंचलताम् उपेयुषः पुच्छस्य च केसरस्य च मिषेण चलच्चामररयुग्मचिह्नकैः स्फुटां निजवाजिराजताम् अनिहनुवानम् (अश्वम् अयं नलः आरुरोह)।

शब्दार्थ - सितत्विषः = श्वेत किरणों वाली। चंचलताम् = चंचलता को। उपेयुषः = प्राप्त होने वाली। पुच्छस्य = पूँछ के। केसरस्य गर्दन के बालों अर्थात् अयाल के। मिषेण = बहाने से। चलच्चामर युग्मचिह्नकैः = हिलते हुए दो चामर-

रूपी लक्षणों से। स्फुटाम् = प्रसिद्ध। निज वाजिराजताम् अपने अश्वराज होने के भाव को। अनिनुवानम् = प्रकट करते हुए को, प्रकट करते हुए पर (घोड़े पर राजा नल सवार हुए)।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में राजा नल उद्यान की सैर को जाने के लिए अपने घोड़े पर सवार हुए। कविवर श्रीहर्ष राजा नल के घोड़े का वर्णन कर रहे हैं।

हिन्दी अनुवाद - श्वेत कान्ति वाली तथा हिलती-डुलती हुई पूँछ के तथा गर्दन के बालों अर्थात् अयाल के बहाने हिलते हुए दो चामरों के चिह्नों के द्वारा स्पष्ट रूप से अपनी अश्वराजता अर्थात् घोड़ों का राजा होने के भाव को प्रकट करते हुए घोड़े पर राजा नल आरूढ हुए।

हिन्दी व्याख्या-राजा का एक चिह्न यह है कि उसके दोनों ओर चामंकर ढुलाये जाते हैं। राजा नल के घोड़े की पूँछ श्वेत वर्ण की है तथा उसकी गर्दन के बाल अर्थात् अयाल भी श्वेत रंग के हैं। घोड़ा अपनी पूँछ और अयाल दोनों को हिला रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि इनके बहाने वह हिलाये जाते हुए दो चामर चिह्नों के द्वारा प्रकट कर रहा है कि वह घोड़ों का राजा अर्थात् सभी घोड़ों में श्रेष्ठ है।

संस्कृत व्याख्या - सितत्विषः = धवलकान्तेः। चंचलताम् = चपलताम्। उपेयुषः प्राप्तवतः। चंचलताम् उपेयुषः = चंचलतां कुर्वतः। पुच्छस्य = लांगूलस्य। केसरस्य = स्कन्धदेशवार्तिनः केशसमूहस्य। मिषेण = छलेन = चलच्चामर युग्मचिह्नैः = चंचलस्य, गतिशीलस्य वा चामर द्वयस्य लक्षणैः। निजवाजिराजताम् = स्वस्य अश्व श्रेष्ठताम्। अनिहनुवानम् = प्रकटन्तम्। (एवावृशम् अश्वम् राजा नलः आरूरोह)।

अपि द्विजिह्वाभ्यवहारपौरुषे

मुखानुषक्तायतवल्गुवलाया।

उपेयिवांसं प्रितमल्लतां रय

स्मयेजितस्य प्रसभं गरुत्मतः ॥ ६३ ॥

अन्वय-रयस्मये प्रसभं जितस्य गुरुत्मतः मुखानुषक्तायतवल्गुवल्गया द्विजिह्वाभ्यवहारपौरुषे अपि प्रतिमल्लतां उपेयिवांसम् ।

शब्दार्थ - रयस्मये = अपनी तीव्र गति के मद में। प्रसभम् बलपूर्वक। जितस्य = जीत गये। गुरुत्मतः = गरुड़ की। मुखानुषक्तायतवल्गुवल्गया = मुख में लगी हुई लम्बी तथा सुन्दर लगाम के द्वारा। प्रतिमल्लताम् = प्रतिद्वन्द्विता को। द्विजिह्वाभ्यवहारपौरुषे = सर्पभक्षण के पुरुषार्थ में। उपेयिवांसम् = प्राप्त किये हुए।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में वेग से गरुड़ विजयी नल के अश्व का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद-घोड़े के द्वारा अपनी तीव्र गति के मद में बलपूर्वक जीते गये घोड़े के गरुड़ को मुख में लगी हुई लम्बी तथा सुन्दर लगाम के द्वारा सर्पभक्षण के पुरुषार्थ में भी प्रतिद्वन्द्विता को प्राप्त करने वाले (घोड़े पर नल सवार हुए)।

हिन्दी व्याख्या-नल के घोड़े ने अपनी तीव्र गति की प्रसिद्धि से गरुड़ को पहले ही पराजित कर दिया था, लेकिन गरुड़ की सर्पभक्षण की प्रसिद्धि अभी शेष थी, यह शक्ति भी नल के घोड़े के द्वारा मुख में पड़ी हुई सर्पाकार लगाम की रस्सी के द्वारा मानो गरुड़ का प्रतिद्वन्द्वी होकर जीत ली गयी थी। भाव यह है कि नल उस अश्व पर सवार हुए, जिसके मुख की दोनों रस्सियाँ दो सर्पों के समान प्रतीत हो रही थीं।

संस्कृत व्याख्या-रयस्मये = वेगप्रयुक्ताहंकारे। प्रसभं प्रसहय = जितस्य प्रागेव निर्जितस्य । गुरुत्मतः = गरुडस्य। मुखानुषक्तायतवल्गुवल्गया = मुखे आनने अनुषक्ता संलग्ना आयता दीर्घा वल्गुः सुन्दरी या वल्गा प्रग्रहः तया। द्विजिह्वाऽभ्यवहारपौरुषे अपि सर्पभक्षणपुरुषार्थेऽपि। प्रतिमल्लताम् = प्रतिद्वन्द्विताम् अपेयिवांसम् = प्राप्तम् (अश्वं नलः आरुरोह)।

स सिन्धुजं शीतमहःस्सहोदरं,
हरन्तमुच्चैःश्रवसः श्रियं हयम्।
जिताखिलक्षमाभृदनल्पलोचनः,
तमारुरोह क्षितिपाकशासनः ॥ ६४॥

अन्वय-जिताखिलक्षमाभृदनल्पलोचनः क्षितिपाकशासनः सः सिन्धुजं शीतमहः सहोदरं उच्चैः श्रवसः श्रियं हरन्तं तं हयं आरुरोह।

शब्दार्थ - सिन्धुजम् = सागर से उत्पन्न को। शीतमहः सहोदरम् = ठण्डी किरणों वाले चन्द्रमा के सगे भाई को। उच्चैःश्रवसः = इन्द्र के अश्व उच्चैः श्रवा की। श्रियम् = शोभा को। हरन्तम् = हरण करते हुए को। तम् = उसको। हयम् = घोड़े को। जिताखिलक्षमाभृदनल्पलोचनः जित अखिल क्षमाभृत + अनल्पलोचनः = सभी राजाओं को जीतने वाला तथा विशाल नयनों वाला। क्षितिपाकशासनः = पृथ्वी के इन्द्र के समान। सः = वह, नल। आरुरोह = सवार हुआ।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में इन्द्र के अश्व उच्चैः श्रवा को भी अपनी शोभा से पराजित करने वाले नल के घोड़े का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद-समस्त राजाओं पर विजय प्राप्त करने वाला, विशाल नयनों वाला तथा धरती का इन्द्र वह राजा नल सागर से उत्पन्न, चन्द्रमा के सगे भाई एवं इन्द्र के घोड़े उच्चैःश्रवा की शोभा को हरण करने वाले घोड़े पर सवार हुआ।

हिन्दी व्याख्या-राजा नल ने सभी राजाओं को पराजित करके विजय प्राप्त की थी। उसके नयन विशाल थे तथा वह धरती का इन्द्र था। सभी राजाओं को पराजित करने से नल की शक्ति और शौर्य का, विशाल नयनों वाला होने से सौन्दर्य का और धरती का इन्द्र होने से यश का ज्ञान होता है।

संस्कृत व्याख्या-जिताखिल क्षमाभृत = सर्वेषां नृपाणां विजेता। अनल्पलोचनः विशाल नेत्रः। क्षितिपाकशासनः = धराया इन्द्रः, यथेन्द्रः स्वर्गे शासनं करोति तथैव नलः भूमौ शासनकर्ता आसीत्। सः नलः। सिन्धुजम् = सागरादुत्पन्नम्, सिन्धुदेशोत्पन्नम् वा। शीतमहः सहोदरम् शीतांशोः चन्द्रस्योत्पत्ति स्थलात् सागरादुत्पन्नम्। उच्चैः श्रवसः इन्द्रस्य वाजिनः। तन्नामधेयस्य। श्रियम् शोभाम्। हरन्तम् = आकर्षयन्तम्। उच्चैः श्रवसः श्रियं हरन्तम् = उच्चैः श्रवरूः अधिक सुन्दरम्। तम् हयम् = स्वकीयम् अश्वम्। समारुरोह = आरोहणं कृतवान्।

निजा मयूखा इव तिग्मदीधितिं
स्फुटारविन्दाङ्कितपाणिपङ्कजम् ।
तमश्ववारा जवनाश्वयायिनं
प्रकाशरूपा मनुजेशमन्वयुः ॥ ६५ ॥

अन्वय-निजाः प्रकाशरूपाः अश्ववाराः स्फुटारविन्दाङ्कितपाणिपङ्कजं जवनाश्वयायिनं तं मनुजेशं मयूखाः तीक्ष्णदीधितिमिव अन्वयुः ।

शब्दार्थ - निजाः = अपने। प्रकाशरूपाः उज्ज्वल आकार वाले। अश्ववाराः = घुड़सवारों ने। स्फुटारविन्दाङ्कितपाणिपङ्कजम् = खिले हुए कमल से अङ्कित कर-कमल वाले। जवनाश्वयायिनं = तीव्र गति वाले अश्व पर चढ़कर गमन करने वाले। तम् मनुजेशम् = उस राजा नल का। मयूखाः = किरणों ने। तीक्ष्णदीधितिम् इव = सूर्य के समान। अन्वयुः = अनुसरण किया।

प्रसंग-सन्दर्भ-श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में राजा का अनुगमन करने वाले घुड़सवारों का चित्रण किया गया है।

हिन्दी अनुवाद-अपने उज्ज्वल आकार वाले किरणसमूह जैसे विकसित रक्त कमलों से चिह्नित करकमल वाले तथा वेगवाले सात घोड़ों से गमन करने वाले सूर्य का अनुगमन करते हैं, उसी प्रकार प्रसिद्ध सौन्दर्य वाले उस राजा नल के घुड़सवारों ने खिले हुए कमल से अङ्कित कर-कमल वाले तथा तीव्र गति वाले अश्व पर चढ़कर गमन करने वाले राजा नल का अनुगमन किया।

हिन्दी व्याख्या-जिस प्रकार सूर्य की चमकती हुई किरणें विकसित कमलों से युक्त कमल सदृश किरणों वाले तथा अत्यन्त वेगशील घोड़ों से युक्त अपने रथ पर आरूढ़ सूर्य का गमन करती हैं, उसी प्रकार अपने उज्ज्वल आकार वाले, घुड़सवार वेगशील घोड़े पर आरूढ़ राजा नल का अनुगमन कर रहे थे।

संस्कृत व्याख्या-प्रकाशरूपाः = द्योतस्वरूपाः। भास्वरूपाः वा निजाः स्वकीयाः। मयूखाः = किरणाः। स्फुटारविन्दाङ्कित पाणिपङ्कजम् = विकसितरक्तकमल चिह्नित करकमलम्। जवनाऽश्वयायिनम् = वेगयुक्त-सप्तहयगामिनम्। तीक्ष्णदीधितिम् इव = सूर्यम् इव। प्रकाश रूपा प्रसिद्ध सौन्दर्या। निजाः = आत्मीयाः। अश्ववाराः = अश्वारोहाः। स्फुटाऽरविन्दाऽङ्कित पाणिपङ्कजम्

= स्पष्ट पद्मरेखा चिह्नित हस्त कमलम् जवनाऽश्वयायिनम् । =
वेगवद्धहयगामिनम्। तम् = पूर्वोक्तं राजानम् नलम्। अन्वयुः = अनुगतवन्तः ।

चलन्नलंकृत्य महारयं हयं,
स वाहवाहोचित वेषपेशलः ।
प्रमोदनिष्पन्दितराक्षि पक्ष्मभि,
व्यलोकि लोकैर्नगरालयैर्नलः ॥ ६६ ॥

अन्वय-स्ववाहवाहोचितवेषपेशलः, महारयं हयम् अलंकृत्य चलन् नलः
प्रमोदनिष्पन्दितराक्षिपक्ष्मभिः नगरालयैः लोकैः व्यलोकि।

शब्दार्थ-स्ववाह वाहोचित वेष पेशलः =अपने वाहन अश्व के अनुकूल वेग के कारण सुन्दर। महारयम् = अत्यधिक वेग वाले, तीव्र गतिशील। हयम् = घोड़े को। अलंकृत्य = सुशोभित करके, सजाकर। चलन् = चलता हुआ, यात्रा प्रारम्भ करता हुआ। नलः =राजा नल। प्रमोद निष्पन्दितराक्षि पक्ष्मभिः= सुख के कारण अधिक मात्रा में निष्पन्दित पलकों वाले के द्वारा। नगरालयैः =नगर आलयैः नगर निवासियों, प्रजाजनों के द्वारा। लोकैः =लोगों के द्वारा। नगरालयैः लोकेः =नागरिक जनों के द्वारा। व्यलोकि= देखा गया।

प्रसंग-राजा नल अपने और अपने वाहन अश्व की शोभा के अनुकूल वेशभूषा धारण करके चला। उस समय प्रजाओं द्वारा आश्चर्यचकित होकर उसे देखने का वर्णन कवि श्रीहर्ष नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत इस श्लोक में कर रहे हैं।

हिन्दी अनुवाद-अपने वाहन घोड़े के अनुकूल वेशभूषा धारण करने के कारण सुन्दर, अत्यधिक वेग से चलने वाले घोड़े को अलंकृत करके चलता हुआ राजा नल अत्यधिक प्रसन्नता के कारण टकटकी लगाये हुए नेत्रों के पलकों वाले नागरिक प्रजाजनों द्वारा देखा गया।

हिन्दी व्याख्या-राजा नल और उनका घोड़ा स्वाभाविक रूप से सुन्दर थे। राजा नल ने अपने घोड़े के सौन्दर्य के अनुकूल ही वेशभूषा धारण की थी, इसलिए वह बहुत सुन्दर लग रहा था। वस्त्राभूषणों से सुसज्जित सुन्दर व्यक्तियों की सुन्दरता में वृद्धि होना स्वाभाविक है। राजा नल ने स्वयं तो उचित और आकर्षक

वेशभूषा ६ धारण को ही थी, अपने अत्यधिक तीव्र गति से चलने वाले घोड़े को भी सजाया था। ऐसे घोड़े पर सवार होकर राजा नल अपने महल से निकला और राजमार्ग पर चलता हुआ उद्यान की ओर उन्मुख हुआ। इस प्रकार चलते हुए राजा नल को नागरिकजनों अर्थात् राजधानी की प्रजाओं द्वारा टकटकी बाँधकर देखा जाना सहज स्वाभाविक था। अपने राजा के प्रति उस समय प्रजा की अपार श्रद्धा थी। प्रजाजन राजा में ईश्वर का अंश मानते थे और उसके दर्शन को पुण्य का आधार समझते थे। दूसरे राजा नल एक प्रजावल्लभ नरेश था, तीसरे वह परम सुन्दर था। ऐसा व्यक्ति प्रजाओं द्वारा निश्चल पलकों वाली आँखों से देखा ही जाना चाहिए।

संस्कृत व्याख्या-स्ववाहवाहोचितवेषपेशलाः स्वकीयस्य अश्वस्यानुकूलेन वेशेन शोभनः। महारयम् = तीव्रवेगवन्तम् । हयम् = वाजिनम्। अलंकृत्य = सुसज्जितं कृत्वा। चर्लेन् गच्छन्। नलः = निषध देशस्य नरेशः। प्रमोदनिष्पन्दितराक्षिपक्ष्मभिः आनन्देनात्यन्त निश्चलाक्षिपक्ष्मयुक्तैः। नगरालयैः, नागरिकप्रजाजनैः । लोकैः = प्रजावगैः। व्यलोकि = दृष्टः।

क्षणादधैष क्षणदापतिप्रभः

प्रभञ्जनाध्येयजवेन वाजिना।

सहैव ताभिर्जनदृष्टिवृष्टिभिः

बहिः पुरोऽभूत् पुरुहूतपौरुषः ॥ ६७ ॥

अन्वय-अथ क्षणदापतिप्रभः पुरुहूतपौरुषः एषः प्रभञ्जनाध्येयजवेन वाजिना क्षणात् ताभिः जनदृष्टिवृष्टिभिः सह एव पुरः बहिः अभूत्।

शब्दार्थ - अथ = उसके पश्चात् । क्षणदापतिप्रभः= चन्द्रमा के समान कान्तिवाले। पुरुहूतपौरुषः = इन्द्र सदृश पराक्रम वाले। एषः = यह। प्रभञ्जनाध्येयजवेन = वायु द्वारा अध्ययन करने योग्य वेग वाले। वाजिना= घोड़े द्वारा। क्षणात् =क्षणमात्र में। ताभिः= उन। जनदृष्टिवृष्टिभिः =नागरिकों की दृष्टि रूपीवृष्टि के। सह एव = साथ ही। पुरः= नगर से। बहिः= बाहर। अभूत् = हो गये।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में राजा नल के रूप एवं पराक्रम का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद-चन्द्रमा के समान कान्ति वाले तथा इन्द्रसदृश पराक्रम वाले ये नल वायु अध्ययन करने योग्य वेग वाले घोड़े द्वारा नागरिकों की दृष्टि रूपी वृष्टि के साथ ही क्षणमात्र में नगर से बाहर हो गये।

हिन्दी व्याख्या-राजा नल रात्रि के स्वामी चन्द्रदेव के समान शुभ कान्ति से युक्त थे। पराक्रम एवं सामर्थ्य में राजा नल इन्द्र की समता रखते थे। उनके घोड़े की गति अत्यधिक तीव्र थी, जिसे देखकर लगता था कि वायु भी उससे शिक्षा ग्रहण कर सकती थी। कहने का तात्पर्य है कि वायु की अपेक्षा कहीं अधिक वेग वाला राजा नल का घोड़ा था। जैसे ही वे घोड़े पर सवार होकर चलने लगे, वैसे ही वे नगर के बाहर पहुँच गये। नगरवासी हर्ष और आश्चर्य के साथ देख ही रहे थे कि क्षण भर में वे नगर से बाहर हो गये।

संस्कृत व्याख्या- अथ = तदनन्तरम्। क्षणदापतिप्रभः = चन्द्र-समप्रभाशाली। पुरुहूतपौरुषः = इन्द्रतुल्यबलयुक्तः। एषः = राजा नलः। प्रभञ्जाध्येय जवेन झंझावातात् शिक्षितेन शीघ्रगमनेन। वाजिना = अश्वेन। क्षणात् = अल्प-समयात्। ताभिः = उक्ताभिः। जनदृष्टि वृष्टिभिः = मनुष्याणां दृष्टिरूपाभिः वर्षाभिः। सह = सार्द्धम्। पुरः = नगरात्। बहिः बाह्यस्थलम्। अभूत् = अभवत्।

ततः प्रतीच्छ प्रहरेति भाषिणी
परस्परोल्लासित शल्यपल्लवे ।
मृषा मृधं सादिबले कुतूहला
न्नलस्य नासीरगते वितेनतुः ॥ ६८ ॥

अन्वय-ततः "प्रतीच्छ" "प्रहर" इति भाषिणी नासीरगते परस्परोल्लासितशल्यपल्लवे नलस्य सादिबले कुतूहलात् मृषा मृधं वितेनतुः ।

शब्दार्थ - ततः = पश्चात्। प्रतीच्छ = पकड़ो। प्रहर = मारो। भाषिणी = कहने वाली। नासीरगते = सेनामुख में स्थित। परस्परोल्लासित शल्य पल्लवे = परस्पर पल्लव के समान भाले की नौक ताने हुए। नलस्य = नल के। सादिबले

सैनिकों के। कुतूहलात् = कुतूहलवश। मृषामृधम् = मिथ्या युद्ध का। वितेनतुः = अभिनय किया।

प्रसंग-सन्दर्भ-श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में नल के सहायत्री घुड़सवारों के परस्पर मिथ्या युद्ध का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद-उसके पश्चात् 'पकड़ो', 'मारो', ऐसा कहते हुए सेना के अग्रभाग में स्थित, एक-दूसरे पर पल्लव के समान भाले की नौक ताने हुए नल के घुड़सवारों के दो दल कुतूहलवश मिथ्यायुद्ध का प्रदर्शन करने लगे।

हिन्दी व्याख्या-युद्ध में शक्ति प्रदर्शन करना वीरों का कर्तव्य है। विना युद्ध के वीर का जीवन निरर्थक है। यही भाव प्रस्तुत पद्य में भी द्योतित हो रहा है। नगर से बाहर होने के पश्चात् सेना के अग्रभाग में स्थित घुड़सवारों के दो दल कुतूहल के साथ 'पकड़ो', 'मारो', ऐसा कहते हुए परस्पर एक-दूसरे की ओर भालों के अग्रभागों को उठाये हुए कृत्रिम युद्ध का प्रदर्शन करने लगे अर्थात् उनका यह युद्ध वास्तविक युद्ध न होकर बनावटी था वे तो मात्र युद्ध का अभ्यास कर रहे थे।

संस्कृत व्याख्या- ततः = तत्समयानन्तरम्। प्रतीच्छ ग्रहाण। प्रहर = प्रहारं कुरु। इति = एवं प्रकारेण। भाषिणी = कथनं कृतवती। नासीरगते = सेनायाः अग्रभागे स्थिते। परस्परोल्लासितशल्यपल्लवे = अन्यन्योन्योपरि प्रसारितानि तोमराणि याम्थां तथोक्ते भल्लाग्रभागे समरे। नलस्य निषधनरेशस्य। सादिवले = तुरंग सैन्ये। कुतूहलात् = ज्ञातुम् औत्सुक्यभावात्। मृषामृधम् = कल्पित युद्धम्। वितेनतुः = चक्रतुः ।

प्रयातुमस्माकमियं कियत्पदं,

धरा तदम्भोधिरपि स्थलायताम्।

इतीव वाहैर्निजवेगदर्पितैः,

पयोधिरोधक्षममुद्धतं रजः ॥ ६९ ॥

अन्वय-इयं धरा अस्माकं प्रयातुं कियत् पदम् (अस्ति) तत् अम्भोधिरपि स्थलायताम्। इति इव निजवेगदर्पितैः वाहैः पयोधिरोधक्षमं रजः उद्धतम्।

शब्दार्थ - इयम् = यह। धरा धरती। अस्माकम् = हमारे लिए। प्रयातुम् चलने के लिए, गमन करने के लिए। कियत् पदम् = कितने चरण हैं, कितने कदम हैं, अर्थात् अपर्याप्त है, बहुत थोड़ी है। तत् = इस कारण से। अम्भोधिः अपि = सागर भी। स्थलायताम् = स्थल बन जाये, धरती का रूप धारण कर ले। इति इव = मानो ऐसा सोचकर, मानो इस कारण से। निजवेग दर्पितैः = अपने वेग के कारण गर्व करने वाले। वाहैः = घोड़ों के द्वारा। पयोधिरोधक्षमम् = सागर को पाटने में समर्थ। रजः = धूल। ऊद्धतम् = उड़ाई।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में निषध नगरी का स्वामी राजा नल जिस रथ पर सवार होकर जा रहा है, उस रथ की घोड़ों द्वारा उड़ाई हुई धूल का वर्णन कर रहे हैं।

हिन्दी अनुवाद-यह पृथ्वी हम घोड़ों के चलने अर्थात् दौड़ने के लिए कितनी छोटी है अर्थात् अपर्याप्त है। इसलिए सागर भी स्थल बन जाये, ऐसा सोचकर अपने वेग पर अभिमान करने वाले नल के घोड़ों ने सागर को पाटने में समर्थ धूल उड़ाई अर्थात् समुद्र को सुखाने के लिए धूल को उड़ाया।

हिन्दी व्याख्या-राजा नल के घोड़े तीव्र गति से दौड़ रहे हैं। दौड़ते हुए घोड़ों की टापों से अधिक मात्रा में धूल उड़ रही है। कवि कल्पना करता है कि घोड़े दौड़ते समय इतनी अधिक 'धूल क्यों उड़ा रहे हैं। घोड़े यह समझ रहे हैं कि हमारे तीव्र वेग के सामने धरती का विस्तार पर्याप्त नहीं है अर्थात् यह पृथ्वी बहुत छोटी है। धरती के विस्तार को तो हम थोड़ी देर में ही पूरा कर लेंगे। हमारी दौड़ने की इच्छा अधूरी रह जायेगी। अगर सागर भी स्थल बन जाये तो हमें दौड़ने का पूरा अवसर प्राप्त हो सकता है। इसी विचार से राजा नल के घोड़े तेज दौड़ते समय अधिक मात्रा में धूल उड़ा रहे हैं। यदि घोड़े धीरे-धीरे चलें तो धूल बिल्कुल नहीं उड़ेगी। घोड़े बहुत तेज दौड़ रहे हैं, इसी कारण इतनी अधिक धूल उड़ रही है जो सागर को भी पाटने में सक्षम है। अधिक मात्रा में धूल उड़ना घोड़ों के तीव्र वेग से दौड़ने को स्पष्ट कर रहा है।

व्याख्या-इयम् = एषा, सम्मुखं वर्तमाना। धरा = पृथ्वी। अस्माकम् = अश्वानाम्। प्रयातुम् = गन्तुम्, धावितुम्। कियत् पदम् = स्वल्प संख्यानां चरण निवेशानां विषयम्, अपर्याप्ता इति भावः। तत् तस्मात् कारणात्। अम्भोधिः अपि = समुद्रः अपि। स्थलायताम् = स्थलीभवतु। इतीव = इत्येव विचार्य। निजवेग

दर्पितैः = स्वकीयस्य जवस्य कारणात् गर्वयुक्तैः। वाहैः = अश्वैः। पयोधिरोधक्षमम्
= सागरं पूरमितुम् समर्थम् । रजः ६ लिः। उद्धतम् = उत्थापिता।

हरेर्यदक्रामि पदैककेन खं,
पदैश्चतुर्भिः क्रमणेऽपि तस्य नः।
त्रपा हरीणामिति ननिताननैः,
नर्व्यवर्ति तैरर्धनभः कृतकर्मैः ॥ ७० ॥

अन्वय-यत् खम् हरेः एककेन पदा अक्रामि, तस्य चतुर्भिः पदैः क्रमणेः अपि
नः हरीणाम् त्रपा इति (इव) ननिताननैः। अर्धनभः कृतकर्मैः तैः न्यवर्ति।

शब्दार्थ-यत् = जो, जिस । खम् = आकाश को। हरेः = विष्णु के। एककेन
एक ने ही, केवल एक ने। पदेनः = चरण ने, चरण-विन्यास ने। अक्रामि आक्रान्त
कर लिया था, पार कर लिया था, नाप लिया था। तस्य = उसको, आकाश को।
चतुर्भिः पदैः = चार चरणों के द्वारा। क्रमणे अपि = लाँघने पर भी, पार कर लेने
पर भी। नः = हम। हरीणाम् = घोड़ों के लिए। त्रपा = लज्जा, लज्जा की बात
होगी। इति = इस प्रकार, विचार करके। ननिताननैः नमित आननैः मुँह झुकाने
वाले, झुके हुए मुख वाले। तैः = उन घोड़ों के द्वारा। अर्धनभः = आधे आकाश
में। कृतकर्मैः = पैर उठाने वालों के द्वारा। न्यवर्ति = लौट आया गया, निवर्तन
किया गया।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत
श्लोक में राजा नल के घोड़ों द्वारा भगवान विष्णु द्वारा एक पग में धरती नापने
की बात स्मरण करके लज्जित हो मुख नीचा कर लेने का वर्णन है।

अनुवाद-जिस आकाश को हरि अर्थात् विष्णु के एक चरण ने लाँघ लिया
था, उसी आकाश को चार पैरों वाले हम हरियों अर्थात् घोड़ों के द्वारा लाँघना
लज्जा की बात होगी। मानो ऐसा सोचकर मुँह नीचे किये हुए उन घोड़ों के द्वारा
आधे आकाश में पैर उठाये हुए ही लौट आया गया।

व्याख्या-तेज दौड़ने वाले घोड़े चारों पैरों को ऊपर उठाकर तथा मुँह नीचा
करके छलांग लगाते हुए दौड़ते हैं। यह घोड़ों का स्वभाव है। राजा नल के घोड़े भी
ऐसा ही कर रहे थे। हरि शब्द के अनेक अर्थों में विष्णु और घोड़ा भी है। राजा

के घोड़ों ने सोचा कि एक हरि विष्णु थे, जिन्होंने एक चरण-विन्यास में आकाश को पार कर लिया था। हम तो बहुत से हरि अर्थात् घोड़े हैं और हमारे सबके चार-चार पैर हैं अर्थात् हम तो चार पैरों वाले हरि हैं। अगर हम आकाश को लांघ जाते हैं तो यह हमारे लिए लज्जा की बात होगी।

व्याख्या-यत् = उपरि स्थितम्। खम् आकाशम्। हरेः = वामन रूप धारिणः विष्णोः। एकेकेन पदा = एकेनैव चरणविन्यासेन। अक्रामि आक्रान्तम्। तस्य = आकाशस्य, लंघित पूर्वस्य। चतुर्भिः पदैः = चतुः संख्याकैः चरणैः। क्रमणेऽपि लंघनेऽपि। नः अस्माकम्। हरीणाम् = बहूनाम् घोटकानाम्। त्रपा = लज्जर्जा वर्तते। इति = एवं विचार्य। नमिताननेः अधोमुखैः। तैः घोटकैः। अर्धनभः आकाशस्य अधः भागस्य एव। कृतक्रमैः = कृतपादविक्षेपैः। न्यवर्ति निवृत्तम्।

चमूचरास्तस्य नृपस्य सादिनो
जिनोक्तिषु श्राद्धतयेव सैन्धवाः।
विहारदेशं तमवाप्य मण्डली-
मकारयन् भूरि तुरङ्गमानपि ॥ ७१ ॥

अन्वय-तस्य नृपस्य चमूचराः सादिनः जिनोक्तिषु श्राद्धतया सैन्धवाः इव तं विहारदेशम् अवाप्य तुरङ्गमान् अपि भूरि मण्डलीम् अकारयन्।

शब्दार्थ - तस्य = उसका। नृपस्य राजा का। चमूचराः सैनिक। सादिनः जिनोक्तिषु = जैन वचनों में। श्राद्धतया = श्रद्धा रखने के कारण। सैन्धवाः सिन्धु देश में उत्पन्न। विहारदेशम् = सञ्चरणशील भूमि में। अवाप्य = प्राप्त होकर। तुरङ्गमानपि = घोड़ों को भी। भूरि = अत्यधिक। मण्डलीयम् = मण्डलाकार रूप में। अकारयन् = कराया।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में 'राजा नल के सैनिक पर्याप्त भूमि पाकर अपने घोड़ों को वृत्ताकार रूप में खड़े करने का प्रयास कर रहे हैं' इसका वर्णन है।

अनुवाद-उस राजा नल के सैनिक घुड़सवारों ने 'जैन' वचनों में श्रद्धा रखने के कारण सिन्धु देशज जैनियों के सृष्टश उस सञ्चरणशील भूमि में पहुँचकर बहुत से घोड़ों को भी वृत्ताकार खड़ा कराया।

व्याख्या-जिस प्रकार जैन दर्शन में विश्वास रखने वाले श्रद्धालु अपने मठों में पहुँचकर मण्डलाकार अर्थात् वृत्ताकार रूप में स्थित हो जाया करते हैं, उसी प्रकार राजा नल के घुड़सवार सैनिक जब राजा के भ्रमण योग्य उपवन में पहुँच गये, तब उन्होंने घोड़ों को गोलाकार रूप में घुमाकर मण्डलाकार रूप में खड़ा कर दिया। कहने का तात्पर्य यह है कि राजा नल के सिन्धु देश में उत्पन्न घोड़ों पर सवार सैनिकों ने भ्रमणशील भूमि में जाकर उसी प्रकार घोड़ों को गोलाकार चक्कर लगवाया, जिस प्रकार 'जैन धर्म' के वचनों में श्रद्धा रखने के कारण सिन्धु देश में उत्पन्न जैनी लोग अपने मन्दिर में पहुँचकर वृत्ताकार आसन लगाते हैं।

व्याख्या- तस्य = पूर्वोक्तस्य नृपस्य राज्ञः। चमूचराः सेनाचराः सादिनः अश्वारोहिणः अश्वसादिनः। जिनोक्तिषु = जिनवचनेषु। श्राद्धतया जैनदर्शनश्रद्धालुतयैव इति। सिन्धु देशभवाः सैन्धवाः इव तम् विहारदेशम् = सञ्चारभूमि सुगतालयञ्च 'विहारो भ्रमणे स्कन्धे लीलायां सुगतालय' इति विश्वः। अवाप्य = तुरङ्गमान् भूरि बहुलं मण्डलीम् अपि मण्डलाकारं च अकारयन् = कारितवन्तः। अन्यत्र मण्डलीं मण्डलासन मित्यर्थः। जैनाः स्वकर्मानुष्ठाने प्रायेण मण्डलानि कुर्वन्ति इति प्रसिद्धः।

द्विषद्भिरेवास्य विलंघिता दिशो,

यशोभिरेवाब्धिरकारि गोष्पदम् ।

इतीव धारामवधीर्यमण्डली-

क्रियाश्रियामण्डि तुरंगमैः स्थली ॥ ७२ ॥

अन्वय-अस्य द्विषद्भिः एव दिशिः विलंघिताः, यशोभिः अब्धिः गोष्पदम् अकारि, इतीव अवधार्य तुरंगमैः मण्डलक्रियाश्रिया स्थली अमण्डि।

शब्दार्थ - अस्य = इस राजा नल के। द्विषद्भिः शत्रुओं के द्वारा। एव ही। विलंघिताः = लांघी गयी है। दिशः = दिशाएँ। यशोभिः= कीर्तियों के द्वारा। अब्धिः सागरः। गोष्पदम् गाय के खुर के बराबर छोटा गड्डा। अकारि = किया गया। इतीव मानो ऐसा विचार करके। धाराम् = गति करो। अवधीर्य = त्यागकर । तुरंगमैः = राजा नल के घोड़ों द्वारा। मण्डली क्रियाश्रिया = चक्कर काटने की शोभा के द्वारा। स्थली = धरती को। अमण्डि = सुशोभित किया गया।

प्रसंग-सन्दर्भ-श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में घोड़ों द्वारा मण्डलाकार स्थिति में भूमि को अलंकृत करके राजा नल के यश को बढ़ाया जाने का वर्णन है।

अनुवाद-इस राजा नल के शत्रुओं द्वारा ही दिशाओं को लांघा गया है। इसके यश ने ही सागर को गाय के खुर का गड्ढा बना दिया। मानो मन में ऐसा सोचकर घोड़ों ने अपनी विभिन्न गतियों को त्यागकर मण्डली क्रिया की शोभा से भूमि को सुशोभित किया।

व्याख्या-राजा नल जब अपने अभीष्ट स्थान अर्थात् विहार-स्थल पर पहुँच गये और उन्होंने अपने घोड़ों को रोक दिया तो घोड़े अपने ही स्थान पर चक्कर काटने लगे। इस क्रिया पर कवि ने कल्पना की है कि घोड़े यह सोचकर रुक गये थे कि राजा नल के शत्रु पराजित और भयभीत होकर दिशाओं से भी आगे भाग गये हैं और इसका यश सागर को इस प्रकार पार कर गया है, जैसे कोई गाय के खुर रखने से बने गड्ढे को पार कर जाता है। तात्पर्य यह है कि राजा नल का यश सागर के पार पहुँच गया था, ऐसा सोचकर घोड़ों ने सोचा कि हम दिशाओं के पार जा सकते हैं और न सागर को लांघ सकते हैं, इसलिए हमारा दौड़ना व्यर्थ है। यही सोचकर घोड़े गोल चक्कर काटने लगे। इसके द्वारा कवि यह व्यक्त करना चाहता है कि राजा नल के सभी शत्रु पराजित और लज्जित होकर दूर भाग गये थे और उसका यश सागर के पास तक फैल गया था।

संस्कृत व्याख्या-अस्य = धारा नरेशस्य नलस्य। द्विषद्भिः एव शत्रुभिः एव। दिशः = ककुभाः। विलंधिताः = लंघन विषयीकृताः। यशोभिः कीर्तिभिः। अब्धिः समुद्रः। गोष्पदम् = धेनुखुरप्रमाणं गर्तम्। अकारि = कृतम्। इति एव मनसि इदमेव विचार्य। धाराम् अश्व गतिम्। अवधीर्य अनादृत्य, अनादरं कृत्वा। तुरंगमैः = अश्वैः। मण्डली क्रियाश्रिया मण्डली करणस्य क्रियायाः शोभया। स्थली = भूमिः। अमण्डि = मण्डिता।

अचीकरच्चारु हयेन या भ्रमी-
निजातपत्रस्य तलस्थले नलः ।
मरुत् किमद्यापि न तासु शिक्षते,
वितत्य वात्यामयक्रचंक्रमान् ॥ ७३ ॥

अन्वय-नलः निजातपत्रस्यं तलस्थले हयेन याः भ्रमीः चारु अचीकरत्, तासु मरुत् वात्यामय चक्र चंक्रमन् वितत्य किम् अद्यापि शिक्षते।

शब्दार्थ - नलः = राजा नल ने। निजातपत्रस्य निज आतपत्रस्य अपने छत्र के। तलस्थले = नीचे के स्थान में। हयेन = अश्व के द्वारा। चारु सुन्दर। याः जो। भ्रमीः गोल चक्कर, भ्रमण। अचीकरत् = बार-बार एवं अधिक संख्या में किये। तासु उनके विषय में। मरुत् = पवन। अद्यापि = अद्य + अपि = आज भी। किम् = क्या। वात्याचक्र चंक्रमान् = वात्याचक्र के विस्तारों को। न नहीं। शिक्षते = शिक्षा प्राप्त करता है।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक मार्ग में जाते हुए धारा नगरी के राजा नल ने अपने घोड़े को जो गोलाकार घुमाया उसी का वर्णन किया गया है।

अनुवाद-राजा नल ने अपने छत्र के नीचे अपने घोड़े के द्वारा जो चक्कर कटवाये, क्या वायु आज भी वात्याचक्रों के विस्तार की शिक्षा प्राप्त नहीं कर रहा है अर्थात् कर रहा है।

व्याख्या-नल वहाँ पहुँच गये जो उनके मनोरंजन का स्थल था। नल अपने घोड़े से नीचे उतरने से पूर्व अपने घोड़े को चक्कर कटवाने लगे। राजा नल घोड़े घर बैठे हुए थे। राजा नल के ऊपर उनका राजछत्र था। राजछत्र के नीचे राजा नल का घोड़ा चक्कर काट रहा था। घोड़े के साथ-साथ नल का छत्र भी घूम रहा था। ऐसा लगता है कि जो वात्याचक्र उठते हैं, उनके द्वारा वायु आज भी उसी प्रकार के चक्कर काटने की शिक्षा प्राप्त कर रहा है। तात्पर्य यह है कि राजा नल के घोड़े इतनी सुन्दरता से गोलाई में चक्कर काट रहे थे कि उस पर आकृष्ट होकर इतने वर्षों बाद भी वायु मानो अपने वात्याचक्र का विस्तार करके उसको सीखने का प्रयास कर रहा है।

संस्कृत व्याख्या-नल = निषधनरेशः। निजातपत्रस्य = स्वीकृतस्य राजछत्रस्य। तलस्थले = अधः गोभागे। हयेन = अश्वेन। याः भ्रमीः यानि भ्रमणानि। अचीकरत् पुनः पुनः अतिशयेन अकरोत्। तासु = भ्रमीषु। मरुत् = वायुः। किम् कथम्। अद्यापि इदानीम् अपि। वात्याचक्र चंक्रमान् = वायुसमूह रूपाः चक्राकाराः गतीः, मंडलाकारा गतीः। न शिक्षते नाभ्यस्ते, अभ्यस्यते एव इति भावः।

विवेश गत्वा स विलासकाननं
ततः क्षणात् क्षौणिपतिधृतीच्छया।
प्रवालरागच्छुरितं सुषुप्सया
हरिर्घनच्छायमिवाम्भसां निधिम् ॥ ७४ ॥

अन्वय-ततः क्षौणिपतिः सः क्षणाद् गत्वा धृतीच्छया प्रवालरागच्छुरितं घनच्छायं विलासकाननं अम्भसां निधि सुषुप्सया हरिः इव विवेश।

शब्दार्थ-ततः = उसके बाद। क्षौणिपतिः भूपति। क्षणाद् शीघ्र ही। गत्वा = जाकर। ६ गृतीच्छया = धैर्य की इच्छा से। प्रवाल रागच्छुरितम् = नवीन पल्लवों के रंगों से युक्त। घनच्छायम् = सघन छाया वाले। विलासकाननम् = क्रीडावन में। अम्भसाम् = समुद्र में। सुषुप्सया सोने की इच्छा से। विवेश = प्रवेश किया।

प्रसंग-सन्दर्भ - श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में राजा नल द्वारा सघन छाया से युक्त उपवन में विश्राम किये जाने का वर्णन है।

अनुवाद-उसके बाद भूपति ने शीघ्र ही जाकर नवीन पल्लवों की लालिमा से युक्त सघन छाया वाले क्रीडावन में धैर्य की इच्छा से प्रवेश किया। जिस प्रकार भगवान् विष्णु सोने की इच्छा से सर्पों के स्थान बने हुए मूँगों के वर्ण से रंजित मेघ के समान क्रान्ति से युक्त समुद्र में प्रवेश करते हैं।

व्याख्या-जिस प्रकार विष्णु भगवान् विष्णु मूँगों की लालिमा से मिश्रित तथा मेघों के सदृश क्रान्ति को धारण करने वाले क्षीरसागर में विश्राम करने की अभिलाषा से प्रवेश करते हैं अथवा जिस प्रकार सिंह नूतन किसलयों की लालिमा से युक्त घनी छाया से परिपूर्ण वन में सोने की इच्छा से प्रवेश करता है, उसी प्रकार राजा नल ने उस क्रीडावने में जो नवीन पल्लवों की लालिमा से पूर्ण तथा सघन छाया वाला था, में शीघ्र ही विश्राम प्राप्त करने की इच्छा से प्रवेश किया।

व्याख्या- ततः = तदनन्तरम्। सः नलः। क्षौणीपतिः पृथ्वीपतिः। क्षणाद्गत्वा = शीघ्रमेव प्राप्य। धृतीच्छया = सन्तोषाकांक्षया। प्रबालाः पल्लवाः अन्यत्र प्रबालाः विद्रुमाः = नवकिसलयाः विद्रुमाश्च तेषां रागेण आरुणयेन छुरितं रुषितम्। घनच्छायां सान्द्रानातपमन्यत्र मेघक्रान्ति वा। विलासकाननम् = क्रीडावनम् अन्यत्र

बवयोरभेदात् विलासकानां बिलेशयानां सर्पाणाम् आननं प्राणनं। अम्भसांनिधिम् = समुद्रम्। सुषुप्सया = शेतुमिच्छया हरिः इव = विष्णुः इव विवेश = प्रवेशयामास ।

वनान्तपर्यन्तमुपेत्य सस्पृहं,
क्रमेण तस्मिन्नवतीर्णं दृक्पथे।
न्यवर्ति दृष्टिप्रकरैः पुरीकसा
मनुव्रजद् बन्धु समाज बन्धुभिः ॥ ७५ ॥

अन्वय- अनुव्रजवन्धु समाजबन्धुभिः पुरीकसां दृष्टिप्रकरैः वनान्तपर्यन्तं सस्पृहम् उपेत्य क्रमेण तस्मिन् अवतीर्णं दृक्पथे न्यवर्ति।

शब्दार्थ-अनुव्रजत् = पीछे चलता हुआ। समाज बन्धुभिः इष्टजनों के समाज। पुरीकसाम् = नगरवासियों के। दृष्टिप्रकरैः नयनसमूहों के द्वारा। वनान्तपर्यन्तम् = वन की सीमा तक। सस्पृहम् = स्पृहा अर्थात् अभिलाषापूर्वक। उपेत्य पहुँचकर। क्रमेण क्रमशः। तस्मिन् उस राजा नल के विषय में। अवतीर्णं दृक्पथे = दृष्टि के मार्ग से बाहर हो जाने पर। न्यवर्ति लौट आया गया।

प्रसंग-सन्दर्भ-श्री हर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में राजा नल का प्रजाजनों की दृष्टि से ओझल होने का वर्णन है।

अनुवाद-इष्टजनों के समान नगरवासियों के दृष्टिसमूह वन की सीमा तक अभिलाषापूर्वक क्रमशः उस नल का पीछा करते रहे, जब नल उनकी दृष्टियों के मार्ग से ओझल हो गया तो उनके नेत्र लौट आये।

व्याख्या-शास्त्रों में वर्णित है कि अपना कोई इष्टजन जब अपने घर से कहीं जाता है तो उस समय घर के लोग उसे कुछ दूर तक छोड़ने जाते हैं और वे उसे तब तक देखते हैं, जब तक वह आँखों से ओझल नहीं हो जाता है। इसी प्रकार राजा नल इतना लोकप्रिय और सुन्दर था कि प्रजाजन उसे तब तक देखते रहते थे, जब तक वह उन्हें दिखाई देता रहता था। राजा नल जब अपने विहार-स्थल अर्थात् उपवन को गया, तब भी यही हुआ। प्रजाजन नल को तब तक क्रमशः देखते रहे, जब तक वह उनकी दृष्टि से ओझल नहीं हो गया। जब नल उन्हें दिखायी देना बन्द हो गया, तब उन्होंने उधर देखना बन्द किया।

संस्कृत व्याख्या- अनुव्रजद्वन्धु समाजबन्धुभिः= स्नेहाद् अनुगच्छत्संघसदृशैः। पुरौकसाम् = नगर निवासिनाम् । दृष्टिप्रकरैः = दृष्टिसमूहैः नेत्रसमूहैः वा। वनान्तपर्यन्तम् = काननोपान्तसीमाम् उदकप्रान्तपर्यन्तञ्चेति गम्यते वने सलिलकानने इत्यमरः। सस्मृहं =साभिलाषं यथा तथा उपेत्य गत्वा क्रमेण क्रमशः तस्मिन् नले अवतीर्ण दृक्पथे = अतिक्रान्त दृष्टिविषये सति। न्यवर्ति =निवृत्तम्। यथा बन्धुभिः उदकान्तं प्रियं पान्थमनुव्रजेदित्यागमात्प्रवसन्तम् नुव्रज्य निवृत्त्यते तद्वत् इत्यर्थः ।

प्रश्न :- सही जोड़ी बनाइये

(क) निज -	(क) ताकत
(ख) सिंधु -	(ख) आना
(ग) बल -	(ग) अपना
(घ) आगमन -	(घ) पहुंचकर
(ङ) उपेत्य -	(ङ) समुद्र

11.05 सार - संक्षेप

नैषधीय चरितम् के प्रथम सर्ग में 75 श्लोक तक व्याख्या के अंतर्गत व्याकरण, भावार्थ आदि को समाहित कर प्रतिपाद्य विषय को प्रस्तुत किया गया है । व्याख्यात्मक शैली का अध्ययन करने से श्लोक आदि को व्याख्या सहित अध्याय में प्रस्तुत किया गया ।

11.06 मुख्य शब्द

- विभूषितम् -सजे हुए
गिरा- वाणी से
अयं- यह
रवेः -सूर्य
सिंधु- सागर
एषः -यह

11.07 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. (ग) 2. (ङ) 3(क) 4(ख) 5(घ)

11.08 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ देवर्षि सनाढ्य शास्त्री, नैषधीय चरितम् - श्रीहर्ष, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 1985।
2. श्री शेषराज शर्मा रेग्मी, नैषधीयचरितम्-श्रीहर्ष, चौखंभा सुरभारती प्रकाशन, वाराणशी, 2008।
3. डॉ श्यामलेश कुमार तिवारी, नैषधीयचरितम्- श्रीहर्ष, चौखंभा सुरभारती प्रकाशन , 2017।
4. डॉ शोभा भारद्वाज, नैषधीय चरितम् - श्रीहर्ष, युवराज पब्लिकेशन, 2021 ।

11.09 अभ्यास प्रश्न

1. प्रजा की दृष्टि से नल के स्वरूप का वर्णन कीजिए।
2. राजा नल के अश्वों की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. नैषधीय चरितं के अनुसार वीरों के गुणों का विवेचन कीजिए।
3. निम्न श्लोकों की व्याख्या।
 1. द्द्विषद्भिरेवास्य विलंघिता दिशो,
यशोभिरेवाब्धिरकारि गोष्पदम् ।
इतीव धारामवधीर्यमण्डली-
क्रियाश्रियामण्डि तुरंगमैः स्थली॥
 - 2 निजा मयूखा इव तिग्मदीधितिं
स्फुटारविन्दाङ्कितपाणिपङ्कजम् ।
तमश्ववारा जवनाश्वयायिनं
प्रकाशरूपा मनुजेशमन्वयुः

इकाई 12

महाकवि माघ का परिचय

- 12.1 प्रस्तावना
- 12.2 उद्देश्य
- 12.3 महाकवि माघ का जीवन परिचय
- 12.4 महाकवि माघ से संबंधित ऐतिहासिक सन्दर्भ
- 12.5 साहित्यिक विशेषताएं
- 12.6 सार - संक्षेप
- 12.7 मुख्य शब्द
- 12.8 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
- 12.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 12.10 अभ्यास प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य में महाकवि माघ अपनी रचना शिशुपाल वध के लिए प्रसिद्ध हैं। संस्कृत साहित्य में यह परंपरा रही है कि रचना के अध्ययन के पूर्व ग्रंथकार के जीवन कृतियां आदि का अध्ययन किया जाता है। इस इकाई में शिशुपाल वध के अध्ययन के पूर्व ग्रंथकार महाकवि माघ के जीवन संबंधी तथ्यों तथा उनकी कृतियों का अध्ययन किया जाएगा। महाकवि माघ संस्कृत साहित्य के प्रतिष्ठित विद्वानों में से एक हैं। उनके जीवन वृत्त के अध्ययन के माध्यम से उनकी विधाता का परिचय प्राप्त होगा। विगत इकाई में महाकाव्य के अध्ययन के पश्चात अब अब इस इकाई से शिशुपाल वध का पठन आरंभ किया जाएगा।

12.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि-

1. महाकवि माघ के जीवन के विषय में परिचय प्राप्त किया जा सके।
2. महाकवि माघ के कृतित्व की महत्व का ज्ञान प्राप्त किया जा सके।
3. शिशुपाल वध की महत्ता का परिचय प्राप्त किया जा सके।
4. ऐतिहासिक आधार पर मार्ग के विषय में जाना जा सके।
5. संस्कृत साहित्य में महाकवि माघ की काव्य विशिष्टता का ज्ञान हो सके।

12.3 महाकवि माघ का जीवन परिचय

संस्कृत साहित्य के विस्तृत आकाश में महाकवि माघ एक ऐसे देदीप्यमान नक्षत्र के रूप में प्रतिष्ठित हैं, जिनकी काव्य-प्रतिभा और पाण्डित्य ने सहस्राब्दियों से विद्वानों और सहृदयों को समान रूप से विस्मित किया है। उन्हें संस्कृत महाकवियों की उस विशिष्ट 'बृहत्त्रयी' में अन्यतम स्थान प्राप्त है, जिसमें कालिदास और भारवि जैसे शीर्षस्थ कवि भी सम्मिलित हैं। माघ की एकमात्र उपलब्ध कृति 'शिशुपालवधम्' नामक महाकाव्य है, जो अपनी अलंकृत शैली, गहन अर्थवत्ता और अद्वितीय शब्द-कौशल के लिए विख्यात है। इस महाकाव्य ने संस्कृत जगत को अपनी विलक्षणता से हतप्रभ कर दिया था, और आज भी यह शास्त्रीय अध्ययन का एक अनिवार्य अंग है। यह प्रतिवेदन महाकवि माघ के जीवन, उनकी अमर कृति 'शिशुपालवधम्' के विस्तृत कथानक, उनकी विशिष्ट काव्य शैली, दार्शनिक एवं नीतिशास्त्रीय विचारों तथा संस्कृत साहित्य में उनके चिरस्थायी योगदान और प्रभाव का एक गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

जीवन परिचय और पारिवारिक पृष्ठभूमि

महाकवि माघ का जीवनवृत्त उनकी काव्य-प्रतिभा के समान ही गरिमामय रहा है। उनके जन्मकाल, जन्मस्थान और पारिवारिक पृष्ठभूमि से संबंधित तथ्य उनके साहित्यिक विकास के लिए एक अनुकूल वातावरण का संकेत देते हैं।

जन्मकाल और जन्मस्थान

महाकवि माघ का जन्म सामान्यतः 7वीं शताब्दी ईस्वी के मध्य में माना जाता है। कुछ स्रोतों के अनुसार, उनका जन्म लगभग 675 ईस्वी में माघ शुक्ल पूर्णिमा को हुआ था। 9वीं शताब्दी के प्रसिद्ध आलोचक आनंदवर्धन ने अपने 'ध्वन्यालोक' में माघ के पद्यों को उद्धृत किया है, जो उनके 9वीं शताब्दी से पूर्व होने की पुष्टि करता है।

उनकी जन्मभूमि भीनमाल शहर है, जो वर्तमान राजस्थान के जालोर जिले में स्थित है। इस प्राचीन नगर को 'श्रीमाल' नाम से भी जाना जाता था। भीनमाल का सांस्कृतिक महत्व इस तथ्य से और बढ़ जाता है कि यह न केवल महाकवि माघ की जन्मभूमि थी, बल्कि महान गणितज्ञ और खगोलशास्त्री ब्रह्मगुप्त का भी जन्म इसी स्थान पर 598 ईस्वी में हुआ था। चीनी बौद्ध तीर्थयात्री ह्वेन त्सांग ने 7वीं शताब्दी में भीनमाल का दौरा किया था और इसे गुर्जरदेश की राजधानी के रूप में वर्णित किया था, जहाँ बौद्ध धर्म, जैन धर्म और ब्राह्मणवाद का सह-अस्तित्व था। यह तथ्य कि एक ही स्थान पर एक महान कवि और एक महान वैज्ञानिक समकालीन रूप से फले-फूले, यह दर्शाता है कि 7वीं शताब्दी में भीनमाल केवल एक राजनीतिक केंद्र नहीं, बल्कि एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक और बौद्धिक केंद्र भी था। यह उस क्षेत्र में ज्ञान और कला के प्रति एक समृद्ध वातावरण को इंगित करता है, जो संभवतः गुर्जर-प्रतिहार शासकों के संरक्षण का परिणाम था। यह उस युग की अंतर-विषयक विद्वत्ता को भी रेखांकित करता है, जहाँ विभिन्न ज्ञान शाखाएँ एक साथ विकसित हो रही थीं, जिससे विद्वानों को बहुमुखी प्रतिभा विकसित करने का अवसर मिला। वर्तमान में भीनमाल में माघ और ब्रह्मगुप्त के पैनोरमा का निर्माण किया जा रहा है, जो उनके ऐतिहासिक गौरव को दर्शाता है।

पारिवारिक विवरण

माघ का जन्म भीनमाल के एक प्रतिष्ठित और धनी श्रीमाली ब्राह्मण-कुल में हुआ था। उनके पिता का नाम दत्तक था, और उनके पितामह सुप्रभदेव थे, जो राजा वर्मल (वर्मलात) के आश्रयदाता थे। महाकवि माघ ने स्वयं अपने वंश

का वर्णन 'शिशुपालवधम्' के अंतिम पाँच पद्यों में किया है। उनकी पत्नी का नाम राजस्थान पाठ्यपुस्तक मंडल के अनुसार माल्हण था, यद्यपि एक अन्य स्रोत उन्हें विद्यावती भी कहता है। यह पारिवारिक पृष्ठभूमि माघ को शिक्षा और साहित्यिक अध्ययन के लिए एक अनुकूल और स्थिर वातावरण प्रदान करती है। आर्थिक सुरक्षा और बौद्धिक प्रोत्साहन ने उन्हें गहन अध्ययन और काव्य रचना में स्वयं को समर्पित करने में सक्षम बनाया होगा। यह उस समय के समाज में ब्राह्मणों की उच्च स्थिति और ज्ञान के प्रति उनके समर्पण को भी दर्शाता है, जहाँ विद्वत्ता को सामाजिक प्रतिष्ठा का आधार माना जाता था।

संरक्षक और समकालीन ऐतिहासिक संदर्भ

माघ के पितामह सुप्रभदेव को राजा वर्मल का आश्रय प्राप्त था। यद्यपि महाकवि माघ के प्रत्यक्ष संरक्षक का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता, यह ज्ञात है कि गुर्जर-प्रतिहार शासकों ने साहित्य और विद्वानों को महत्वपूर्ण संरक्षण दिया था। भीनमाल स्वयं इस काल में एक बड़ा साहित्यिक केंद्र था। राजशेखर जैसे प्रसिद्ध विद्वान प्रतिहार राजाओं महेंद्रपाल प्रथम और महिपाल प्रथम के दरबार में रहते थे। यह संभावना है कि उनके परिवार की शाही संबंध और तत्कालीन गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य का साहित्यिक संरक्षण एक व्यापक सांस्कृतिक वातावरण का हिस्सा था, जिसने माघ जैसे विद्वान-कवियों के उत्थान को संभव बनाया। यह दर्शाता है कि कला और साहित्य का विकास केवल प्रत्यक्ष शाही संरक्षण पर निर्भर नहीं था, बल्कि एक ऐसे सामाजिक-सांस्कृतिक ताने-बाने पर भी निर्भर था जो विद्वत्ता को महत्व देता था और उसे पोषित करता था।

मृत्यु और संबंधित तथ्य

माघ की मृत्यु धारा नगरी में 'पद शोध रोग' (पैरों में सूजन की बीमारी) के कारण हुई मानी जाती है। उन्हें एक महान दानवीर कवि भी कहा जाता है। एक प्रचलित कथा के अनुसार, एक बार जब उनका कोष रिक्त हो गया, तो उन्होंने अपनी पत्नी को एक श्लोक लिखकर राजा के पास भेजा। राजा ने 'कुमुदवनपश्रि' नामक इस श्लोक से प्रभावित होकर पर्याप्त स्वर्णमुद्राएं दीं। किंतु, उनकी पत्नी ने भी पति के अनुरूप स्वभाव दिखाते हुए वे मुद्राएं राह में ही भिक्षुओं को दान कर दीं। पत्नी को रिक्त हस्त पाकर माघ बहुत व्यथित हुए और याचकों को खाली हाथ जाते देखकर उन्होंने अपने प्राण त्याग दिए। यह उपाख्यान

माघ के केवल एक साहित्यिक व्यक्तित्व होने से परे, उनके आदर्शवादी और अत्यंत संवेदनशील स्वभाव को दर्शाता है। यह उनकी दानशीलता और संभवतः सांसारिक मोह से विरक्ति को उजागर करता है, जो एक कवि के लिए असामान्य नहीं है। यह उनकी कला और जीवन मूल्यों के प्रति उनकी गहरी प्रतिबद्धता को भी दर्शाता है, जहाँ भौतिक संपत्ति से अधिक मानवीय गरिमा और दान का महत्व था। यह उनके काव्य में निहित नैतिक और दार्शनिक विचारों के साथ भी सामंजस्य स्थापित करता है।

महाकवि माघ का संक्षिप्त परिचय

जन्मकाल लगभग 675 ईस्वी (7वीं शताब्दी)

एकमात्र कृति: शिशुपालवधम्

'शिशुपालवधम्' महाकवि माघ की एकमात्र उपलब्ध कृति है। यह 20 सर्गों में विभक्त एक उत्कृष्ट महाकाव्य है। इसमें कुल 1650 से 1800 श्लोक हैं, जिनमें 1650 या 1680 की संख्या अधिक सामान्यतः उद्धृत की जाती है। इसका मुख्य रस वीर रस है, जो शिशुपाल के वध की कथा में प्रमुखता से अभिव्यक्त होता है। इसके अतिरिक्त, इसमें श्रृंगार और भक्ति भावना भी स्फुट रूप में विद्यमान है। महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग की समाप्ति पर 'श्री' या उसके पर्यायवाची शब्द का प्रयोग किया गया है, जो एक विशिष्ट काव्य-परंपरा का पालन है।

कथानक का विस्तृत सार

'शिशुपालवधम्' का कथानक मुख्य रूप से महाभारत से लिया गया है, जिसमें युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के अवसर पर चेदिनरेश शिशुपाल के वध का वर्णन है। इसकी कथा श्रीमद्भागवत पुराण के दशम स्कंध के अध्याय 70-75 में वर्णित शिशुपाल वध की कथा से भी बहुत साम्य रखती है।

महाकाव्य में शिशुपाल को केवल एक समकालीन विरोधी के रूप में नहीं, बल्कि भगवान विष्णु के चिर-विरोधी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वह अपने तीन पूर्वजन्मों में हिरण्यकशिपु और रावण के रूप में अवतरित हुआ था, जिनका वध स्वयं भगवान विष्णु ने किया था। वह भगवान विष्णु का वही द्वारपाल था

जिसे सनकादि मुनियों ने शाप दिया था । यह पृष्ठभूमि शिशुपाल के वध को एक नियतिवादी और दार्शनिक आयाम प्रदान करती है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न:

1. महाकवि माघ किस काल के कवि माने जाते हैं?
 - (A) प्राचीन काल
 - (B) मध्यकाल
 - (C) आधुनिक काल
 - (D) उत्तर आधुनिक काल
2. माघ की प्रमुख रचना कौन-सी है?
 - (A) शिशुपालवधम्
 - (B) नीतिशतक
 - (C) कुमारसम्भवम्
 - (D) रघुवंशम्
3. 'शिशुपालवध' किस काव्य शैली में रचित है?
 - (A) खण्डकाव्य
 - (B) गीतिकाव्य
 - (C) महाकाव्य
 - (D) मुक्तक काव्य
4. महाकवि माघ की शैली को किसकी तुलना में श्रेष्ठ माना जाता है?
 - (A) कालिदास
 - (B) भारवि
 - (C) भवभूति
 - (D) बाणभट्ट
5. शिशुपालवधम् महाकाव्य किस ग्रंथ से प्रेरित है?
 - (A) रामायण
 - (B) महाभारत
 - (C) पुराण
 - (D) ऋग्वेद

6. 'शिशुपालवधम्' में कितने सर्ग (कांड) हैं?
(A) 12
(B) 15
(C) 18
(D) 20
7. 'कविकंठभरण' की उपाधि किसे प्राप्त है?
(A) माघ
(B) कालिदास
(C) भास
(D) दण्डी
8. महाकवि माघ का जन्म किस स्थान पर माना जाता है?
(A) उज्जयिनी
(B) कश्मीर
(C) श्रीनगर
(D) गुजरात
9. 'माघ' किस अन्य कवि के पुत्र माने जाते हैं?
(A) दण्डी
(B) वेणु
(C) भट्टि
(D) कोई नहीं
10. माघ की रचना शैली में किसकी झलक मिलती है?
(A) कालिदास और भास
(B) दण्डी और भट्टि
(C) कालिदास और भारवि
(D) बाणभट्ट और भवभूति

12.4 महाकवि माघ से संबंधित ऐतिहासिक सन्दर्भ

महाकवि माघ को संस्कृत साहित्य के साथ अन्य विषयों का भी ज्ञान था। उनकी कृतियों में तथा ऐतिहासिक संदर्भों के आधार पर उनकी विद्वता का परिचय प्राप्त होता है-

दर्शनशास्त्र का ज्ञान

माघ को भारतीय दर्शन के प्रायः सभी अंगों का विस्तृत ज्ञान था। वे छह आस्तिक संप्रदायों (मीमांसा, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, वेदांत) के अतिरिक्त बौद्ध और जैन दर्शनों के सिद्धांतों से भी पूर्णतः अवगत थे। उन्होंने 'शिशुपालवधम्' में यथास्थान इन दार्शनिक सिद्धांतों का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए, युधिष्ठिर के यज्ञ की विवेचना के प्रसंग में उन्होंने वेद और मीमांसा के ज्ञान को प्रकट किया है। प्रथम सर्ग में नारद द्वारा भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए, मोक्ष की इच्छा रखने वालों के लिए उनकी शरण में जाने की बात कही गई है, जो वैष्णव दर्शन के मुक्ति मार्ग को दर्शाता है। श्रीकृष्ण के ध्यान मात्र से ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है, ऐसा वर्णन भी मिलता है। यह दर्शाता है कि महाकवि माघ का उद्देश्य केवल साहित्यिक सौंदर्य नहीं, बल्कि आध्यात्मिक और दार्शनिक सत्यों का प्रतिपादन भी था।

नीतिशास्त्र का समन्वय

'शिशुपालवधम्' महाकाव्य में महाकवि माघ ने राजनीति और धर्मनीति के पहलुओं का चित्रण बड़े मार्मिक ढंग से किया है। श्रीकृष्ण द्वारा बलराम से शिशुपाल के अत्याचार के बारे में गुप्त मंत्रणा करना और नीतिज्ञ उद्धव द्वारा शिशुपाल की राजनीति का विश्लेषण करना, यह नीतिशास्त्र और उसकी प्रतिक्रिया का सबसे बड़ा उपकारक है। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में शिशुपाल को निमंत्रण देना और राजसूय यज्ञ में श्रीकृष्ण द्वारा शिशुपाल को उत्तेजित करना, यह राजनीति का सबसे बड़ा अंग है।

माघ ने अपनी कृति में राजनीति और धर्मनीति का पूर्ण निर्देशन किया है। जब श्रीकृष्ण की पूजा के बाद शिशुपाल अत्यधिक क्रोधित हो उठा, तो वह श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर को कटु वचन कहने लगा। शिशुपाल ने युधिष्ठिर से पूछा कि तुम अग्रपूजा के लिए कृष्ण को क्यों बुला रहे हो, वह इसके योग्य नहीं है। युधिष्ठिर

को क्रोधित करते हुए शिशुपाल कहता है कि धर्म की रक्षा करना और धर्मराज कहलाना, यह दोनों उनका नाटक है ।

यह दर्शाता है कि धर्म की स्थापना के लिए शिशुपाल का वध करना न्यायसंगत है, इसलिए श्रीकृष्ण धर्म की स्थापना के लिए शिशुपाल के वध हेतु उद्यत हो उठे हैं । शिशुपाल का वध धर्म की स्थापना और समाज से अनाचार को दूर करने का एक राजनीतिक-धार्मिक कृत्य था। यह काव्य उस समय के समाज में धर्म और नीतिशास्त्र के महत्व को प्रतिबिंबित करता है और शासकों व विद्वानों के लिए एक आदर्श प्रस्तुत करता है। श्रीकृष्ण के कार्यों में दैवीय इच्छा और व्यावहारिक राज्यनीति का मिश्रण प्राचीन भारतीय अवधारणा को उजागर करता है कि न्यायपूर्ण शासन के लिए नैतिक सिद्धांतों और राजनीतिक नीति दोनों की आवश्यकता होती है। यह एकीकरण महाकाव्य को केवल एक कथा से ऊपर उठाकर आदर्श नेतृत्व और सामाजिक व्यवस्था पर एक ग्रंथ बनाता है।

वैष्णव दर्शन का प्रभाव

माघ भगवान विष्णु के परम भक्त थे । 'शिशुपालवधम्' में श्रीकृष्ण को दुष्टों के संहारक और धर्म के रक्षक के रूप में चित्रित किया गया है । नारद-श्रीकृष्ण संवाद में भक्ति रस प्रमुखता से विद्यमान है, जहाँ नारद श्रीकृष्ण की महिमा का गुणगान करते हैं और उन्हें साक्षात् परब्रह्म परमात्मा मानते हैं ।

शिशुपाल के बार-बार के जन्म और अंततः श्रीकृष्ण के हाथों उसकी मुक्ति की कथा पुनर्जन्म, कर्मफल और मोक्ष के सिद्धांतों को दर्शाती है, जो वैष्णव दर्शन के केंद्रीय पहलू हैं । यह महाकाव्य के अर्थ को और गहरा करता है, इसे एक आध्यात्मिक ग्रंथ में बदल देता है जो दैवीय कृपा और परम स्वतंत्रता के मार्ग की पड़ताल करता है। माघ मास को भगवान श्री कृष्ण के माधव स्वरूप से संबंधित माना जाता है, और इस मास में पवित्र नदियों में स्नान, दान और भगवान विष्णु की पूजा का विशेष महत्व बताया गया है, जो माघ के वैष्णव दृष्टिकोण को और पुष्ट करता है ।

संस्कृत साहित्य में योगदान और प्रभाव

महाकवि माघ का संस्कृत साहित्य में योगदान अद्वितीय है। उन्होंने न केवल अपनी काव्य-प्रतिभा से एक अमर कृति की रचना की, बल्कि अपने पूर्ववर्ती

कवियों से प्रेरणा लेकर उन्हें उत्कृष्ट भी किया और परवर्ती कवियों के लिए एक प्रेरणास्रोत बने।

भारवि से प्रतिस्पर्धा और उत्कृष्टता

माघ अपनी काव्य-रचना में भारवि और भट्टि जैसे पूर्ववर्ती कवियों से बहुत प्रभावित थे । 'शिशुपालवधम्' की रचना स्पष्टतः भारवि के 'किरातार्जुनीयम्' की ख्याति से प्रेरित होकर प्रतिस्पर्धा में की गई थी । जहाँ भारवि शिव का यशोगान करते हैं, वहीं माघ विष्णु का यशोगान करते हैं । माघ अलंकृत काव्य रचना में भारवि से आगे बढ़ गए हैं ।

माघ की उत्कृष्टता को दर्शाने वाली एक प्रसिद्ध उक्ति है: "तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः" । इसका अर्थ है कि "भारवि का तेज तब तक ही था, जब तक कि माघ का उदय नहीं हुआ।" यह उक्ति माघ की काव्य-प्रतिभा की श्रेष्ठता को स्पष्ट रूप से व्यक्त करती है। यह दर्शाता है कि माघ का कार्य संस्कृत महाकाव्य में एक महत्वपूर्ण विकास का प्रतिनिधित्व करता है, जिसने अलंकृत और विद्वत्तापूर्ण कविता की सीमाओं को भारवि से भी आगे बढ़ाया। यह प्रतिस्पर्धा की भावना साहित्यिक परंपरा में नवाचार और परिष्कार को बढ़ावा देती है। माघ में पाण्डित्य एवं वैदुष्य का ऐसा अहंकार था, जिसके कारण वे 'किरातार्जुनीयम्' की शैली, वृत्ति और शब्दावली का अनुसरण करते हुए भी 'शिशुपालवधम्' की रचना में भारवि से आगे निकल गए ।

श्रीहर्ष पर प्रभाव और 'बृहत्त्रयी' में स्थान

महाकवि माघ का 'शिशुपालवधम्' परवर्ती कवियों के लिए एक महत्वपूर्ण प्रेरणास्रोत बना, विशेषकर श्रीहर्ष के 'नैषधीयचरितम्' के लिए । भारवि, माघ और श्रीहर्ष के महाकाव्यों (किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम् और नैषधीयचरितम्) को संस्कृत विद्वानों द्वारा 'बृहत्त्रयी' कहा जाता है । यह 'बृहत्त्रयी' संस्कृत साहित्य में अलंकृत और पाण्डित्यपूर्ण महाकाव्य परंपरा का शिखर मानी जाती है।

एक और उक्ति, "उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः" , यह दर्शाती है कि संस्कृत काव्य परंपरा में उत्कृष्टता के लिए निरंतर प्रतिस्पर्धा रही है। यह उक्ति बताती है कि जब श्रीहर्ष का 'नैषधीयचरितम्' प्रकाशित हुआ, तो माघ और

भारवि का महत्व फीका पड़ गया। यह विद्वत्तापूर्ण परंपरा की निरंतरता को दर्शाता है, जहाँ प्रत्येक कवि अपने पूर्ववर्तियों से सीखता है और उन्हें पार करने का प्रयास करता है। 'बृहत्त्रयी' का निर्माण एक स्पष्ट विद्वत्तापूर्ण और अलंकृत काव्य परंपरा को प्रदर्शित करता है, जहाँ प्रत्येक उत्तरोत्तर कवि ने अपने पूर्ववर्तियों पर निर्माण किया और उन्हें पार करने का प्रयास किया। यह एक गतिशील और विकसित साहित्यिक परिदृश्य को उजागर करता है जिसने परंपरा और नवाचार दोनों को महत्व दिया।

12.5 साहित्यिक विशेषताएं

महाकवि माघ की काव्य शैली अद्वितीय है, जो उन्हें संस्कृत साहित्य में एक विशिष्ट स्थान प्रदान करती है। उनकी शैली की सबसे बड़ी पहचान उनकी पाण्डित्यपूर्ण प्रस्तुति और कलात्मकता है।

संस्कृत साहित्य में एक सुप्रसिद्ध उक्ति है:

"उपमा कालिदासस्य, भारवेरर्थगौरवम्।

दण्डिनः पदलालित्यं, माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥"

इसका अर्थ है कि "कालिदास उपमा के लिए प्रसिद्ध हैं, भारवि अर्थगौरव के लिए, दण्डी पदलालित्य के लिए, किंतु माघ में ये तीनों गुण विद्यमान हैं।" यह उक्ति माघ की काव्य-प्रतिभा की पराकाष्ठा को दर्शाती है और उन्हें संस्कृत महाकाव्य परंपरा में एक अद्वितीय स्थान दिलाती है।

उपमा कालिदासस्य (कालिदास की उपमा): माघ ने कालिदास के समान उपमा के अनेक सुंदर प्रयोग किए हैं। इसका एक प्रसिद्ध उदाहरण रेवतक पर्वत का वर्णन है, जहाँ उन्होंने पर्वत को एक हाथी और उसके दोनों ओर स्थित सूर्य तथा चंद्रमा को हाथी के बंधे हुए घंटे से उपमित किया है। इस उपमा की विशिष्टता के कारण ही उन्हें 'घंटा माघ' की उपाधि प्राप्त हुई। यह उपमा उनकी कल्पना शक्ति और सूक्ष्म अवलोकन क्षमता का परिचायक है।

भारवेरर्थगौरवम् (भारवि का अर्थगौरव): माघ के काव्य में भारवि के समान अर्थगौरव की प्रचुरता है। उनके श्लोकों में अल्प शब्दों में विपुल और यथोचित अर्थ का समावेश होता है, जिससे पाठक को गहन चिंतन के लिए प्रेरित होना

पड़ता है। 'शिशुपालवधम्' के द्वितीय सर्ग में अर्थगौरव का अतिशय प्रयोग देखा जा सकता है, जहाँ राजनीतिक मंत्रणा के माध्यम से गंभीर नीतिगत सिद्धांतों को प्रस्तुत किया गया है।

दण्डिनः पदलालित्यम् (दण्डी का पदलालित्य): माघ दण्डी के समान पदलालित्य के प्रयोग में निष्णात थे। उनके काव्य में पदों की सुकुमारता, वर्णों की मधुरता, भाषा की संगीतात्मकता और भावों के अनुसार भाषा का प्रयोग सर्वत्र द्रष्टव्य है। यह गुण उनके काव्य को श्रवण और पठन दोनों दृष्टियों से आनंददायक बनाता है।

यह उक्ति केवल एक प्रशंसा नहीं है, बल्कि यह इंगित करती है कि माघ ने अपने पूर्ववर्ती महान कवियों की सर्वश्रेष्ठ विशेषताओं को आत्मसात किया और उन्हें अपने काव्य में सफलतापूर्वक संश्लेषित किया। यह संश्लेषण उन्हें संस्कृत महाकाव्य परंपरा में एक अद्वितीय स्थान दिलाता है, जहाँ वे कला और अर्थ दोनों के शिखर पर पहुँचते हैं। यह भी दर्शाता है कि माघ का काव्य एक प्रकार का 'सर्वोत्तम' काव्य था, जो विभिन्न काव्य-धाराओं का संगम था, और यह विद्वानों के लिए एक आदर्श बन गया।

पाण्डित्य और वैदुष्य का प्रदर्शन

माघ को एक प्रकाण्ड सर्वशास्त्रतत्त्वज्ञ विद्वान् माना जाता है। उनका पाण्डित्य एकांगी नहीं, अपितु सर्वगामी था। उन्हें 'पंडित-कवि' की उपाधि से भी विभूषित किया गया है। माघ को दर्शनशास्त्र, संगीतशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, वेद, वेदांत, उपनिषद्, धर्मशास्त्र, मंत्र-तंत्र, पुराण, इतिहास, छंद, ज्योतिष, कामशास्त्र, आयुर्वेद, हयशास्त्र, गजशास्त्र, काव्यशास्त्र, षड्दर्शन, बौद्ध-जैनदर्शन आदि विविध शास्त्रों का प्रचुर ज्ञान था। डॉ. भोला शंकर व्यास जैसे विद्वानों ने उन्हें 'आल राउण्डर स्काॅलर' माना है।

माघ का अत्यधिक पाण्डित्य उनके काव्य शैली में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। यह उनके काव्य को जटिल और गहन बनाता है, जिससे पाठक को उसे समझने के लिए अधिक बौद्धिक प्रयास करना पड़ता है। उनके काव्य को पढ़ते समय "मस्तिष्क का पूरा व्यायाम हो जाता है"। यह 'कलापक्ष' (तकनीकी कौशल) पर 'भावपक्ष' (भावनात्मक गहराई) की प्रधानता को दर्शाता है, जो उस समय की काव्य-प्रवृत्ति का एक महत्वपूर्ण पहलू था। यह भी सुझाव देता है कि माघ का

उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि ज्ञान का प्रदर्शन और विद्वानों को चुनौती देना भी था, जिससे उनके काव्य को एक अकादमिक आयाम मिला।

अलंकृत शैली और शब्द-अर्थ चमत्कार

माघ अलंकृत शैली के पंडित कवि माने जाते हैं। उनके काव्य में शब्द और अर्थ के चमत्कार देखे जा सकते हैं। वे एक ओर कालिदास के समान रसवादी कवि हैं तो दूसरी ओर भारवि सदृश विचित्रमार्ग के पोषक भी। उनके काव्य में हृदय और मस्तिष्क दोनों का अपूर्व मिश्रण मिलता है। उन्होंने भारवि से आगे बढ़कर अलंकृत काव्य रचना की, जिससे उनकी प्रतिस्पर्धात्मक भावना और उत्कृष्ट कलात्मकता परिलक्षित होती है।

कठिन पदविन्यास और शब्दबंध की सुश्लिष्टता

माघ के काव्य में कठिन पदोन्व्यास तथा शब्दबन्ध की सुश्लिष्टता मिलती है, जो अन्य काव्यों में कम ही देखने को मिलती है। उनके शब्द निर्माण कौशल को प्रकट करने वाली एक प्रसिद्ध सूक्ति है: "नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते"। इसका अर्थ है कि 'शिशुपालवधम्' के नौ सर्ग पढ़ने के बाद संस्कृत कोष में ऐसा कोई नया शब्द नहीं बचता, जिसका प्रयोग माघ ने न किया हो। यह उक्ति उनकी विशाल शब्दावली और नवीन शब्द प्रयोग की क्षमता को उजागर करती है। यह दर्शाता है कि माघ का काव्य संस्कृत भाषा के एक व्यापक शब्दकोश के समान है, जो उनके भाषाई अधिकार और रचनात्मकता का प्रमाण है। यह उनके काव्य को समझने के लिए पाठक से गहन भाषाई ज्ञान और बौद्धिक प्रयास की अपेक्षा रखता है। एक गणना के आधार पर, माघ ने अपने काव्य में लगभग 1800 नए शब्दों का प्रयोग किया है, और उन्होंने श्रीकृष्ण के 70 से अधिक नामों का उल्लेख किया है, जिनकी पुनरावृत्ति प्रायः नहीं है।

छंद योजना

माघ ने 'शिशुपालवधम्' में छंदों का अत्यंत विविधतापूर्ण और कुशल प्रयोग किया है। उन्होंने कुल 46 छंदों का प्रयोग किया है, जबकि कालिदास ने अपने महाकाव्यों में केवल 18 और भारवि ने 24 छंदों का प्रयोग किया था। भारवि जहाँ एक सर्ग में अधिकतम 16 छंदों का प्रयोग करते हैं, वहीं माघ ने एक सर्ग में 22 छंदों तक का प्रयोग किया है। उनके छंदप्रयोग वर्ण्यविषय और प्रसंग के

अनुकूल काव्यसौंदर्य को बढ़ाने वाले हैं। मालिनी छंद उनका प्रमुख प्रिय छंद माना जाता है । 'शिशुपालवधम्' के प्रथम सर्ग में वंशस्थ छंद प्रधान है, जिसमें कुल 75 श्लोकों में से लगभग 73 श्लोक इसी छंद में हैं । माघ ने 'धृतश्री' या 'पंचकावली' नामक एक नूतन छंद का भी प्रयोग किया है, जो उनके अतिरिक्त संस्कृत वाङ्मय में संभवतः किसी अन्य कवि ने नहीं किया है ।

चित्रकाव्य (चित्रबंध) और शब्दावली की विशेषताएँ

माघ चित्रकाव्य (चित्रबंध) की रचना में सिद्धहस्त थे । उन्होंने ऐसे विकट बंधों की रचना की है जिन्हें देखकर पाठक आश्चर्यचकित रह जाते हैं । इनमें एकाक्षर पाद (एक अक्षर वाला चरण), दो अक्षरों का प्रयोग, और पंक्ति का दोहराव जैसे जटिल प्रयोग शामिल हैं । उदाहरण के लिए, 19वें सर्ग का तीसरा श्लोक "जजौजोजाअअजिजिज्जाजी तं ततोअतितताअतितुत्। भाअअभोअभोभाअभिर्भूभाभूराराअरि ररिरीररः॥" केवल 'ज', 'त', 'भ', 'र' इन चार अक्षरों का प्रयोग करता है । इसी प्रकार, 19वें सर्ग का 114वाँ श्लोक "बाददो दुददबुददावी दादो दुददीददोः। बुददादं वददे दुददे ददाअददददोअददः॥" केवल एक ही अक्षर 'द' का प्रयोग करता है ।

रेवतक पर्वत के वर्णन में हाथी और उसके दोनों ओर लटकते सूर्य तथा चंद्रमा की उपमा घंटे से देकर उन्हें 'घंटा माघ' की उपाधि मिली । यह उनके चित्रकाव्य का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। माघ की यह कलात्मकता यद्यपि उनकी अत्यधिक भाषाई निपुणता को दर्शाती है, परंतु कुछ आलोचकों के अनुसार, चित्रकाव्य कभी-कभी काव्य-रस के मुक्त प्रवाह को बाधित करता है और मम्मट जैसे आचार्यों ने इसे 'अधम कोटि' के अंतर्गत रखा है । फिर भी, यह माघ के व्याकरण और भाषा पर अद्वितीय अधिकार का प्रमाण है। उनकी शब्दावली की एक और विशेषता यह है कि वे एक बार प्रयुक्त किए गए शब्दों को दोबारा प्रयुक्त नहीं करते, जिससे उनके काव्य में नवीनता बनी रहती है ।

प्रकृति वर्णन

माघ के काव्य में प्रकृति का वर्णन प्रचुर मात्रा में और अत्यंत सूक्ष्मता से किया गया है । उन्होंने प्रकृति के विभिन्न दृश्यों में मानवीय भावनाओं का आरोपण करके मानवीकरण की शैली का प्रयोग किया है । संध्या, प्रभात, सूर्योदय, सूर्यास्त, चंद्रोदय, नदियाँ (जैसे यमुना) और पर्वत (जैसे रेवतक) का विस्तृत और

मनोरम चित्रण उनके काव्य में मिलता है। ऊँट की आदतों का परिज्ञान उनके राजस्थान के निवासी होने का एक प्रमाण माना जाता है। उनके प्रकृति चित्रण में आलंकारिक सौंदर्य के साथ-साथ हृदय को झकझोर देने वाली भावनाएँ भी गुंथी हुई हैं।

12.6 सार - संक्षेप

शिशुपाल वध के अध्ययन के पूर्व महाकवि माघ के परिचय के साथ इस इकाई को पूर्ण किया गया है। महाकवि माघ के जन्म कृति साहित्यिक विशेषताओं के माध्यम से उनके जीवन मृत्यु को पूर्ण कर ज्ञान प्राप्त करने का माध्यम प्रस्तुत किया गया है। माघ के जीवन परिचय के अंतर्गत सभी तथ्यों को समन्वित करने से शिशुपाल वध अध्ययन को आरंभ करने का मार्ग प्रशस्त हुआ है।

12.7 मुख्य शब्द

कृतियां -रचनाएं
चिरस्थायी- दीर्घकाल तक स्थायित्व
समकालीन- समान काल के व्यक्ति
विधाता -विद्वानों का गुण
सांसारिक- संसार से संबंध

12.8 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. (A) प्राचीन काल 2. (A) शिशुपालवधम् 3. (ग) महाकाव्य 4. (B) भारवि
5. (B) महाभारत 6. (ग) 18 7. (A) माघ
8. (घ) गुजरात 9. (B) वेणु 10. (ग) कालिदास और भारवि

12.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

- 1 डॉ श्रद्धा सिंह, शिशुपालवध- महाकवि माघ, , जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, 2012।
 2. महामहोपाध्यायकोलाचलमलिनाथ, पंडितदुर्गाप्रसाद, महामहोपाध्यायपंडितशि वदत शिशुपालवध-महाकवि माघ, , निर्णय सागर प्रेस, मुंबई, दशम संस्करण।
 3. पंडित जनार्दन शास्त्री पांडे, शिशुपालवध- महाकवि माघ, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1972।
 4. श्री राम जी लाल शर्मा, शिशुपालवध - महाकवि माघ, चौखंभा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1990।
 5. श्री अशोकचन्द्रगौड़ शास्त्री, शिशुपालवधरहस्यम्, चौखंभा सुरभारती प्रकाशन, 1999।
-

12.10 अभ्यास प्रश्न

1. महाकवि माघ का जन्म कहां और कब हुआ था।
2. महाकवि माघ की प्रमुख कृति तथा उनकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए ।
3. महाकवि माघ की साहित्यिक विशेषताओं का विवेचन कीजिए ।

इकाई 13

शिशुपालवध की कथावस्तु

- 13.1 प्रस्तावना
 - 13.2 उद्देश्य
 - 13.3 शिशुपालवध की कथावस्तु
 - 13.4 सार - संक्षेप
 - 13.5 मुख्य शब्द
 - 13.6 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
 - 13.7 संदर्भ ग्रंथ सूची
 - 13.8 अभ्यास प्रश्न
-

13.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में शिशुपाल वध की कथावस्तु का वर्णन किया गया है। विगत इकाई में माघ के परिचय के साथ आरंभ कर उनकी रचना शिशुपाल वध का सार प्रस्तुत कर इसका अध्ययन का मार्ग प्रशस्त किया गया है। प्रथम सर्ग से आरंभ कर अंत तक महाकाव्य का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। जिससे महाकाव्य के विषय को जाना जा सके। इस विषय में ज्ञान प्राप्त कर श्लोक की व्याख्या आदि के विषय में ज्ञान प्राप्त किया जाने का मार्ग प्रशस्त किया जा सके। परिचय के बाद श्लोकों के माध्यम से कथा को प्रस्तुत किया जाएगा।

13.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि-

1. शिशुपाल वध की कथानक का ज्ञान हो सके।
2. शिशुपाल वध की कथा के माध्यम से महत्व का प्रतिपादन हो सके।
3. महाकाव्य की दृष्टि से शिशुपाल वध की विशेषता को जाना जा सके।
4. महाकवि माघ तथा शिशुपाल वध के विषय में संक्षिप्त जानकारी प्राप्त हो सके।

13.3 शिशुपालवध की कथावस्तु

माघ स्वयं नित्य नवीनता के पक्षधर है, इसके लिये उन्होंने अपना मानदण्ड स्वयं स्थापित किया है-

क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदैव रूपं रमणीयतायाः ॥4/11 ॥

इसीलिये उनके काव्य में आकर लोकविश्रुत, प्राचीन कथानक नवीन सा प्रतीत होता है। शिशुपाल वध का कथानक 'महाभारत' के सभापर्व से उद्धृत है। यद्यपि यह कथा विष्णुपुराण ब्रह्मवैवर्तपुराण, अग्निपुराण और श्रीमद्भागवत् आदि ग्रन्थों में भी प्राप्त होती है। लेकिन महाभारत को ही इसका मूलस्रोत माना जाता है। महाकवि इस नीरस कथानक को अपनी प्रतिभा के स्पर्श से परिवर्तित एवं परिवर्धित कर सहृदयग्राही बना देते हैं। आनन्दवर्धन भी यही कहते हैं कि कवि को इतिहास का वर्णन करने से प्रयोजन नहीं है अपितु रसानुकूल परिस्थिति को देखकर उसमें परिवर्तित कर ले। इस काव्य के मुख्य वर्ण्य विषय में शिशुपाल और श्रीकृष्ण की शत्रुता का कारण श्रीकृष्ण द्वारा विष्णु का अवतार तथा शिशुपाल को रावण व हिरण्यकश्यपु का अवतार लेना बताते हैं। समस्त लोकों को उसके त्रास से मुक्ति दिलाने की नारद की प्रार्थना से ही महाकाव्य का प्रारम्भ है जिसका अन्त उसके वध से हुआ है। प्रथम सर्ग में नारद स्वर्ग से द्वारका में आते हैं, उनके उतरने का बड़ा आश्चर्य जनक वर्णन है। वे श्रीकृष्ण को इन्द्र का सन्देश देते हैं कि स्वर्गादि लोकों को शिशुपाल के अत्याचार से मुक्त करें और श्रीकृष्ण इसका आश्वासन भी देते हैं। द्वितीयसर्ग में श्रीकृष्ण-बलराम-उद्धव मन्त्रणा करते हैं, बलराम तुरन्त शिशुपाल पर आक्रमण करने का परामर्श देते हैं वहीं उद्धव पहले युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में जाने को उचित ठहराते हैं, अन्त में उद्धव की बात को श्रीकृष्ण स्वीकार कर लेते हैं। तीसरे से तेरहवें सर्ग तक महाकवि द्वारका से इन्द्रप्रस्थ तक के प्रस्थान वर्णन को गूँथते हैं। तीसरे सर्ग में द्वारका से इन्द्रप्रस्थ के लिये प्रस्थान करते हैं, चौथे सर्ग में वे रैवतक पर्वत को देखते हैं फिर उसका वर्णन करते हैं, दारुक भी इसका वर्णन करता है, पंचम सर्ग में कृष्ण रैवतक पर्वत पर विहार की इच्छा करते हैं, इसलिये सेना वहीं पड़ाव डालती है। छठे सर्ग में सभी ऋतुये श्रीकृष्ण की सेवा के लिये आ जाती हैं, सातवें सर्ग में कृष्ण रैवतक

पर्वत के प्रत्येक शिखर पर बिखरी हुई शोभा को देखते हैं, अष्टम सर्ग में जलक्रीडा का, नवम सर्ग में सूर्यास्त के उपरान्त रात्रि के आगमन का, दशम सर्ग में यादव वीरों और रमणियों के सुरापान और विलासों के वर्णन हैं। एकादश सर्ग में प्रातःकाल का सुन्दर वर्णन है। बारहवें सर्ग में सेना पुनः प्रयाण करती हैं तथा यमुना पार करने का मनोरम वर्णन है। तेरहवें सर्ग में इन्द्रप्रस्थ की पुरवधुयें श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ आती हैं। चौदहवें सर्ग में श्रीकृष्ण यज्ञ में आते हैं, यज्ञ का सम्पादन करने के प्रसंग में कवि ने अपने दर्शन-मीमांसा-कर्मकाण्ड के ज्ञान को प्रदर्शित किया है। पन्द्रहवें सर्ग में श्रीकृष्ण की पूजा से रुष्ट शिशुपाल युधिष्ठिर को उपालम्भ देता है तथा श्रीकृष्ण का अपमान करता है। सोलहवें सर्ग में शिशुपाल का दूत श्रीकृष्ण को संदेश देता है जिसका प्रत्युत्तर सात्यकि देता है। सत्रहवें सर्ग में श्रीकृष्ण के पक्ष के राजा लोग दूत को मारना चाहते हैं इतने में दूत खिसक जाता है, फिर सेना की तैयारियों का वर्णन है। अठारहवें सर्ग में दोनों सेनाओं की भिड़न्त तथा वीरों के वीरगति को प्राप्त होने के वर्णन है। उन्नीसवें सर्ग में वीरों का द्वन्द्व युद्ध वर्णित है। इन दोनों सर्गों में चित्रकाव्य के माध्यम से युद्ध का रोचक वर्णन है। बीसवें सर्ग में शिशुपाल श्रीकृष्ण के द्वन्द्वयुद्ध का वर्णन है। शिशुपाल युद्ध में कुछ नहीं पाने से व्यथित हो वाग्बाणों से प्रहार करता है, अन्त में श्रीकृष्ण क्रुद्ध होकर उसका सुदर्शन चक्र से शिर काट देते हैं उसके शरीर से ज्योति निकलकर श्रीकृष्ण में ही प्रविष्ट हो जाती है। अन्त में कवि के कुल की प्रशस्ति के साथ महाकवि की समाप्ति होती है।

मूल कथा से परिवर्तन-

महाभारत के सभापर्व में शिशुपालवध की कथा तैंतीस से पैंतालीस (बारह) अध्यायों में वर्णित है। इसके अतिरिक्त श्रीमद्भागवत्, विष्णुपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण और अग्निपुराण में भी यह प्रसंग आया है। महाभारत की कथा इस प्रकार है- जब इन्द्रप्रस्थ में युधिष्ठिर राज्य कर रहे थे तब कभी भ्रमण करते हुए नारदजी वहाँ आते हैं। युधिष्ठिर उनका यथोचित आदर-सत्कार करते हैं, इससे नारदजी अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ करने का परामर्श देते हैं। नारदजी के चले जाने पर भाइयों से परामर्श करके युधिष्ठिर श्रीकृष्ण को बुलवाते हैं, वे आकर कहते हैं कि राजसूय यज्ञ के अधिकारी आप जरासन्ध को मारने के

बाद ही हो पायेंगे अतः पहले जरासन्ध का वध करें, फिर राजसूय यज्ञ। इसी परामर्श को मानकर पहले भीम जरासन्ध का वध करते हैं फिर राजसूय यज्ञ का भव्य आयोजन किया जाता है। श्रीकृष्ण यज्ञ में ब्राह्मणों के चरण धोने का कार्य करते हैं लेकिन जब यज्ञ में प्रथम अर्घ्य देने का प्रश्न आता है, तो भीष्म पितामह श्रीकृष्ण को ही सर्वोपयुक्त पात्र ठहराते हैं। इससे उनकी बुआ का पुत्र शिशुपाल क्रुद्ध हो जाता है वह श्रीकृष्ण को गालियाँ देने लगता है। श्रीकृष्ण ने बुआ को शिशुपाल के सौ अपराध क्षमा करने का वचन दिया था, अतः वे उसके अपराधों को गिनते रहते हैं और जैसे ही सौ अपराध पूर्ण होते हैं वे अपने सुदर्शनचक्र से उसका गला राजसभा में ही काट देते हैं।

महाभारत का यह छोटा सा कथानक महाकवि माघ की अप्रतिम प्रतिभा के स्पर्श से महाकाव्यत्व को प्राप्त हो गया है। यह कवि का चमत्कार ही है कि सर्वथा प्राचीन होने पर भी यह कथानक मधुमास के पेड़ों के समान नवीन ही लगता है-

दृष्टपूर्वा अपि ह्यर्थाः काव्ये रसपरिग्रहात् ।

सर्वे नवा इवाभान्ति मधुमास इव द्रुमा ॥ ध्वन्या.4/4॥

महाकवि ने महाकाव्य रूप में परिणत करने के लिये इस कथानक में कुछ परिवर्तन किये हैं, जैसे- महाभारत में युधिष्ठिर के पास नारदजी आते हैं और वे उन्हें राजसूय यज्ञ करने का परामर्श देते हैं। जबकि शिशुपालवध में नारदजी श्रीकृष्ण के पास इन्द्र का सन्देश लेकर आते हैं और उन्हें देवताओं तथा मनुष्यों को शिशुपाल के त्रास से मुक्त करने के लिये, उसके वध करने करने को कहते हैं। फिर द्वितीयसर्ग में श्रीकृष्ण बलराम और उद्धव से परामर्श करते हैं, यह कवि के राजनीति कौशल का सुन्दर निदर्शन है।

तृतीय सर्ग से द्वादश सर्ग तक नगर, ऋतु, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, मद्यपान, सुरत, प्रभात आदि के साथ सेना के प्रयाण का वर्णन है, यह वर्णन महाकाव्य के स्वरूप को बनाने के लिये अनिवार्य है। चौदहवें सर्ग में युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का मीमांसापरक वर्णन है, यह कवि के यज्ञविद्या में निष्णात होने को कहता है।

आगे की कथा में भी कवि की कुछ मौलिक उद्भावना दिखाई देती है पन्द्रहवें सर्ग में श्रीकृष्ण की अग्रपूजा दिखाई देती है, पन्द्रहवें सर्ग में श्रीकृष्ण की अग्रपूजा देखकर शिशुपाल क्रुद्ध होता है और वहाँ से उठकर चला जाता है। वह कृष्ण, युधिष्ठिर आदि की निन्दा करता है, यहाँ शिशुपाल के निन्दापरक किन्तु व्यञ्जना से स्तुति परक श्लोक कवि की श्रीकृष्ण भक्ति को दर्शाते हैं। फिर अपने शिविर में आकर वह युद्ध की तैयारियाँ करने का आदेश देता है। सोलहवें सर्ग में शिशुपाल का दूत आकर दो अर्थों वाले प्रिय और अप्रिय सन्देश को कहता है, जिसकी सात्यकि भर्त्सना करता है। फिर दूत चला जाता है। सत्रहवें-अठारहवें सर्ग में सेना की तैयारी व योद्धाओं के रणप्रयाण का वर्णन है। उन्नीसवें सर्ग में कवि ने अनुष्टुप्छन्द में चित्रकाव्य का आश्रय लेकर द्वन्द्वयुद्ध का वर्णन किया है। बीसवें सर्ग में श्रीकृष्ण के युद्ध पराक्रम का वर्णन करने के बाद, सुदर्शन चक्र से शिशुपाल का वध दिखाया है।

स्पष्ट है कि कथानक कवि-कल्पना और चमत्कार पर अधिक आश्रित है क्योंकि महाभारत में श्रीकृष्ण, शिशुपाल के सौ अपराध पूर्ण होते ही राजसभा में सुदर्शन चक्र से उसका सिर काट देते हैं। सेना प्रयाण, नगर, ऋतु, पर्वत, युद्ध आदि का वर्णन महाभारत से इस कथा का भेद सिद्ध करता है।

स्व प्रगति परीक्षण प्रश्न -

सही जोड़ी बनाइये-

1. नायक-	क शिशुपाल
2. प्रतिनायक-	ख माघ
3. सर्ग-	ग राजसूय
4. यज्ञ-	घ श्रीकृष्ण
5. महाकवि -	ड 20

13.4 सार - संक्षेप

शिशुपालवध की कथा का आरंभ नारदमुनि के वचनों से होता है। इसके साथ ही श्रीकृष्ण से उनके मिलन तथा वार्तालाप के पश्चात यह कथा आगे बढ़ती है इसकी कथा के अंतर्गत श्रीकृष्ण के यज्ञ में समिलित होने ततः अन्य पात्रों से मिलन आदि का समन्वय किया गया है । शिशुपाल के परिचय के साथ ही इस कथा के मुख्य भाग का आरंभ होता है तथा यह श्रीकृष्ण द्वारा उनके वध के साथ समाप्त होकर एक शिक्षाप्रद कथा का उदाहरण बनती है ।

13.5 मुख्य शब्द

यज्ञ- हवन

वार्तालाप- बातचीत

मार्ग- रास्ता

वचन- वाणी

13.6 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1 (घ) 2. क 3. ड 4. ग 5. ख

13.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ श्रद्धा सिंह शिशुपालवध- महाकवि माघ, , जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, 2012
- 2 महामहोपाध्यायकोलाचलमलिनाथ,पंडितदुर्गाप्रसाद,महामहोपाध्यायपंडितशिवदत्त शिशुपालवध-महाकवि माघ, , निर्णय सागर प्रेस, मुंबई, दशम संस्करण
- 3 पंडित जनार्दन शास्त्री पांडे, शिशुपालवध- महाकवि माघ, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1972
- 4 श्री राम जी लाल शर्मा, शिशुपालवध - महाकवि माघ, चौखंभा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1990
- 5 श्री अशोकचन्द्रगौड़ शास्त्री, शिशुपालवधरहस्यम्, चौखंभा सुरभारती प्रकाशन, 1999

13.8 अभ्यास प्रश्न

1. शिशुपाल वध के अनुसार श्री कृष्ण तथा नारद के मिलन का वर्णन कीजिए।
2. शिशुपाल वध के प्रथम तीन सर्गों में वर्णित कथा का संक्षेप में वर्णन कीजिए
3. शिशुपाल वध की मुख्य कथा का आधार लिखिए ।
4. शिशुपाल वध का वर्णन किन-किन ग्रंथों में मिलता है, स्पष्ट कीजिए ।

इकाई 14

शिशुपालवध के 1 से 15 श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

- 14.1 प्रस्तावना
- 14.2 उद्देश्य
- 14.3 शिशुपालवध के 1 से 15 तक श्लोकों की व्याख्या
- 14.4 सार - संक्षेप
- 14.5 मुख्य शब्द
- 14.6 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
- 14.7 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 14.8 अभ्यास प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

गत इकाई में शिशुपालवध के कथा का परिचय दिया गया है। प्रस्तुत सर्ग में शिशुपाल वध में प्रथम सर्ग में वर्णित श्लोक में से कतिपय श्लोकों की क्रम से व्याख्या की गई है। विगत इकाइयों में शिशुपाल वध के परिचय तथा उनके प्रतिपाद्य विषय का ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् श्लोक के माध्यम से इस महाकाव्य का अध्ययन किया गया है। संस्कृत भाषा में श्लोक का विशिष्ट महत्व है तथा महाकाव्य के अध्ययन में उनके परिचय आदि के साथ श्लोक का समन्वय कर इसे पूर्ण करने का प्रयास किया गया है।

14.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि-

1. प्रथम सर्ग की कथावस्तु को श्लोक के माध्यम से समझ सके।
2. इन श्लोकों के साथ व्याकरण तथा व्याख्या की शैली से परिचित हो सके।
3. महाकाव्य की कथा का क्रमबद्ध श्लोक के साथ संबंध अध्ययन जान सके।
4. स्वर्ग की विशेष विशेषताओं को श्लोक का अध्ययन कर समझ सके।

14.3 शिशुपालवध के 1 से 15 तक श्लोकों की व्याख्या

श्रियः पतिः श्रीमति शासितुं जगज्जगन्निवासो वसुदेवसद्मनि ।
वसन्ददर्शावतरन्तमम्बराद्धिरण्यगर्भाङ्गभुवं मुनिं हरिः ॥ 1 ॥

अन्वयः - श्रियः पतिः जगन्निवासः जगत् शासितुं श्रीमति वसुदेवसद्मनि वसन् हरिः अम्बरात् अवतरन्तं हिरण्यागर्भाङ्गभुवं मुनिं ददर्श ।

सर्वङ्कषा-श्रिय इति ॥ तत्रादौ श्री शब्दप्रयोगाद्वर्णगणादिशुद्धेरभ्युच्चयः । तदुक्तम्-

देवतावाचकाः शब्दा ये च भद्रादिवाचकाः ।
ते सर्वे नैव निन्द्याः स्युर्लिपितो गणतोऽपिवा ॥ इति ॥

श्रियति पुरुषम् इति (श्रि+क्विप्) श्रीः तस्याः। श्रियः = लक्ष्म्याः । पतिः (= भर्ता) अनेन रुक्मिणीरूपया श्रिया समेत इति सूचितम्। 'राघवत्वेऽभवत्सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि' इति विष्णुपुराणात् । (निवसत्यस्मिन्निति निवासः (अधिकरणे घञ्), जगतां निवासः) जगन्निवासः = जगतामाधारभूतः । कुक्षिस्थाखिलभुवन इति यावत् । तथापि जगत् = लोकं । शासितुं = दुष्टनिग्रहशिष्टानुग्रहाभ्यां नियन्तु। (श्रीविन्द्यते यस्मिन् तत् श्रीमत, तस्मिन्) श्रीमति लक्ष्मीयुक्ते । (वसुदेवस्य सय, स्मिन्) वसुदेव-सद्मनि वसुदेवरूपिणः कश्यपस्य वेरमनि । वसन् कृष्णरूपेण तिष्ठन् । हरि विष्णुः अम्बराद् (= आकाशात्) अवतरन्तम् आयान्तम्। इन्द्रसन्देशकथनार्थमितिभावः । हिरण्यस्य गर्भो हिरण्यगर्भो = ब्रह्मा ब्रह्माण्डप्रभवत्वात् । तस्य (अङ्गाद् भवतीति अङ्गभूः, तम्) अङ्गभुवं = तनूजम् । अथवा तस्याङ्गादवयवादुत्सङ्गाख्याद्भवतीति हिरण्यगर्भाङ्गभूस्तं मुनिम् = नारदमित्यर्थः । 'उत्सङ्गान्नारदो जज्ञे दक्षोऽङ्गुष्ठात्स्वयम्भुवः' इति भागवतात् । ददर्श । कदाचिदिति शेषः । अत्राल्पीयसि वसुदेवसद्मनिसकलजगदाश्रयतया महीयसो हरेराधेयत्व-कथनादधिकप्रभेदोऽर्थालङ्कारः । तदुक्तम्- 'आधाराधेययोरानुरूप्याभावोऽधिको मतः' इतिः । जगन्निवासस्य जगदेकदेशनिवसित्वमिति विरोधश्च । तथा तकारसकारादे

केवलस्यास-कृदावृत्या, जगज्जगतिदि सकृद्व्यञ्जनद्वयसादृश्याच्च । वृत्यनुप्रास भेदौ शब्दालङ्कारौ । एषां चान्योन्यनैरपेक्ष्येणैकत्र समावेशात्तिलतण्डुलवत्स संसृष्टिः । सर्गेऽस्मिन्वंशस्थं वृत्तं । जतौतु वंशस्थमुदीरितं जरौ इति लक्षणात् ॥

शब्दार्थ - श्रियः पतिः = लक्ष्मी के स्वामी, जगन्निवासः = जगत् के आधार, जगत्शासितुं = जगत् पर नियन्त्रण करने के लिए, श्रीमति लक्ष्मी से युक्त, वासदेव -सद्मनि वसुदेव के घर में, वसन् निवास करते हुए, हरिः विष्णु (श्रीकृष्ण) ने, अम्बरात्=आकाश से, अवतरन्तम् उतरते हुए, हिरण्यगर्भाङ्गभुवं ब्रह्मा के पुत्र, मुनिं मुनि (नारद) को, ददर्श देखा।

अनुवाद - लक्ष्मी के पति जगत् के आधारभूत संसार का नियन्त्रण करने के लिए लक्ष्मी से युक्त वसुदेव के घर में निवास करते हुए विष्णु ने आकाश से उतरते हुए ब्रह्मा के पुत्र मुनि (नारद) को देखा।

संस्कृत व्याख्या - श्रियः = लक्ष्म्याः, पति स्वामी, जगन्निवासः- लोकस्य आधारभूतः, जगत् = लोकम्, शासितुं नियन्त्रितुम्, श्रीमति लक्ष्मीशालिनि, विविध-धनधान्यैश्वर्यादिभिर्युक्ते, वसुदेवसद्मनि वसुदेवनाम्नः स्वपितुः गृहे वसन् = सुखेन तिष्ठन् मनुष्यरूपेण निवसन् इत्यर्थः, हरिः = विष्णुः, अम्बराद्=आकाशाद् अवतरन्तम् = समायान्तम्, इन्द्रसन्देशकथनार्थमिति भावः । हिरण्यगर्भाऽङ्गभुवं = सुवर्णमयो, स्वर्ण-मयोऽण्डो गर्भे यस्य तस्य ब्रह्मणः अङ्गवं पुत्रं, नारदं, ददर्श = अवलोकयामास । लक्ष्म्याः स्वामी लोकस्य आधारभूतः लोकं नियन्त्रितुं लक्ष्मीशालिनि, विविधधन धान्यैश्वर्यादिभिर्युक्ते वसुदेवनाम्नः स्वपितुः गृहे सुखेन तिष्ठन् विष्णुः आकाशाद् समायान्तं, स्वर्णमयो अण्डो गर्भे यस्य तस्य ब्रह्मणः पुत्रं नारदम् अवलोकयास।

व्याकरण-शासितुम् शास्+ तुमुन्, निवासः = नि+वस्+घञ्, वसन्= वस् शतृत्, अवतरन्तम् = अव+त+शतृ, ददर्श दृश्+लिट्, प्रथमपुरुष एकवचन ।

विशेष - सृष्टि में सर्वप्रथम हिरण्यमय अण्ड की उत्पत्ति हुई उसी स्वर्णिम अण्डे से ब्रह्माजी का जन्म हुआ, इसलिये उन्हें हिरण्यगर्भ कहा जाता है। हिरण्यगर्भके उत्सङ्ग से उत्पन्न होने के कारण नारदजी को 'हिरण्यगर्भाङ्गभू' कहा जाता है।

गतं तिरश्चिनमनुरुसारथे प्रसिद्धमूर्धवज्ज्वलनं हविरभुज

पतत्यधो धाम विसारि सर्वतः किमेतादित्यकुलमीक्षित जने ॥2 ॥

शब्दार्थ - अनूरुसारथेः = सूर्य की, गतं गमन, तिरश्चीनम् = तिरछा (होता है), हविर्भुजः = अग्नि का, ऊर्ध्वज्वलनम् = ऊपर की ओर जलना, प्रसिद्धम् = प्रसिद्ध (है), सर्वतः = चारों ओर, विसारिधाम जिसका तेज फैला हुआ है। ऐसा (यह) अंधः = नीचे, पतति गिर रहा है, किम् एतद् यह क्या है, इति इस प्रकार, आकुलम् = आकुल (होकर), जनैः = लोगों के द्वारा, ईक्षितम् देखा गया।

अनुवाद - सूर्य का गमन तिरछा होता है, अग्नि का ऊपर की ओर जलना प्रसिद्ध है, चारों ओर जिसका तेज फैला हुआ है ऐसा यह क्या है? इस प्रकार आकुल लोगों के द्वारा देखा गया। चारों ओर जिसका प्रकाश फैल रहा था तथा जो नीचे की ओर गिर रहा था इस प्रकार की जिज्ञासा से युक्त हो, ऐसे तेज पुंज की ओर देखने लगे।

संस्कृतव्याख्याः - अनूरुसारथेः- सूर्यस्य, गतं तिरश्चीनम् तिर्यग्भूतम् (प्रसिद्धम्) हविर्भुजः = अग्नेः, ऊर्ध्वज्वलनं ऊर्ध्वभागस्फुरणम्, प्रसिद्धम् = प्रथितम्, सर्वतः = समन्तात्, विसारि = विसरणशीलं, धाम तेजः, अधः नीचैः, पतति आयाति, 'एतत् किम् इदम् 'किम्' इति जनैः = एवं लोकैः, आकुलम् = सभ्रमम्, ईक्षितम् = दृष्टम् । सूर्यस्य गमनं तिर्यग्भूतं प्रसिद्धम् अग्नेः ऊर्ध्व-भागस्फुरणं प्रथितं, समन्तात् विसरणशीलं तेजः नीचैः आयाति, 'इदं किमिति' लोकैः सन्भ्रमम् दृष्टम् ।

विशेष- अनूरुसारथिः कश्यप की विनता नामक पत्नी से, जो कि पक्षीरूप थी, दो अण्डे पैदा हुए। उनमें से एक अण्डे को उसने समय से पूर्व ही फोड़ डाला, जब कि उसका परिपाक पूर्ण नहीं हुआ था उस अर्धपक्वावस्था में उस अण्डे से जो बच्चा हुआ उसके ऊपरी अवयव तो पूर्ण हो चुके थे किन्तु कमर से नीचे के अवयव पूर्ण नहीं हुए थे। इसलिये उसका नाम अनूरु कहा गया। उसे सूर्य के ताप की अत्यन्त आवश्यकता प्रतीत होती थी क्योंकि पूर्ण ताप उसे मिल नहीं पाया था, अतः कश्यपकी आज्ञा से वह सूर्य का सारथि बना दिया गया जो प्रतिक्षण उसके साथ रहेगा। इसी का नाम अरुण है।

चयस्त्विषामित्यवधारितं पुरा ततः शरीरीति विभाविताकृतिम् ।

विभुर्विभक्तावयवं पुमानिति क्रमादमुं नारद इत्यबोध सः ॥३॥

अन्वय - विभुः सः पुरा त्विषां चयः इति, ततः विभाविताकृतिम् शरीरी इति, विभक्तावयवं पुमान् इति अवधारितम् अमुं क्रमात् नारदः इति अबोधि ।

सर्वङ्कषा - चय इति। विभुः वस्तुतत्वावधारणसमर्थः । सः-हरिः । पुरा-प्रथमं । त्विषां चय इत्यवधारितं तेजः पुञ्जमात्रत्वेन विनिश्चितम्। ततः प्रत्यासन्ने । विभाविता विमृष्टा आकृतिः-संस्थानं यस्य तं तथोक्तम् । अतएव शरीरीचेतन इत्यव-धारितम् । अमुम्-आगच्छन्तं व्यक्तिविशेषं नारद वास्तवाभिप्रायेणेति पुल्लिङ्गनिर्वाहः । क्रमात्-पूर्वोक्त सामान्यविशेषज्ञानक्रमेण । लोकदृष्ट्येदमुक्तम् । हरिस्तु सर्व वेदैवेति तत्त्वम् । नारद इत्यबोधि। नारदं बुद्धवानित्यर्थः । नारदस्य कर्मत्वेऽपि निपातशब्देनाभिहितत्वान्न द्वितीया।

तिङामुपसङ्ख्यानस्योपलक्षणत्वात् । यथाह वामनः- 'निपातेनाभिहिते कर्मणि न कर्मविभक्तिः । परिगणनस्य प्रायिकत्वात्' (का. सू. 5/2/22) इति। बुध्यतेः कर्तरिलुङ्। 'दीपजन-इत्यादिना चिण।' चिणो लुक्ति। तस्य लुक्। अत्र विभाविताकृतिं विभक्तावयवमित्यादिना आकृति विभावनावयवविभावनयोः पदार्थयौर्विशेषणवृत्त्या शरीरित्वपुंस्त्वावधारिणो हेतुत्वेनोपन्यासात्पदार्थहेतुकं काव्यलिङ्गमलंकारः । 'हेतोर्वाक्य-पदार्थत्वे काव्यलिङ्गमुदाहृतम्' इति लक्षणात् ॥

शब्दार्थ - विभुः = वस्तु तत्व का अवधारण करने में समर्थ, सः = श्रीकृष्ण ने, पुरा पहले, त्विषां चयः तेज का पुंज, इति इस प्रकार, ततः अनन्तर, विभाविताकृतिम् = आकार प्रकट होने पर, शरीरी इति यह शरीरधारी है, इस प्रकार, विभक्तावयव = अवयवों के विभक्त होने पर, पुमान् इति मनुष्य है इस प्रकार, अवधारितं = निश्चय किया, अमुं इन्हें, क्रमात् क्रम से, नारदः = नारद, इति इस प्रकार, अबोधि = जाना।

अनुवाद - वस्तु तत्व का अवधारण करने में समर्थ उन श्रीकृष्ण जी ने पहले तेज का पुंज इस प्रकार, अनन्तर आकार प्रकट होने पर यह शरीरधारी है, इस प्रकार (अनन्तर) अवयवों के अलग-अलग दिखाई देने पर इन्हें क्रम से नारद हैं इस रूप में जाना ।

संस्कृत व्याख्या - विभुः वस्तुतत्त्वस्य अवधारणे समर्थः, सः = श्रीकृष्णः, पुरा = पूर्व, त्विषा चयः तेजसां समूह, इति, अवधारितम् निश्चितम्, ततः = तदनन्तरं, विभाविताकृतिं = प्रकटितमनुष्याकृतिं, शरीरीति देहधारीति, विभक्ता-

वयवः-विविच्य गृहीताः मुखादयः अवयवाः यस्य तं, पुमान् पुरुषः, इति एवं, अमुं इमम्, क्रमात् = सामान्य विशेषज्ञानक्रमात्, नारदः ब्रह्मणः मानसपुत्रः नारदः, इति अबोधि एवं ज्ञातवान् । वस्तुतत्त्वस्य अवधारणे समर्थः श्री कृष्णः पूर्व तेजसां समूह इति निश्चितम्, तदनन्तरं प्रकटितमनुष्याकृतिं देहधारीति अवधारितम्, ततः विविच्य गृहीताः मुखादयः अवयवाः यस्य तं पुरुष एवं इमम् सामान्यविशेषज्ञानक्रमात् ब्रह्मणः मानसपुत्रः नारदः इति ज्ञातवान् ।

व्याकरणम् -

विभुः - उकारान्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन ।

सः- दकारान्त (तद्) हलन्त पुल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

अबोधि - क्रियापद। बुध् धातु लङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन ।

अलङ्कार - यहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। काव्यलिङ्ग की परिभाषा है-हेतोर्वाक्य पदार्थत्वे काव्यलिङ्ग निगद्यते- अर्थात् वाक्य या एक पद अथवा कई पदों के अर्थ के रूप में जब हेतु का कथन होता है वहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार होता है। प्रस्तुत श्लोक में 'विभाविताकृतिम्' और 'विभक्तावयवम्' पद शरीरी और पुंस्त्व का अवधारण कराने में हेतु रूप में कहे गए हैं।

नवानघोऽधो बृहतः पयोधरान् समूढकर्पूरपरागपाण्डुरम् ।

क्षणं क्षणोत्क्षिप्तगजेन्द्रकृतिना स्फुटोपमं भूतिसितेन शम्भुना ॥४॥

अन्वय - नवान् बृहतः पयोधरान् अघोऽधः (स्थितम्) समूढकर्पूरपरागपाण्डुरम्, क्षणं क्षणोत्क्षिप्त गजेन्द्र कृतिना भूतिसितेन शम्भुना स्फुटोपमम् (अमु सः नारद इत्यबोधि) ।

सर्वङ्कषा - नवानित्यादि । कीदृशममुम्-नवान् सद्यः सम्भूतसलिलान् अतिनी- लानिति यावत्। बृहतः विपुलान् । पयोधरान् मेघान्। अधोऽधः मेघानां समीपमधः प्रदेशे, स्थितमिति शेषः। 'उपर्यध्यधसः सामीप्ये' इति द्विर्भावः । तद्योगे द्वितीया, 'उभसर्वतसोः कार्याधिगुपर्यादिषु त्रिषु' इत्यादि वचनात् । समूढः- पुञ्जीकृतः। 'समूढः पुञ्जिते भुग्ने' इति विश्वः। कर्पूरस्य परागः चूर्ण तद्वत्पाण्डुरम्। अतएव क्षणं-मेघसमीपा-वस्थानक्षणे। अत्यन्त संयोगे द्वितीया। क्षणेषु ताण्डवोत्सवेषु। 'निर्व्यापारस्थिती काल-विशेषोत्सधयाः क्षणः'

इत्युभयत्राप्यमरः । उत्क्षिप्ता उपरि धारिता। गजेन्द्रस्य कृतिः-चर्म येन तेन। 'अजिनं चर्म कृतिः स्त्री' इत्यमरः । भूत्या-भस्मनासितेन । 'भूतिर्भस्मनि सम्पदि' इत्यमरः । शम्भुना स्फुटा उपमा सादृश्यं यस्य तं स्फुटोपमम्, स्फुटशम्भूपममित्यर्थः । सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात्समासः । 'सदृशपर्याययोस्तुलोपमाशब्दयोः अतुलोपमाभ्याम्' -इति निषेधात्सादृश्यवाचित्वे तृतीयेत्याहुः। केचिदिमं श्लोकं चयस्त्विवाम्' इत्यतः प्राग्लिखित्वा व्याचक्षते । तेषां पुंस्त्वावधारणात्प्राक्तेजः पिण्डमात्रस्य शम्भूपमौचित्यं चिन्त्यम् ॥

शब्दार्थ :- नवान्नए, बृहतः बड़े-बड़े, पयोधरान् बादलों के, अधोऽधः = नीचे (मेघों के समीप अधः प्रदेश में स्थित), समूहकर्पूरपरागपाण्डुरम् = पुञ्जीकृतकर्पूर चूर्ण के समान सफेद, क्षणम् मेघ के समीप में ठहरने के समय, क्षणोत्क्षिप्त गजेन्द्र-कृतिम् = ताण्डवनृत्य के उत्सव पर गजचर्म को ऊपर धारण करने वाले, भूतिसितेन = भस्म से सफेद, शम्भुना शिव से, स्फुटोपमम् स्पष्ट सादृश्य वाले (उन्हें श्रीकृष्ण जी ने 'नारद हैं' इस रूप में समझा)।

अनुवाद - नए बड़े-बड़े बादलों के समीप अधः प्रदेश में स्थित, पुञ्जीकृत कर्पूर चूर्ण के समान सफेद, मेघ के समीप में ठहरने के समय ताण्डवनृत्य के उत्सव पर गजराज के चर्म को धारण करने वाले, भस्म में सफेद शिव से स्पष्ट सादृश्य वाले उन्हें श्रीकृष्ण जी ने 'नारद हैं' इस रूप में समझा।

संस्कृत व्याख्या :- नवान् = नवीनान्, बृहतः = विशालान् पयोधरान् = मेघान् अधोऽधः = अधः भागे समूहकर्पूरपरागपाण्डुरम् = सुपिष्टकर्पूरचूर्णवद्देहधारिणम् शुभ्रम्, क्षणम् = मेघसमीपावस्थानक्षणे, क्षणोत्क्षिप्तगजेन्द्रकृतिना-ताण्डवनृत्यस्य अवसरे यः गजचर्म धारयति तेन, भूतिसितेन= भस्मना श्वेतेन, शम्भुना= शिवेन, स्फुटोपमम् = स्पष्टा उपमा यस्य तं, असौ नारदः श्रीकृष्णः इत्यवगच्छत् । नवीनान् विशालान् मेघान् अधः भागे सुपिष्टकर्पूरचूर्णवद्देहधारिणम् शुभ्रं, मेघसमीपावस्थानक्षणे ताण्डवनृत्यस्य अवसरे यः गजचर्म धारयति तेन भस्मना श्वेतेन शिवेन स्पष्टा उपमा यस्य तं, असौ नारदः श्रीकृष्णः इत्यवगच्छत् ।

अलंकार-उपमा इस श्लोक में नारद की उपमा शिवजी से दी गई है।

विशेष- शिवजी ने गजासुर को मारने के बाद उसके वर के अनुसार उसके चमड़े को अपने शरीर पर धारण किया था।

प्रसङ्ग - आकाश मार्ग से उतरते हुए नारद जी की तुलना करते हुए महाकवि माघ कल्पनाओं की मानों झड़ी से लगा देते हैं। उन्हीं कल्पनाओं में सर्वप्रथम वे आकाश में उतरते नारद मुनि की तुलना हिमालय से करते हैं-

**दधानमम्भोरुहकेसरद्युतीर्जटाःशरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम्।
विपाकपिङ्गास्तुहिनस्थलीरुहो धराधरेन्द्रं व्रततीततीरिव ॥5 ॥**

अन्वय - अम्भोरुहकेसरद्युतीः जटाः दधानम्, शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम् ; विपाकपिङ्गाः तुहिनस्थलीरुहः व्रततीततीः (दधानं) धराधरेन्द्रमिव (अमु सः नारद इत्यबोधि)।

सर्वङ्कषा - दधानामिति । पुनः कीदृशम्-अम्भोरुहकेसरद्युतिः- पद्मकिञ्जल्क-प्रभापिशङ्गीरित्यर्थः । जटा दधानम्। स्वयं तु शरच्चन्द्रमरीचिरोचिरिव रोचिर्यस्य तम् धवलमित्यर्थः । अतएव विपाकेन परिणामेन, पिङ्गाः पिङ्गलास्तुहिनस्थल्यां तुषारभूमौ रोहन्तीति तुहिनस्थलारुहः । व्रततीततीः लता व्यूहान्; 'वल्ली तु व्रततिलता' इत्यमरः । दधानम्-धराधरेन्द्रोः हिमवान्। तुहिनस्थलीति लिङ्गान्नारदोपमानत्वाच्च तमिव स्थितम् ।

शब्दार्थ - अम्भोरुहकेसरद्युतीः = कमल की केसर के समान आभा वाली; जटाः दधानम् जटाओं को धारण करते हुए, शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम् = शरत्कालीन चन्द्रमा की किरणों के समान आभा वाले, विपाकपिङ्गाः = पकने के कारण पीले, तुहिनस्थलीरुहः = तुषारभूमि में उगने वाले, व्रततीततीः (दधानं) = लताओं के समूह को धारण करने वाले, धराधरेन्द्रमिव हिमालय के समान (उन्हें श्री कृष्ण जी ने। 'नारद है' ऐसा समझा)। 1

अनुवाद - कमल की केसर के समान आभा वाली जटाओं को धारण करते हुए, शरत्कालीन चन्द्रमा की किरणों के समान आभा वाले, पकने के कारण पीले, तुषारभूमि में उत्पन्न लतासमूह को धारण करने वाले हिमालय के समान (उन्हें श्रीकृष्ण जी ने 'नारद जी हैं' ऐसा समझा)।

संस्कृत व्याख्याः- अम्भोरुहकेसरद्युतीः- पद्मपरागप्रभावत् प्रभा यासां ताः पिङ्गलवर्णाः, जटाः, दधानम्-धारयन्तं, शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम् = शरदतोः

चन्द्रस्य मरीचय इव द्युतिर्यस्य तम्, विपाकपिङ्गा परिणामे पिङ्गलाः
तुहिनस्थलीरुह = तुषारभूमौ समुद्भवाः, व्रततीततीः- लतासमूहान् (धारयन्तं)
धराधरेन्द्रमिव = हिमालयमिव पद्मपरागप्रभावत् प्रभा यासां ताः पिङ्गलवर्णाः
जटाः घायन्तं, शरदतोः चन्द्रस्य मरीचय इव द्युतिर्यस्य तं परिणामे पिङ्गलाः
तुषारभूमौ समुद्भवाः लतासमूहान् (धारयन्तं) हिमालयमिव (अमुं नारद इत्यबोधि
सः)। यासां ताः। समास - अम्भसि रोहन्तीति अम्भोरुहाः तेषां केसराः, तेषां
द्युतिरिव द्युतिः

अलंकार - उपमा। यहाँ नारदमुनि की जटाओं की कान्ति की तुलना कमलों
के किन्जल्कों से, नारदजी की कान्ति की तुलना शरत्कालीन चन्द्रमा की कान्ति
से और स्वयं उनकी तुलना पिंगलवर्ण वाली तुषारभूमि में उत्पन्न लतासमूहों को
धारण करने वाले हिमालय से की गई है, अतः उपमा है।

प्रसङ्ग - इस श्लोक में आकाश में उतरते नारद मुनि श्रीकृष्ण के स्वयं अपने
भाई बलराम जैसे ही प्रतीत हुए।

पिशङ्गमौञ्जीयुजमर्जुनच्छविंवसानमेणाजिनमञ्जनद्युति।

सुवर्णसूत्राकलिताधराम्बरां विडम्बयन्तम् शितिवाससस्तनुम् ॥6 ॥

अन्वय - पिशङ्गमौञ्जीयुजम् अर्जुनच्छविम् अञ्जनद्युति एणाजिनं वसानम्
सुवर्णसूत्राकलिताधराम्बरां शितिवाससः तनुं विडम्बयन्तम् (अमुं सः नारद
इत्यबोधि) ।

सर्वङ्कषा - पिशङ्गेति । पुनः कीदृशम्। मुञ्जस्तृण विशेषः तन्मयी मेखला
मौञ्जी पिशङ्गया मौञ्ज्या युज्यते इति पिशङ्गमौञ्जीयुजम् । 'सत्सूद्विष'
इत्यादिना क्विप्। 'स्त्रियाः पुंवत्' इति पिशङ्गशब्दस्य पुंवद्भावः ।
अर्जुनच्छविधवलकान्तिम्। 'वलक्षो धवलोऽर्जुनः' इत्यमरः । अञ्जनद्युति
अञ्जनवर्णम्। एणाजिनं कृष्णमृगचर्म। वसानम्-आच्छादयन्तम् 'वस आच्छादने'
इति धातोः शानच् । सुवर्णसूत्रेण-कनकमेखलया-आकलितं बद्धम्।
अधराम्बरमन्तरीयकं यस्यास्तां । शितिवाससः नीलाम्बरस्य रामस्य तनुं
विडम्बयन्तम्-अनुकुर्वाणमित्यर्थः । आर्थीउपमा।

शब्दार्थ - पिशङ्गमौञ्जीयुजम् पीली मूँज की मेखला से युक्त, अर्जुन-च्छविम् उज्ज्वल छवि से युक्त, अञ्जनद्युति काजल की आभा वाले, एणाजिनं = काले मृगचर्म की, वसानम् धारण किए हुए, सुवर्णसूत्राकलिताधराम्बरां = सोने का करधनी से अधोवस्त्र को बाँधे हुए, शितिवाससः नीलवर्ण के वस्त्र को धारण करने वाले बलदेव के, तनुं शरीर का, विडम्बयन्तम् अनुसरण करते हुए (उन्हें) श्रीकृष्ण जी ने 'नारद हैं' ऐसा समझा।

अनुवाद-पीली मूँज की मेखला से युक्त, उज्ज्वल छवि से युक्त एवं काजलों की आभा वाले काले मृगचर्म को धारण किए हुए, सोने की करधनी से अधोवस्त्र को बाँधे हुए (इस प्रकार) नीलवर्ण के वस्त्र को धारण करने वाले बलदेव के शरीर का अनुसरण करते हुए (उन्हें) श्रीकृष्ण जी ने 'नारद हैं' ऐसा जाना।

संस्कृत व्याख्या - पिशङ्गमौञ्जीयुजम् = पिङ्गलवर्णया मुञ्जमय्या मेखलया बद्धम्, अर्जुनवच्छविम् = धवलकान्तिम्, अञ्जनद्युति = कृष्णछवि, एताजिनं = मृग-चर्मपरिधानम्, सुवर्णसूत्राकलिताधराम्बराम् = सुवर्णमेखलाबद्धाधोवस्त्राम्, शिति-वाससः नीलवस्त्रधारिणः, तनुं शरीरम्, विडम्बयन्तम् अनुकुर्वन्तम् (अमुं नारद इत्यबोधि स ।)

पिङ्गलवर्णया मुञ्जमय्या मेखलया बद्धम् धवलकान्तिं, कृष्णछवि मृगचर्म परिधानं सुवर्ण मेखलाबद्धाधोवस्त्राम्, नीलवस्त्रधारिणः, बलभद्रस्य शरीरम् अनुकुर्वन्तम् (अमुं नारद इत्यबोधि सः ।)

विशेष - यहाँ आकाश से उतरते नारद श्रीकृष्ण को बलराम जैसे ही प्रतीत हुए क्योंकि दोनों के वस्त्रों और शरीर में समानता है। नारद के शरीर की कान्ति भी बलराम के समान ही धवल है, उन्होंने काले वर्ण का मृगचर्म धारण कर रखा है जिसे उन्होंने मूँज की मेखला से बाँध रखा है। भेद मात्र इतना है, बलराम नीले वर्ण के अधोवस्त्र पहनते हैं जिसे सुवर्ण मेखला से बाँधते हैं दूर से दोनों एक से ही प्रतीत हो रहे हैं अतः कृष्ण को वे आकाश से उतरते बलराम ही लगे।

विहङ्गराजाङ्गरुहैरिवायतैर्हिरण्योर्वीरुहवल्लितन्तुभिः ।

कृपोपवीतं हिमशुभ्रमुच्चकैर्घनं घनान्ते तडिताङ्गणैरिव ॥7॥

अन्वय - विहङ्गराजाङ्गरुहैः इव आयतैः हिरण्मयोर्वीरुहवल्लितन्तुभिः कृतोपवीतं हिमशुभ्रम् (अतएव) घनान्ते तडितां गणैः (उपलक्षितम्) उच्चकैः घनम् इव (अमुं सः नारद इत्यबोधि) ।

सर्वङ्कषा - विहङ्गोति । पुनः विहङ्गराजाङ्गरुहैरिव गरुत्मल्लोमतुल्यैः । आयनैः दीर्घः। हिरण्यस्य विकारो हिरण्मयी। 'दाण्डिनायन' इत्यादिना मयटि यलोपनिपातः । तस्याम् उर्ध्वा रुहा रूढाः । इगुपधलक्षणः कप्रत्ययः । तासां वल्लीनां तन्तुभिः तत्तुल्यैः सूक्ष्मावयवैः । उपादानगुणात् हिरण्मयैः । 'कृतोपवीतं शोभार्थं कल्पितयज्ञसूत्रं स्वयं हिमशुभ्रम् अतएव । घनान्ते शरदि तडितां गणैरुपलक्षितम् । 'तडित्सौदामनी विद्युत्' इत्यमरः । उच्चैरेवोच्चकैः-उन्नतम् ? घनं- मेघमिवस्थितम् ।

शब्दार्थ - विहङ्गराजाङ्गरुहैरिव = पक्षिराज गरुड़ के रोमों जैसे; आयतैः = दीर्घ, हिरण्मयोर्वीरुहवल्लितन्तुभिः = सुवर्णमयी भूमि में उत्पन्न लतातन्तुओं के द्वारा, कृतोपवीतं = (शोभा के लिए निर्मित) यज्ञोपवीत पहिने हुए, हिमशुभ्रम् = हिम के समान सफेद वर्ण से युक्त (अतएव), घनान्ते शरत्काल में, तडितां गणैः = बिजलियों के समूहों से (उपलक्षित), उच्चकैः = ऊँचे, घनम् इव = बादल के समान (उन्हें श्रीकृष्ण जी ने 'नारद हैं' ऐसा समझा) ।

अनुवाद - पक्षिराज गरुड़ के रोमों जैसे दीर्घ, सुवर्णमयी भूमि में उत्पन्न लतातन्तुओं के द्वारा बनाए गये यज्ञोपवीत को पहिने हुए, हिम के समान सफेद वर्ण से युक्त (अतएव) शरत्काल में बिजलियों के समूह से युक्त ऊँचे मेघ के समान (उन्हें श्रीकृष्ण जी ने 'नारद हैं' ऐसा समझा)।

संस्कृत व्याख्या - विहङ्गराजाङ्गरुहैः = पक्षिराजस्य गरुडस्य लोमसदृशैः, इव, आक्षतैः = दीर्घैः, हिरण्यमयोर्वीरुहवल्लितन्तुभिः = सुवर्णमय्यां भूमौ समुत्पन्न-लतासूत्रैः कृतोपवीतम् = निर्मितयज्ञसूत्रम्, हिमशुभ्रम् = तुषारवद्भवलम्, घनान्ते = मेघ-निष्क्रान्ते तडिताम् = विद्युताम्, गणैः = समूहैः, उच्चकैः = अत्युन्नत, घनम् = मेघम्, इव (स्थितम्) ।

**निसर्गचित्रोज्ज्वलसूक्ष्मपक्ष्मणा लसद्विसच्छेदसिताङ्गसङ्गिना ।
चकासतं चारुचमूरुचर्मणा कुथेन नागेन्द्रमिवेन्द्रवाहनम् ॥8 ॥**

अन्वय - निसर्गचित्रोज्ज्वलसूक्ष्मपक्ष्मणा लसद्विसच्छेदसिताङ्गसङ्गिना चारुचमूरुचर्मणा कुथेन इन्द्रवाहनं नागेन्द्रम् इव चकासतं (अमुं सः नारद इत्यबोधि) ।

सर्वङ्कषा - निसर्गति । पुनः निसर्गात्स्वभावादेव चित्राणि, शबलानि, उज्ज्वलानि-भास्वराणि, सूक्ष्मानि लोमानि यस्य तेन। लसन् यो विसच्छेदमृणालखण्डः । 'छेदः खण्डोऽस्त्रियाम्' इति त्रिकाण्डशेषः, तद्वत्सिते-अङ्गो-वपुषि सङ्गिनासक्तेन । चारुणा-मनोहरेण, चमूरुचर्मणा-मृगत्वचा। कुथेन-पृष्ठास्तर्णेन । 'प्रवेण्यास्तरणं वर्णः परिस्तोमः कुथे द्वयोः' इत्यमरः । इन्द्रवाहन-नागेन्द्रमैरावतमिव । चकासतेः शोभमानम्। इन्द्रस्यवाहन -मिति स्वस्वामिभावमात्रस्य दिवक्षितत्वात् 'वाहनमाहितात्' इति न णत्वम्। यथाह वामनः - 'नरेन्द्रवाहनशब्दे णत्वमाहितत्वस्याविवक्षितत्वात्' इति । चकासते शतरि 'नाभ्यस्ताच्छतुः' इति नुमभायः । 'जक्षित्यादयः षट्' इत्यभ्यस्तसंज्ञा ।

शब्दार्थ - निसर्गचित्रोज्ज्वलसूक्ष्मपक्ष्मणा = स्वभाव से ही चित्र विचित्र तथा उज्ज्वल सूक्ष्म रोमों वाले, लसद्विसच्छेदसंगिताङ्गता = शोभायमान होते हुए कमलनाल के समान सफेद शरीर पर स्थित, चारुचमूरुचर्मणा= सुन्दर मृगचर्म से, कुथेन= झूल के द्वारा, इन्द्रवाहनं = इन्द्र के वाहन, नागेन्द्रम् इव ऐरावत हाथी के समान, चकासतं = सुशोभित होते हुए (इन्हें श्रीकृष्ण ने 'नारद है' ऐसा जाना)।

अनुवाद - स्वभाव से ही चित्रविचित्र तथा उज्ज्वल सूक्ष्म रोमों वाले शोभायमान होते हुए कमलनाल के समान सफेद शरीर पर स्थित सुन्दर मृगचर्म से

संस्कृत व्याख्या: - निसर्गचित्रोऽज्ज्वलसूक्ष्मपक्ष्मणा-स्वभावादेव विचित्राणि, भास्वराणि लोमानि यस्य तत् तेन, लसद्विसच्छेदसिताङ्गसङ्गिनाचारुचमूरुचर्मणा शोभायमाने मृणालखण्डधवलाङ्गसङ्गि तेन, सुन्दरचमूरुमृगचर्मणा, कुथेन-पृष्ठास्तर्णेन, चकासतम् = शोभायमानम्, इन्द्रवाहनम् = ऐरावतम्, नागेन्द्रम् = गजराजम् इव च । च कासतम् = प्रकाशन्तम् । स्वभावादेव विचित्राणि भास्वराणि लोमानि यस्य तत्, तेन, शोभायमान-मृणालखण्डधवलाङ्गसङ्गि तेन

सुन्दरचमूरुमृगचर्मणा पृष्ठास्तर्णेन, शोभायमानम् ऐरावतम् गजराजम् इत,
प्रकाशन्तम अमुं नारद इत्यबोधि सः ।

अजस्रमास्फालितवल्लकीगुणक्षतोज्ज्वलाङ्गुष्ठनखांशुभिन्नया ।

पुरः प्रवालैरिव पूरितार्धया विभान्तमच्छस्फटिकाक्षमालया ॥9॥

अन्वय - अजस्रम् आस्फालितवल्लकीगुणक्षतोज्ज्वलाङ्गुष्ठनखांशुभिन्नया
पुरः प्रवालैः पूरितार्धया इव अच्छस्फटिकाक्षमालया विभान्तम् (अमुम् सः नारद
इत्यबोधि) ।

सर्वङ्कषा - अजस्रमिति । पुनः अजस्रं प्राचुर्येण, आस्फालिताः- ताडिताः ।
सौष्ठवपरीक्षार्थं न्युब्जाङ्गुष्ठेन तन्त्रीताडनं प्रसिद्धम् । तेषां वल्लकीगुणानां-
वीणातन्त्रीणां, क्षतेन संघर्षणेनोज्ज्वलैरङ्गुष्ठनखांशुभिर्भिन्नयामिश्रया
तद्रागरक्तयेत्यर्थः । अतएव पुरः पुरोभागे प्रवालैर्विद्रुमैः । 'अथ विद्रुमः पुंसि प्रवालं
पुंनपुंसकम्' इत्यमरः । पूरितार्धमेव -स्थितया अच्छस्फटिकाक्षमालया
स्वच्छस्फटिकानां मालया, जपमालयेत्यर्थः । 'अच्छो भल्लूके
स्फटिकेऽमलेऽच्छाभिमुखेऽव्ययम्' इति हेमचन्द्रः । तथा प्रसिद्ध स्फटिकग्रहणा-
दृषेर्मोक्षार्थित्वं व्यज्यते । 'स्फटिको मोक्षदः परम्' इति मोक्षार्थिनां स्फटिकाक्षमाला-
भिधानात् । विभान्तं-भासमानम् । भातेः शतृप्रत्ययः । अत्र 'नखांशुभिन्नयेति'
स्वगुणत्या-गेनान्यगुण स्वीकारलक्षणस्तद्गुणालङ्कार उक्तः । 'तद्गुण
स्वगुणत्यागात्' इति ।

शब्दार्थ - अजस्रम् = निरन्तर, आस्फालितवल्लकीगुणक्षतोज्ज्वला -
ङ्गुष्ठनखांशुभिन्नया=बजाई गई वीणातन्त्री के घर्षण से अत्यधिक लाल अंगूठे के
नाखून की किरणों से मिश्रित, पुरः = सामने, प्रवालैः = मूंगों से, पूरितार्थता इव
= जिसका आधा भाग पूर्ण किया गया है, अच्छस्फटिकाक्षमालया = स्वच्छ
स्फटिक की माला से, विभान्तम् = शोभित होते हुए (अमुं सः नारद इत्यबोधि =
इन्हें श्रीकृष्ण जी ने नारद हैं, ऐसा समझा) ।

अनुवाद-निरन्तर बजाई गई वीणातन्त्री के घर्षण से अत्यधिक लाल अंगूठे
के नाखून की किरणों से मिश्रित, सामने मूंगों से जिसका आधा भाग पूर्ण किया
गया है, स्वच्छ स्फटिक की माला से शोभित होते हुए (इन्हें श्रीकृष्ण जी ने 'नारद
जी है' ऐसा समझा) ।

संस्कृत व्याख्या: - अजस्रम् = सततम्-आस्फालित-वल्लकीगुणक्षतो-ज्ज्वलाङ्गुष्ठनखांशुभिन्नया=परिवादितवीणागुणसंघर्षणेन
उज्ज्वलाङ्गुष्ठकररुहैर्भिन्नया, पुरः = विशेषः - नारदजी की अक्षमाला स्फटिक मणि की बनी हुई है वह इतनी निर्मल है कि निरन्तर बजाये जाने से लाल पड़े हुए उनके नाखून के लालरंग को उसने ग्रहण कर लिया है। कवि की उत्प्रेक्षा उस पर अद्भुत है कि स्फटिक मणि नाखूनों के लाल रंग के प्रकाश से ऐसी लग रही है कि उसका आधा भाग विद्रुमों से गुम्फित हो। ऐसी जपमाला को धारण किये हुए आकाश से उतरते नारदजी प्रतीत हुए।

प्रसङ्ग - नारदमुनि के हाथ में 'महती' नामक वीणा थी, जब वे आकाश मार्ग से उतर रहे थे तो वायु के आघात से वह बार बार बज रही थी जिसे नारदजी देख रहे थे।

**रणद्भिराघट्टनया नभस्वतः पृथग्विभिन्नश्रुतिमण्डलैः स्वरैः ।
स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्च्छनामवेक्षमाणं महतीं मुहुर्मुहुः ॥10 ॥**

अन्वय-नभस्वतः आघट्टनया पृथक् रणद्भिः विभिन्नश्रुतिमण्डलैः स्वरैः स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्च्छनां महतीं मुहुः मुहुः (अवेक्षमाणम् अमुं सः नारद इत्यबोधि)।

अनुवाद - वायु के आघात के पृथक् पृथक् बजते हुये प्रतिनियत संख्या से व्यवस्थित श्रुतियों के समूहों से युक्त स्वरों से जिसमें ग्राम विशेष की मूर्च्छनायें प्रकट हो रही हैं ऐसी महती नामक वीणा को बार-बार देखते हुए (उन्हें 'नारद जी हैं' ऐसा श्रीकृष्ण जी ने समझा)।

संस्कृत व्याख्या: - नभस्वतः- वायोः, आघट्टनया = आघातेन, पृथक् = विस्पष्टं, रणद्भिः = ध्वनद्भिः, विभिन्नश्रुति मण्डलैः = विविधश्रुतिसमूहैः, स्वरैः= षडजगान्धारादिभिः सप्तस्वरैः, स्फुटीभवत् = स्पष्टीभवन्त्यः ग्रामत्रयाणां आरोहावरोहा-त्मकानां मूर्च्छनां, महतीम् = महती इति नाम्नीं स्वकीयां वीणां, मुहुः मुहुः वारं वारं, अवेक्षमाणम् = अवलोकयन्तम्। वायोः आघातेन विस्पष्टं ध्वनद्भिः विविधश्रुतिसमूहैः, षडजगान्धारादिभिः सप्रस्तरैः स्पष्टीभवन्त्यः

षडजाद्यपरस्वरसमूहरूपग्रामत्रयाणाम् आरोहावरोहात्मकानां मूर्च्छनां 'महती' इति नाम्नीं स्वकीयां वीणा वारं वारं अवलोकयन्तं (अमुं नारद इत्यबोधि सः)।

निवर्त्य सोऽनुव्रजतः कृतानतीनतीन्द्रियज्ञाननिधिर्नभः सदः ।

समासदत्सादितदैत्यसम्पदः पदं महेन्द्रालयचारु चक्रिणः ॥11 ॥

अन्वय - अतीन्द्रियज्ञाननिधिः स कृतानतीन् अनुव्रजतः नभः सदः निवर्त्य सादितदैत्यसम्पदः चक्रिणः महेन्द्रालयचारु पदं समासदत् ।

सर्वङ्कषा - निवर्त्येति । अतीन्द्रिया इन्द्रियमतिक्रान्ता देशकालस्वरूपाद्वि-प्रकृष्टार्थाः 'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' इति समासः । 'द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु परलिङ्गता प्रतिषेधो वक्तव्यः' इति विशेष्यलिङ्गत्वम् । तेषां ज्ञानं तस्य निधिः। सर्वार्थदृष्टेत्यर्थः । कृतानतीन्-कृतप्रणामान् । अनुव्रजतः-अनुगच्छतः । नभसि-आकाशे। सीदन्ति-गच्छन्तीति, नभः सदः-सुरान्। 'सत्सूद्विष' - इत्यादिना क्विप् । निवर्त्यप्रतिषिध्य। सः-मुनिः । सादितदैत्यसम्पदः-सादिताः विध्वस्तीकृता दैत्यानां सम्पदो येन तस्य। चक्रिणः-कृष्णस्य । पदं-स्थानम्। महेन्द्रालयचारु-इन्द्रभवनमिव भासमानं समासदत् । समापूर्वात् षद्लृद्धातोर्लुङ् । 'पुषादि' (3/1/55) इत्यङ् । अत्र 'नतीनती पदः पदमिति च द्वयोर्व्यञ्जनयुग्मयोरसकृदावृत्या छेकानुप्रासः । अन्यत्र वृत्यनुप्रास इत्यनयोः संसृष्टिः ।

शब्दार्थ - अतीन्द्रियज्ञाननिधिः = अतीन्द्रियज्ञान के निधि, सः = नारद जी ने, कृतानतीन् = जिन्होंने प्रणाम किया था ऐसे, अनुव्रजतः = पीछे चलने वाले, नभः सदः=देवताओं को, निवर्त्य= लौटाकार, सादितदैत्य सम्पदः दैत्यों की सम्पत्ति को नष्ट करने वाले, चक्रिणः = चक्रधारी श्रीकृष्ण के, महेन्द्रालयचारु महेन्द्रभवन के समान सुन्दर, पद = स्थान को, समासदत् = प्राप्त किया।

अनुवाद - अतीन्द्रियज्ञान के निधि नारद जी ने, जिन्होंने प्रणाम किया था। ऐसे अपने पीछे चलने वाले देवताओं को लौटाकर दैत्यों की सम्पत्ति को नष्ट करने वाले चक्रधारी श्रीकृष्ण के महेन्द्रभवन के समान सुन्दर स्थान को प्राप्त किया।

संस्कृत व्याख्या - अतीन्द्रियज्ञाननिधिः = देशकालस्वरूपाद्विप्रकृष्टपदार्थानां ज्ञानकोषः अर्थात् सर्वार्थदृष्टा नारदमुनिः कृतानतीन् = कृतप्रणामान् अनुव्रजतः =

अनुगच्छतः, नभः सदः = देवान्, निवर्त्यः = परावर्त्य, सादितदैत्यसम्पदः = विनाशित राक्षसकुलैश्वर्यस्य, चक्रिणः = चक्रधारिणः श्रीकृष्णस्य, महेन्द्रालयचारु इन्द्रभवनस्य सुन्दरं, पदं स्थानं, समासदत् = प्राप्तवान् । देशकालस्वरूपाद्विप्रकृष्टपदार्थानां ज्ञानस्य कोषः अर्थात् सर्वार्थद्रष्टा नारदमुनिः कृतप्रणामान् अनुगच्छतः देवान् परावर्त्य, विनाशितराक्षस-कुलैश्वर्यस्य श्रीकृष्णस्य इन्द्रभवनस्य सुन्दरं स्थानं प्राप्तवान् ।

पतत्पतङ्गप्रतिमस्तपोनिधिः पुरोऽस्य यावन्न भुवि व्यलीयत ।

गिरेस्तडित्वानिव तावदुच्चकैर्जवेन पीठादुदतिष्ठदच्युतः ॥12 ॥

अन्वय - पतत्पतङ्गप्रतिमः तपोनिधिः अस्य पुनः भुवि यावत् न व्यलीयत, तावद् अच्युतः गिरेः तडित्वान् इव उच्चकैः पीठात् जवेन उदतिष्ठत् ।

सर्वङ्कषा - पतदिति । पतन्यः पतङ्गः- सूर्यः से प्रतिमापमानं यस्य सः । 'पतङ्गौ पक्षि सूर्यो च' इत्यमरः । तपोनिधिः मुनिरस्य-हरेः पुरो भुवि-पुरः प्रदेशे यावन्न व्यलीयत नातिष्ठत् । 'लीङ् गतौ' इति धातोर्देवादिकात्कर्तरिलङ् ।

तावदच्युतः- हरिर्गिरः शैलात् । तडितोऽस्मि सन्तीति तडित्वान् मेघ इव ।

मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः 'इति मतुपो मकारस्य वकारः । 'तसौ मत्वर्थे' इति भसंज्ञायामेकसंज्ञाधिकारेणापदत्वान्न जश्त्वम् । उच्चकैः -

उन्नतात्पीठादासनाज्जवेनोदतिष्ठत् । मुनिचरणस्य भूस्पर्शात्प्रागेव स्वयमुत्थितवान् । 'ऊर्ध्वं प्राणा द्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति । प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां

पुनस्तान्प्रतिपद्यते ।' इति शास्त्रमनुस्मरन्निति भावः । 'उदोऽनूर्ध्वकर्मणि' इति नियमादिहोर्ध्वं कर्मणि नात्मने पदम् । पतत्पतङ्ग इत्यत्र पतङ्गस्य

पतनासम्भवादियमभूतोप-मेत्याचार्यदण्डि-प्रभृतयो बभूवुः । अतः

एवाप्रसिद्धस्योपमानत्वायोगादुत्प्रेक्षेत्याधुनिकालङ्कारिकाः सर्वे वर्णयन्ति ॥

शब्दार्थ - पतत्पतङ्गप्रतिमः = गिरते हुए सूर्य के समान, तपोनिधिः = तपस्या के निधि, अस्य पुरः = श्रीकृष्ण के सामने, यावत् जब तक, भुवि = पृथ्वी पर, न व्यलीयत नहीं स्थित हुए, तावद्= तब तक, अच्युतः श्रीकृष्ण, गिरेः = पर्वत से, तडित्वानिव= बादल के समान, उच्चकैः ऊँचे, पीठात्=आसन से, जवेन वेग से, उदतिष्ठत्= उठ खड़े हुए।

अनुवाद - गिरते हुए सूर्य के समान तपस्या के निधि नारद जी इन (श्रीकृष्ण जी) के सामने जब तक पृथ्वी पर स्थित नहीं हुए, तब तक श्रीकृष्ण पर्वत से (उठे हुए) बादल के समान ऊँचे आसन से वेग से उठ खड़े हुए।

संस्कृतव्याख्या: - पतत्पतङ्गप्रतिमः = निष्पतत्सूर्यमण्डलतुल्यः तपोनिधिः = तपसां निधिः, स मुनिः नारदः, अस्य श्रीकृष्णस्य, पुरः अग्रे, भुवि = पृथ्वीमण्डले, यावत् = यावत्कालपर्यन्तं, नव्यलीयत्-नातिष्ठत्, तावत् = तावदेव, अच्युतः = हरि । गिरे = पर्वतात्, तडित्वान् इव मेघ इव, उच्चकैः = अत्युच्चैः, पीठात् = सिंहासनात्, जवेन = वेगेन, उदतिष्ठत् = उत्थितवान् । निष्पतत्सूर्यमण्डलतुल्यः तपसां निधिः स मुनिः नारदः श्रीकृष्णस्य अग्रे पृथ्वीमण्डले यावत्कालपर्यन्तं नातिष्ठत्, तावदेव हरिः पर्वतात् मेघ इव अत्युच्चैः सिंहासनात् वेगेन उत्थितवान् ।

अथ प्रयत्नोन्नमितानमत्फणैर्धृते कथञ्चित्फणिनां गणैरधः ।

न्यधायिषातामभिदेवकीसुतं सुतेन धातुश्चरणौ भुवस्तले ॥13 ॥

अन्वय-अथ धातुः सुतेन प्रयत्नोन्नमितानमत्फणैः फणिनां गणैः अधः कथञ्चिद्

धृते भुवः तले अभिदेवकी सुतं चरणौ न्यधायिषाताम् ।

सर्वङ्कषा - अथेति । अथाच्युताभ्युत्थानानन्तरम् । धातुः सुतेन, नारदेन । प्रयत्नोन्नमितास्तथापि मुनिपादन्यासभारादानमन्तरयः फणा येषां तैः । फणिनां गणैरधोऽधः प्रदेशे । कथञ्चिद्धृतेस्थापिते । भुवस्तले भूपृष्ठे । अभिदेवकीसुतमभिलक्ष्यीकृत्येत्यर्थः । 'लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये' इत्यव्ययीभावः । चरणौ-पादौ 'पदङ्घ्रिश्चरणोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः । न्यधायिषातां निहितौ । दधातेः कर्मणि लुङ् । 'स्यासिच्सीयुट्' इत्यादिना चिण्वदिटि युक् । अत्र फणानां मनोन्नमनासम्बन्धेऽपि मुनिगौरवाय तत्सम्बन्धाभिधानना-दतिशयोक्ति भेदः ।

शब्दार्थ - अथ = अनन्तर, धातुः सुतेन = ब्रह्मा जी के पुत्र नारद ने, प्रयत्नोन्न -मितानमत्फणैः = प्रयत्न से ऊपर की ओर उठाए जाने पर भी अवनत फणों वाले, फणिनां=नागों के, गणैः=समूहों के द्वारा, अधः = नीचे, कथञ्चिद्-

किसी प्रकार, धृते=धारण किये हुए, भुवः तले = पृथ्वी तल पर, अभिदेवकोसुतम् = देवकी के पुत्र श्रीकृष्ण के समान, चरणौ दोनों पैर, न्यधायिषातम् = रखें ।

अनुवाद - अनन्तर ब्रह्मा जी के पुत्र नारद ने प्रयत्न से ऊपर की ओर उठाए जाने पर भी अवनत फणवाले नागों के समूहों के द्वारा नीचे किसी प्रकार धारण किए हुए पृथ्वी तल पर देवकी के पुत्र श्रीकृष्ण के सामने पैर रखे।

संस्कृत व्याख्या: - अथ ततः, धातुः = ब्रह्मणः, सुतेन = तनयेन, प्रयत्नो-न्नमितानभत्फणैः = प्रयासेन उत्थापितास्तथापि अधोगच्छत्फणमण्डलेन, फणिनां = नागानां, गणैः = समूहैः, अधः = निम्नप्रदेशे, कथञ्चित् केनापि प्रकारेण, धृते=धारिते, भुवस्तले = पृथिवीतले, अभिदेवकीसुतं देवकीपुत्रं श्रीकृष्णं, चरणौ = पादौ, न्यधायि-षाताम् स्थापितौ ।

तमर्घ्यमर्यादिकमादिपूरुषः सपर्यया साधु स पर्यपूजत् ।

गृहानुपैतुं प्रणयादभीप्सवो भवन्ति नापुण्यकृतां मनीषिणः ॥14 ॥

अन्वय- आदिपुरुष सः अर्घ्यं तम् अर्घ्यादिकया सपर्यया साधु पर्यपूजत्। मनीषिणः अपुण्यकृतां गृहान् प्रणयात् उपैतुम् अभीप्सवः न भवन्ति ।

सर्वङ्कषा - तमिति । आदिपुरुषः-पुराणपूरुषः । 'अन्येषामपि दृश्यते' इति वा दीर्घः । सः कृष्णः । अर्ध-पूजामर्हतीत्यर्घ्यः । 'दण्डादिभ्यो यः' । तं-नारदम् । अर्घार्थं द्रव्यमर्घ्यम् । 'पादार्धाभ्यां च' इति यत्प्रत्ययः । 'मूल्ये पूजाविधावर्धः' षट् तु त्रिष्वर्धमघायें इति चामरः । अर्घ्यमादिर्यस्यास्तया अर्घ्यादिकया । शेषाद्विभाषा इति विकल्पेन कप्प्रत्ययः । सपर्यया पूजया । पूजा नमस्याऽपचितिः सपर्याऽर्चाहणाः समाः इत्यमरः । साधु यथा तथा पर्यपूजत्-परिपूजितवान् । णौ चङन्तं कर्तव्यम् । युक्तं चैतदित्यर्थान्तरं न्यस्यति गृहानिनि । मनस ईषिणो मनीषिणः सन्तः । पृषोदरादित्वात्साधुः । अपुण्यकृतां-पुण्यमकृतवताम् । 'सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृजः' इति भूते क्विप् । गृहान्प्रणयादुपैतुमभीप्सवः प्राप्तुमिच्छवः आप्नोतेः सन्नन्तादुप्रत्ययः आप्रजव्युधामीत् इतोकारः । न भवन्ति । किन्तु पुण्यकृतामेव । अतः कृच्छलभ्याः सन्तः पूज्या इत्यर्थः ॥

शब्दार्थ - आदिपूरुषः = पुराणपुरुष, सः = कृष्ण ने, अर्घ्यम् = पूजा के योग्य, तम्= उन नारद जी को, अर्घ्यादिकया=अर्घ्यादि, सपर्यया = पूजा से, साधु

भली प्रकार, पर्यपूजत् = परिपूजित किया। मनीषिणः = सन्त, अपुण्यकृतां पुण्य न करने वालों के, गृहान् घरों को, प्रणयात् = प्रेम से, उपैतुम् = समीप में जाने के, अभीप्सवः = इच्छुक, न भवन्ति नहीं होते हैं।

अनुवाद - पुराणपुरुष श्री कृष्ण जी ने पूजा के योग्य उन नारद जी को अर्घ्यादि पूजा से भली प्रकार परिपूजित किया। सन्तपुरुष पुण्य न करने वालों के घर प्रेमपूर्वक जाने के इच्छुक नहीं होते हैं।

संस्कृत व्याख्या-आदिपुरुषः = पुराणपुरुषः, सः = श्रीकृष्णः, अर्घ्यम् = पूजार्थं प्रस्तुतं द्रव्यम् = नारदम्, अर्घ्यादिकया = सपर्यया, साधु-सम्यक्तया, पर्यपूजयत् = परिपूजितवान् । मनीषिणः = सन्तजनाः, अपुण्यकृतां = पापवताम्, गृहान् = गृहाणि, प्रणयात् = प्रेम्णः, उपैतुं गन्तुं, अभीप्सवः = इच्छुकाः, न भवन्ति। पुराणपुरुषः सः श्रीकृष्णः पूजार्थं प्रस्तुतं द्रव्यं तं नारदं सपर्यया सम्यक्तया परिपूजितवान्। सन्तजनाः पापवतां गृहाणि प्रेम्णः गन्तुं इच्छुकाः नैव भवन्ति । बिठाया।

न यावदेतावुदपश्यदुत्थितौ जनस्तुषाराञ्जनपर्वताविव ।

स्वहस्तदत्ते मुनिमासने मुनिश्चिरन्तनस्तावदभिन्यवीविशत् ॥15॥

अन्वय जनः उत्थितौ एतौ तुषाराञ्जनपर्वती इव यावत् न उदपश्यत् ताक चिरन्तनः मुनिः स्वहस्तदत्ते आसने मुनिम् अभिन्यवीविशत् ।

सर्वङ्कषा- न यावदिति। उत्थितावेतौ-मुनिकृष्णौ। जनः- तुषाराञ्जनयोः पर्वताकि यावन्नोदपश्यन्नोत्प्रेक्षितवान् । तावच्चिरन्तनः पुराणो मुनिः कृष्णः । 'पुरा कि भगवान्बदरिकारण्ये नारायणावतारेण तपसि स्थितवान्' इति पुराणात् । सायंचिरम इत्यादिना द्युप्रत्ययस्तुडागमश्च स्वहस्तेन दत्ते आसने मुनिं नारदमभिन्यवीविशनस्वाभिमुखेनोपवेशितवान्अभिनिपूर्वाद्विशतेण्यन्ताल्लुडि' णिश्रि' इति चङ्।

शब्दार्थ - जनः = मनुष्यों ने, उत्थितौ एतौ खड़े हुए इन दोनों को तुषाराञ्जनपर्वतौ इव = हिम और अंजनपर्वत के समान, यावत् = जब तक, न उदपश्य = नहीं देखा, तावत् = तब तक, चिरन्तनः = पुराण, मुनिः = मुनि

(श्रीकृष्ण) स्वहस्तदत्तं = अपने हाथ से दिए गए, आसने आसन पर, मुनिम् = मुनि को, अभिन्ना. वीविशत् = बैठा दिया।

अनुवाद - मनुष्यों ने खड़े हुए इन दोनों को हिम और अंजन पर्वत (हिमाला और नीलगिरि) के समान जब तक नहीं देखा, तब तक पुराण मुनि श्रीकृष्ण ने अप हाथ से दिए गए आसन पर नारद मुनि को बैठाया।

संस्कृत व्याख्या: - जनः = द्वारकावासी, उत्थितौ = उद्गतौ, एतौः मुनिकृष्णौ, तुषाराञ्जनपर्वतौ = हिमकज्जलयोः अचलौ, इव तुल्य, यावत् यावत्क लपर्यन्तं, न नैव, उदपश्यत् उत्प्रेक्षितवान्, तावत् = तावदेव, चिरन्तनः = सनातर मुनिः = नारदमुनिः स्वहस्तदत्तं = स्वकीयहस्तेन प्रदत्ते, आसने = सुखासने, मुनिम्ः नारदमुनिं अभिन्यवीविशत् = स्वाभिमुखेन उपवेशितवान् ।

प्रश्न :- सही जोड़ी बनाइये ।

(क) हरिः -	(क) जाना
(ख) श्रियः -	(ख) विष्णु
(ग) गतं -	(ग) काजल
(घ) पूरा -	(घ) लक्ष्मी
(ङ) अंजन -	(ङ) प्राचीन

14.04 सार - संक्षेप

शिशुपाल वध के प्रथम सर्ग में 15 श्लोक तक व्याख्या के अंतर्गत व्याकरण, भावार्थ आदि को समाहित कर प्रतिपाद्य विषय को प्रस्तुत किया गया है। व्याख्यात्मक शैली का अध्ययन करने से श्लोक आदि को व्याख्या अन्वय के साथ विस्तार से अध्याय में प्रस्तुत किया गया ।

14.05 मुख्य शब्द

श्रियः- लक्ष्मी
ददर्श- देखा
सर्वतः-चारों ओर
वृहतः -बड़े-बड़े
घनं- बादल

14.06 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. (ख) 2. (घ) 3(क) 4(ङ) 5(ग)

14.07 संदर्भ ग्रंथ सूची

- 1 डॉ श्रद्धा सिंह शिशुपालवध- महाकवि माघ, , जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, 2012
 - 2 महामहोपाध्यायकोलाचलमलिनाथ, पंडितदुर्गाप्रसाद, महामहोपाध्यायपंडितशिव दत्त शिशुपालवध-महाकवि माघ, , निर्णय सागर प्रेस, मुंबई, दशम संस्करण
 - 3 पंडित जनार्दन शास्त्री पांडे, शिशुपालवध- महाकवि माघ, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1972
 - 4 श्री राम जी लाल शर्मा, शिशुपालवध - महाकवि माघ, चौखंभा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1990
 - 5 श्री अशोकचन्द्रगौड़ शास्त्री, शिशुपालवधरहस्यम्, चौखंभा सुरभारती प्रकाशन, 1999
-

14.08 अभ्यास प्रश्न

1. महाकवि माघ के अनुसार नारद की हिमालय से तुलना का वर्णन कीजिए ।
2. नारद मुनि की तुलना किससे की गई है ।
3. निम्न श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए-
 1. पिशङ्गमञ्जीयुजमर्जुनच्छवि वसानमेणाजिनमञ्जनद्युति ।
सुवर्णसूत्राकलिताधराम्बरां विडम्बयन्तम् शितिवाससस्तनुम् ॥
 2. विहङ्गराजाङ्गरुहैरिवायतैर्हिरण्मयोर्वीरुहवल्लितन्तुभिः ।
कृपोपवीतं हिमशुभ्रमुच्चकैर्घनं घनान्ते तडिताङ्गणैरिव ॥

इकाई 15

शिशुपालवध के 16 से 35 श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

- 15.1 प्रस्तावना
- 15.2 उद्देश्य
- 15.3 शिशुपालवध के 16 से 35 तक श्लोकों की व्याख्या
- 15.4 सार - संक्षेप
- 15.5 मुख्य शब्द
- 15.6 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
- 15.7 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 15.8 अभ्यास प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

गत इकाई में शिशुपालवध के कथा का परिचय दिया गया है। प्रस्तुत सर्ग में शिशुपाल वध में प्रथम सर्ग में वर्णित श्लोक में से कतिपय श्लोकों की क्रम से व्याख्या की गई है। विगत इकाइयों में शिशुपाल वध के परिचय तथा उनके प्रतिपाद्य विषय का ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् श्लोक के माध्यम से इस महाकाव्य का अध्ययन किया गया है। संस्कृत भाषा में श्लोक का विशिष्ट महत्व है तथा महाकाव्य के अध्ययन में उनके परिचय आदि के साथ श्लोक का समन्वय कर इसे पूर्ण करने का प्रयास किया गया है।

15.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि-

1. प्रथम सर्ग की कथावस्तु को श्लोक के माध्यम से समझ सके।
2. श्लोकों के साथ व्याकरण तथा व्याख्या की शैली से परिचित हो सके।
3. महाकाव्य की कथा का क्रमबद्ध श्लोक के साथ संबंध अध्ययन जान सके।
4. सर्ग की विशेषताओं को श्लोक का अध्ययन कर समझ सके।

15.3 शिशुपालवध के 16 से 35 तक श्लोकों की व्याख्या

महामहानीलशिलारुचः पुरो निषेदिवान् कंसकृषः स विष्टरे ।
श्रितोदयाद्रेरभिसायमुच्चकैरचूचुरच्चन्द्रमसोऽभिरामताम् ॥16 ॥

अन्वय - महामहानीलशिलारुचः कंसकृषः पुरः उच्चकैः विष्टरे निषेदिवान् सः अभिसायं श्रितोदयाद्रेः चन्द्रमसः अभिरामताम् अचूचुरत् ।

सर्वङ्कषा - महामहेति । महत्या महानीलशिलायाः-सिंहलद्वीप सम्भवेन्द्रनी-लोपलस्य रुगिव रुग्यस्य तस्येत्युपमालङ्कारः । 'सिंहलस्थाकरोद्भूता महानीलास्तु ते स्मृताः' इति भगवानगस्त्यः । कंसकृषः- हरेः । पुरः-अग्रे । उच्चकैः-उन्नते । विष्टरे- आसने वृक्षासनयोर्विष्टरः इति षत्वम् । निषेदिवान्-उपविष्टवान्- 'भाषायां सद्वसश्रुवः' इति क्वसुः । सः-मुनिः । अभिसायम्-सायङ्कालभिमुखम् अव्ययी भावसमासः । सायङ्कालस्य कार्यात्कृष्णोपमानत्वम् श्रित आश्रित उदयाद्री-रुदयाचलो येन तस्य चन्द्रमसोऽभिरामतां-शोभामचूचुरत्-चोरितवान् प्राप्तवानित्यर्थः । 'चुर स्तेये' 'णित्रि' इति चङ् । अन्यस्यान्यधर्मसम्बन्धा सम्भवच्चन्द्रमसोऽभिरामताभिवाभिरामतामित्यौपम्य पर्यवसानाद-सम्भवद्वस्तुसम्बन्धरूपो निदर्शना भेदः स चोक्तोपमयाऽङ्गाङ्गिभावेन संकीर्यते ।

शब्दार्थः - महामहानीलशिलारुचः = विशाल इन्द्रनील माणिकी कान्ति के समान नीलकान्ति वाले, कंसकृषः = कंस शत्रु श्रीकृष्ण के पुरः आगे, उच्चकैः = ऊँचे विष्टरे = आसन पर, निषेदिवान् = बैठे हुए, सः = उन (नारदने) अभिसायं = सन्ध्याकाल के, श्रितोदयाद्रेः = उदयाचल पर आरुढ़, चन्द्रमसः = चन्द्रमा की, अभिरामताम् = शोभा, को, अचूचुरत्=चुरा लिया ।

अनुवाद - विशाल इन्द्रनील मणि की कान्ति के समान नील कान्ति वाले, कंस शत्रु श्रीकृष्ण के आगे ऊँचे आसन पर बैठे हुए उन नारद मुनि ने सन्ध्याकाल में उदयाचल पर आरुढ़ चन्द्रमा की शोभा को चुरा लिया अर्थात् उसका भी अतिक्रमण कर लिया ।

संस्कृत व्याख्या - महामहेन्द्रनीलशिलारुचः = सिंहलद्वीपसम्भवेन्द्रमणेः रुगिव, कंसकृषः = कंसारिः श्री कृष्णः, उच्चकैः = अत्युच्चैः, विष्टरे = सिंहासने, निषेदिवान् = उपविष्टवान्, सः = नारदमुनिः, अभिसायम् = सायङ्कालस्य,

श्रितोदयाद्रेः = उदयाचले आरुढ़े, चन्द्रमसः = चन्द्रस्य, अभिरामताम् = रमणीयताम्, अचूचुरत् = चोरितवान् । सिंहलद्वीपसम्भवेन्द्रमणेः रुगिव, श्री कंसारिः श्रीकृष्णः अत्युच्चैः, सिंहासने उपविष्टवान्, स नारदमुनिः सायङ्कालस्य उदयाचले आरुढ़े चन्द्रस्य रमणीयतां चोरितवान् ।

**विधाय तस्यापचितिं प्रसेदुषः प्रकामकमप्रीयत यज्वनां प्रियः ।
गृहीतुमार्यान्परिचर्यया मुहुर्महानुभावा हि नितान्तमर्थिनः ॥17 ॥**

अन्वय - प्रसेदुषः तस्य अपचितिं विधाय यज्वनां प्रियः प्रकामं अप्रीयत ।
हि महानुभावाः आर्यान् परिचर्यया मुहुः गृहीतुं नितान्तम् अर्थिनः (भवन्ति) ।

सर्वङ्कषा - विधायेति । यज्वानो विधिनेष्टवन्तः । 'यज्वा तु विधिनेष्टवान्, इत्यमरः ।' 'सुयजोः' इति यजिधातोर्द्धनिप् तेषां प्रियो हरिः, प्रसेदुषः- प्रसन्नस्य । 'सदेः क्वसुः' इत्युक्तम् । तस्य मुनेरपचितिं पूजाम् । 'पूजा नमस्यापचितिः' इत्यमरः । विधाय विशेषेण मनोवाक्कायकर्मभिस्तत्परतया कृत्वा । प्रकामम्- अत्यर्थम् । अप्रीयत-प्रीतोऽभूत् । प्रीयतेर्देवादिकात्कर्तरि लङ् । मुनिपूजायाः प्रीति हेतुत्वेऽर्थान्तरं न्यस्यति, महानुभावाः महात्मानः । आर्यान्-पूज्यान्परिचर्यया, मुहगृहीतु वशीकर्तुम् । 'ग्रहोऽलिटि दीर्घः' इतीटो दीर्घः । नितान्तमर्थिनः अभिलाषवन्तो हि भवन्ति । अर्थनमर्थोऽभिलाषः स एषामस्तीति मत्वर्थं इनिर्न तु णिनिः । 'कुवृतेस्तद्धितवृत्तिर्बलीयसी' इति भाष्यम् ।

शब्दार्थ - प्रसेदुषः तस्य=प्रसन्न हुए उन नारद जी की, अपचितिं पूजा, विधाय करके, यज्वनां विधि पूर्वक यज्ञ करने वालों के, प्रियः = प्रिय (श्री कृष्ण जी), प्रकामं अत्यधिक, अप्रीयत = प्रसन्न हुए, हि निश्चित रूप से, महानुभावाः आर्यान् = पूज्य व्यक्तियों को, परिचर्यया= सेवा द्वारा, मुहुः = बार बार, गृहीतुं = वश में करने के लिए, नितान्तम् = अत्यधिक, अर्थिनः = अभिलाषी (भवन्ति = होती हैं)।

अनुवाद- प्रसन्न हुए उन नारद जी की पूजा कर विधि पूर्वक यज्ञ करने वालों के प्रिय (श्रीकृष्ण जी) अत्यधिक प्रसन्न हुए। निश्चित रूप से महात्मा लोग पूज्य व्यक्तियों को सेवा द्वारा बार-बार वश में करने के अत्यधिक अभिलाषी होते हैं।

संस्कृत व्याख्या: - यज्वनांप्रियः = विधिनेष्टवतां वल्लभः (सः श्रीकृष्णः) प्रसेदुषः = प्रसन्नचित्तस्य, तस्य मुनेः, अपचिति = पूजां, विधायकृत्वा, प्रकामं = अत्यन्तं, अप्रीयत = प्रहृष्टवान् हि यतो हि, महानुभावाः = महात्मानः, आर्यान् पूज्यान्, परिचर्यया = सपर्यया, मुहुः = भृशं (वारं वारं) ग्रहीतुम् = स्वीकृतम्, नितान्तम् = नितराम्, अर्थिनः = कांक्षिणः (भवन्ति)। विधिनेष्टवतां वल्लभः सः श्रीकृष्णः प्रसन्नचित्तस्य तस्य मुनेः पूजां कृत्वा अत्यन्तं प्रहृष्टवान् । यतो हि महात्मानः पूज्यान् सपर्यया भृशं स्वीकर्तुं नितरां काङ्क्षिणः भवन्ति ।

**अशेषतीर्थोपहृताः कमण्डलोर्निधाय पाणावृषिणाभ्युदीरिताः ।
अघौघविध्वंसविधौ पटीयसीर्नतेन मूर्जा हरिरग्रहीदपः ॥18 ॥**

अन्वय - अशेषतीर्थोपहृताः कमण्डलोः पाणौ निधाय ऋषिणा अभ्युदीरिताः अघौघविध्वंसविधौ पटीयसी अपः हरिः नतेन मूर्ध्वा अग्रहीत्।

सर्वङ्कषा - अशेषेति । अशेषेभ्यस्तीर्थेण उपहृता, आहृता तथा। पाणौ निधाय कमण्डलोरुदकपात्रादुद्धृत्य पाणौ निधायेत्यर्थः

क्रियान्तराक्षिप्तक्रियापेक्षयाकमण्डलोरपा -दानत्वम्। 'अस्त्री कमण्डलुः कुण्डीः' इत्यमरः । ऋषिणाभ्युदीरिताः- आक्षिप्त । अत एवाघौघानां पापसमूहानां विध्वंसविधौ विनाशकरणे। पटीयसीः-समर्थतराः पटुशब्दा-दीयसुनि 'उगितश्च' इति ङीप् । अपः जलानि। हरिर्नतेन मूर्जा, अग्रहीत्-स्वीकृतवान् । ग्रहेर्लुङ् ।

शब्दार्थ - अशेषतीर्थोपहृताः = समस्त तीर्थों से लाए गए, कमण्डलोः = कमण्डलु से, पाणौ = हाथ पर, निधाय रखकर, ऋषिणा ऋषि (नारद) द्वारा, अभ्युदीरिताः = छिड़के हुए, अघौघविध्वंसविधौ पापों के समूह का विध्वंस करने में, पटीयसी = अत्यधिक समर्थ, अपः जलों को, हरिः = श्रीकृष्ण ने, नतेन मूर्ध्वा = नत मस्तक से, अग्रहीत् = ग्रहण किया।

अनुवाद - समस्त तीर्थों से लाए गये, कमण्डलु से हाथ पर रखकर ऋषि नारद के द्वारा छिड़के हुए, पापों का विध्वंस करने में अत्यधिक समर्थ जलों को श्री कृष्ण ने नतमस्तक होकर ग्रहण किया।

स काञ्चने यत्र मुनेरनुज्ञया नवाम्बुदश्यामतनुर्ज्यविक्षत ।

जिगाय जम्बूजनितश्रियः श्रियं सुमेरुशृङ्गस्य तदा तदासनम् ॥19 ॥

अन्वय - नवाम्बुदश्यामतनुः सः मुनेः अनुज्ञया काञ्चने यत्र न्यविक्षत, तत् आसनं तदा जम्बूजनितश्रियः सुमेरुशृङ्गस्य श्रियं जिगाय ।

सर्वङ्कषा स काञ्चनेति । नवाम्बुदश्यामतनुः स हरिर्मुनेरनुज्ञया, काञ्चने-काञ्चनविकारे । वैकारिकोऽणप्रत्यय । यत्र-आसने न्यविक्षत-उपविष्टवान् । निपूर्वविशोलुङि 'नेर्विश' इत्यात्मनेपदे 'शल इगुपधादनिटः क्सः'। तत् आसनं, तदाहर्युपवेशनसमये, जम्बूः- नीलफलविशेष । जम्बूः सुरभिपत्रा च राजजम्बूमहाफला' इत्यभिधानरत्नमालायाम्, तथा जनिता श्रीर्यस्य तत्तथोक्तस्य भाषित पुंस्कत्वात्पक्षे पुंवद्भावानुमभावः । सुमेरुशृङ्गस्य श्रियं, जिगाय अभिभावितवानित्यर्थः । 'सन्लिटोर्जेः' इति कुत्वम्। उपमानुप्रासो संसृष्टिः ।

शब्दार्थ - नवाम्बुदश्यामतनुः = नए मेघ के समान श्याम शरीर वाले, सः = वह (श्रीकृष्ण जी), मुनेः = मुनि नारद जी की, अनुज्ञया = अनुमति से, काञ्चने = सुवर्ण के, यत्र = जिस आसन पर, न्यविक्षत बैठे, तत् आसनं उस आसन ने, तदा = उस समय, जम्बूजनितश्रियः = जम्बूफल से सुशोभित, सुमेरुशृङ्गस्य= सुमेरु पर्वत के शिखर की, श्रियं = शोभा को, जिगाय = जीत लिया।

अनुवाद - नए मेघ के समान श्याम शरीर वाले वह श्रीकृष्ण जी मुनि नारद की अनुमति से सुवर्ण के जिस आसन पर बैठे, उस आसन ने उस समय जम्बूफल से सुशोभित सुमेरु पर्वत की शोभा को जीत लिया।

संस्कृत व्याख्याः - नवाम्बुदश्यामतनुः- नीलजलधर इव श्यामतनुर्यस्य, स-श्री कृष्णः मुनेः- नारदमहर्षेः, अनुज्ञया आज्ञया, काञ्चने स्वर्णमये, यत्र-यस्मिन्, न्यविक्षत-उपविष्टवान् तत् आसनं-तत् सिंहासनं, तदा-तस्मिन् समये, जम्बूजनिता-श्रियः- नीलवर्णस्य जम्बूफलजनितशोभायुक्तस्य सुमेरुशृङ्गस्य-सुमेरुपर्वतस्य श्रियः-शोभां, जिगाय विजितवान् । नीलजलधर इव श्यामतनुर्यस्य सः श्रीकृष्णः नारदमहर्षे आज्ञया स्वर्णमये यस्मिन् सिंहासने उपविष्टवान् तत् सिंहासनं तस्मिन् समये नीलवर्णस्य जम्बूफलजनित-शोभायुक्तस्य सुमेरुपर्वतस्य शोभां विजितवान्। थे।

स तप्तकार्तस्वरभास्वराम्बरः कठोरताराधिपलाञ्छनच्छविः ।
विदिद्युते वाडवजातवेदसः शिखाभिराश्लिष्ट इवाम्भसां निधिः ॥20॥

अन्वय - तप्तकार्तस्वरभास्वराम्बरः कठोरताराधिपलाञ्छनच्छविः सः गाऊ जातवेदसः शिखाभिः आश्लिष्टः अम्भसां निधिः इव विदिद्युते।

सर्वङ्कषा - स तप्तेति । तप्तं पुटपाकशोधितं कार्तस्वरं-स्वर्णम् । 'रुक्मं कारग जाम्बूनदमष्टापदोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः । तद्वद्भास्वरं दीप्यमानमम्बरं यस्य सः । पीतय इत्यर्थः । कठोरताराधिपस्य पूर्णेन्दोर्लाञ्छनस्य छविरिव छविर्यस्य स इत्युपमान पूर्ण बहुव्रीहिरुत्तरपदलोपश्च । स हरिर्वाडवजातवेदसः वाडवाग्नेः शिखाभिः ज्वालाभिरा-श्लिष्टो व्याप्तोम्भसां निधिरिव-समुद्र इव, विदिद्युते-बभौ ।

शब्दार्थ - तप्तकार्तस्वरभास्वराम्बरः = तपाए हुए सोने के समान चमकीले वस्त्र को धारण करने वाले, कठोरताराधिपलाञ्छनच्छविः = पूर्ण चन्द्रमा के कलङ्क के समान छवि वाले, सः वह (श्रीकृष्ण जी) वाडवजातवेदसः = वडवानल की, शिखाभिः = ज्वालाओं से, आश्लिष्टः = व्याप्त, अम्भसां निधिः इव = समुद्र के समान, विदिद्युते = शोभित हुए।

अनुवाद - तपाए हुए सोने के समान चमकीले वस्त्र को धारण करने वाले पूर्ण चन्द्रमा के कलङ्क के समान छवि वाले वह श्रीकृष्ण वडवानल की ज्वालाओं से व्याप्त समुद्र के समान शोभित हुए।

संस्कृत व्याख्या - तप्तकार्तस्वरभास्वराम्बरः - प्रतप्तस्वर्णमिव देदीप्यमानं वस्त्रं यस्य सः, कठोरताराधिपलाञ्छनच्छविः = पूर्णेन्दुमण्डलस्य कलङ्कमिव श्यामः, सः = श्रीकृष्णः, वाडवजातवेदसः- वाडवाग्नेः, शिखाभिः- ज्वालाभिः आश्लिष्टः-व्याप्तः अम्भसां निधिः इव- समुद्र इव, विदिद्युते-शुशुभे ।

रथाङ्गपाणेः पटलेन रोचिषामृषित्विषः संवलिता विरेजिरे ।
चलत्पलाशान्तरगोचरास्तरोस्तुषारमूर्तेरिव नक्तमंशवः ॥21॥

अन्वय - रथाङ्गपाणेः रोचिषां पटलेन संवलिताः ऋषित्विषः नक्तं तरीः चलत्पलाशान्तरगोचराः तुषारमूर्तेः अंशव इव विरेजिरे ।

सर्वङ्कषा - रथाङ्गपाणेरिति । रथाङ्गं-चक्रपाणौ यस्य तस्य-हरेः । 'प्रहरणार्थभ्यः परे निष्ठासप्तम्यौ भवतः इति पाणेः परनिपातः । रोचिषां-छवीनां, पटलेन-समूहेन, संवलिता-मिलिता ऋषित्विषो नक्तं रात्रौ सप्तम्यर्थेऽव्ययम् । तरोश्चलतां पलाशानां-पत्राणामन्तराणि-विवराणि गोचरः अ श्रयो येषां ते । तुषारा मूर्तिर्यस्य तस्येन्दोः - अंशवः इव विरेजिरे-चकाशिरे ।

शब्दार्थ - रथाङ्गपाणेः = चक्र जिसके हाथ में है ऐसे श्रीकृष्ण जी के, रोचिषां पटलेन = कान्ति समूह से, संवलिताः = मिली हुई, ऋषित्विषः ऋषि की कान्ति, नक्तं रात्रि के समय, तरोः वृक्ष के, चलत्पलाशान्तरगोचराः = चंचल पत्तों के बीच में से दिखाई देने वाली, तुषारमूर्तेः = चन्द्रमा की, अंशवः इव = किरणों के समान, विरेजिरे सुशोभित हुई।

अनुवाद - चक्र जिनके हाथ में हैं ऐसे श्रीकृष्ण जी के कान्ति समूह से मिली हुई ऋषि की कान्ति रात्रि के समय वृक्ष के चंचल पत्तों के बीच में से दिखाई देने वाली चन्द्रमा की किरणों के समान सुशोभित हुई।

संस्कृत व्याख्याः - रथाङ्गपाणेः चक्रपाणेः श्री कृष्णस्य, रोचिषां- कान्तीनां, पटलेन = समूहेन, संवलिताः- मिलिताः, ऋषित्विषः = महर्षिनारदस्य कान्तिः, मिलकर एक सी कान्ति वाले हो गये हों, इसी का वर्णन इस श्लोक में है।

प्रफुल्लतापिच्छनिभैरभीषुभिः शुभैश्च सप्तच्छदपांसुपाण्डुभिः ।

परस्परेणच्छुरितामलच्छवी तदैकवर्णाविव तौ बभूवतुः ॥22 ॥

अन्वय - प्रफुल्लतापिच्छनिभैः सप्तच्छदपांसुपाण्डुभिः शुभैः अभीषुभिः परस्परेणच्छुरितामलच्छवी तौ तदा एक वर्णो इव बभूवतुः ।

सर्वङ्कषा - प्रफुलेति । प्रफुल्लतीति प्रफुल्लं विकसितम् । 'फुल्ल विकसने' इति धातोः पचाद्यजन्तम् । फलेर्निष्ठायाम् 'अनुपसर्गोत्फुल्लक्षीबकृशोल्लाघः' इति निपातनात्प्रफुल्लमित्येवेति क्षीरस्वामी । तापिच्छस्य तमालस्य पुष्पं तापिच्छम् । 'फले लुक्' इति तद्धितल्लुक् । 'द्विहीनं प्रसवे सर्वम्' इति नपुंसकत्वम् । 'काक स्कन्धस्तमालः स्यात्तापिच्छोऽपि' इत्यमरः । तेन सदृशैः प्रफुल्लतापिच्छनिभैः । नित्यसमासत्वादस्व-पदविग्रहः । अतएव 'स्युरुतर पदे त्वमी' इति, निभसंका शनीकाकाशप्रतीकाशोपमादयः इत्यमरः । सप्त छदाः पर्णानि पर्वसु यस्येति

सप्तच्छदो वृक्षभेदः 'सप्तपर्णो विशालत्वक्शारदो विषमच्छदः' इत्यमरः । सङ्ख्याशब्दस्य वृत्ति विषये वीप्सार्थत्वं सप्तपर्णादिवादित्युक्तं भाष्ये । शेषं तापिच्छवत् । तस्य पुष्पाणि सप्तच्छदानि तेषां पांसुवत्पाण्डुभिः- शुभैः अभीषुभिः- अन्योन्यरश्मिभिः 'अभीषुः प्रग्रहे रम्भौ' इति शाश्वतः । परस्परेण छुरित रुषिते, अमले छवी अन्योन्यकान्ती ययोस्तौ । छव्योरभीषूणामवयवावयविभावाद्भेद निर्देशः तौ हरिनारदौ, तदैक वर्णाविव बभूवतुः । उभय प्रभामेलनादुभयोरणि सर्वाङ्गीणो गङ्गायमुना संगम इव स्फटिकेन्द्रनीलमणि प्रभामेलन प्रायः कश्चिदेको वर्णः प्रादुर्बभूव, तन्निमिता चेयमतयोरेक वर्णत्वोत्प्रेक्षा ।

शब्दार्थ - प्रफुल्लतापिच्छनिभैः = विकसित तमालपुष्प के समान, सप्त-च्छदपांसुपाण्डुभिः = सप्तपर्ण के पराग के समान सफेद, शुभैः शुभ, अभीषुभिः = किरणों के द्वारा, परस्परेण = परस्पर, छुरितामलच्छवी = मिश्रित निर्मल कान्ति वाले, तौ = वे दोनों, तदा उस समय, एकवर्णो इव एक वर्ण जैसे, बभूवतुः = हो गए।

अनुवाद - विकसित तमालपुष्प के समान (श्याम) तथा सप्तवर्ण के पराग के समान सफेद शुभ्र किरणों के द्वारा परस्पर मिश्रित निर्मल कान्ति वाले वे दोनों उस समय एकवर्ण जैसे हो गए।

संस्कृत व्याख्या - प्रफुल्लतापिच्छनिभैः - विकसिततमालपुष्पसदृशैः, सप्तच्छदपांसुपाण्डुभिः=सप्तपर्णपुष्पपरागवच्छुभैः, शुभैः = पवित्रैः, अभीषुभिः = किरणैः, परस्परेण-अन्योन्यम्, छुरितामलच्छवी = मिलितनिर्मलकान्ती, तौ- नारदश्रीकृष्णौ, तदा-तस्मिन् समये, एकवर्णो-समानवर्णो इव बभूवतुः- अभूताम् । विकसिततमालपुष्पसदृशैः - सप्तपर्णपुष्पपरागवच्छुभैः पवित्रैः किरणैः अन्योन्यम् मिलितनिर्मलकान्तौ तौ नारदश्रीकृष्णौ तस्मिन् समये समानवर्णो इव अभूताम्। कहते हैं।

युगान्तकालप्रतिसंहतात्मनो जगन्ति यस्यां सविकासमासत ।

तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विषस्तपोधनाभ्यागमसम्भवा मुदः 1123 ॥

अन्वय - युगान्तकाल प्रति संहतात्मनः कैटभद्विषः यस्यां तनी जगन्ति सत्रिकासम् आसत, तत्र तपोधनाभ्यागमसम्भवाः मुदः न ममुः ।

सर्वङ्कषा - युगान्तेति । युगान्तकाले प्रतिसंहतात्मनः आत्मन्युपसंहता आत्मानो जीवा येन तस्य, कैटभद्विषः हरेर्यस्या ततौ जगन्ति सविकास सविस्तरमासत-सम्भवाः-सम्भूताः । पश्चाद्यच् । मुदः सन्तोषा न ममुः अतिरिच्यन्ते स्मेत्यर्थः । चतुर्दश-अतिष्ठन् । 'आस उपदेशने' लङ् । तत्र तनौ-देहे. तपोधनाभ्यागमेन सम्भवन्तीति भुवनभरणपर्याप्त वपुषि अन्तर्नमान्तीति कविप्रौढोक्ति सिद्धातिशयेन स्वतः 'सिद्धस्या-भेदेनाध्यवसितातिशयोक्तिः' सा च मुदामन्तसम्बन्धेऽप्य सम्बन्धोक्त्या सम्बन्धा-सम्बन्धरूपा ।

शब्दार्थ - युगान्तकालप्रतिसंहतात्मनः = प्रलय काल में जीवों को अपने में समेट लेने वाले, कैटभद्विषः = श्रीकृष्ण के, यस्यां तनोः = जिस शरीर में, जगन्ति = भुवन, सविकाशम् = विस्तार के साथ, आसत रहते थे, तत्र = वहाँ, तपोधनाभ्याग-मसम्भवा = तपस्वी के आगमन से उत्पन्न, मुदः हर्ष, न ममुः = नहीं समा सका।

अनुवाद - प्रलयकाल में जीवों को अपने में समेट लेने वाले श्रीकृष्ण के जिस शरीर में भुवन विस्तार के साथ रहते थे वहाँ तपस्वी नारद के आगमन से उत्पन्न हर्ष नहीं समा सका।

संस्कृतव्याख्याः - युगान्तकालप्रतिसंहतात्मनः - प्रलयकालेऽन्तर्भूतजीव-समूहस्य, कैटभद्विषः-कैटभनाम्नः राक्षसस्य शत्रोः, यस्यां विष्णौ, तनौ - शरीरे।

निदाघधामानमिवाधिदीधितिं मुदा विकासं मुनिमभ्युपेयुषी ।

विलोचने बिभ्रदधिश्रितश्रिणी स पुण्डरीकाक्ष इति स्फुटोऽभवत् ॥24 ॥

अन्वय - निदाघधामानम् इव अधिदीधितिं मुनिम् अभिमुदा विकासम् उपेयुषी अधिश्रितश्रिणी विलोचने विभ्रत् सः पुण्डरीकाक्षः इतिस्फुटः अभवत्।

सर्वङ्कषा - निदाघेति । निदाघमुष्ण धाम किरणो यस्य तं तथोक्तम्। 'निदाघो ग्रीष्माकाले स्यादुष्णस्वेदाम्बुनोरपि' इति विश्वः । अर्कमिव अधिदीधितिम्-अधिकतेजसं, मुनिभिलक्ष्य 'अभिरभागे' इति लक्षणे 'कर्मप्रवचनीय संज्ञा ।' कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया। मुदा विकासमुपेयुषी-उपगते । क्वसु प्रत्ययान्तो निपातः । अतएवाधिश्रिता प्राप्ता श्रीः याभ्यां ते तथोक्ते। 'इकोऽचिविभक्तौ' इति नुमागमः । विलोचने बिभ्रत् 'नाभ्यस्ताच्छतुः इति नुमभावः । सः हरिः, पुण्डरीकाक्ष

इत्येवं स्फुटोऽभवत्। सूर्यसंन्निधाने श्रीविकास-भावादक्षणां पुण्डरीकसाधर्म्यात् । पुण्डरीके इवाक्षिणी यस्येत्यवयवार्थलाभे पुण्डरीकाक्ष इति व्यक्तम्, अन्वर्थसंज्ञोऽभूदित्यर्थः बिभ्रत्स्फुटोऽभवदिति पदार्थहेतुकस्य काव्यलिङ्गस्य निदाघधामानमिवेत्युपमासापेक्षत्वादनयोरङ्गाङ्गि भावेन सङ्करः ।

शब्दार्थ - निदाघधामानम् इव = उष्ण किरणों वाले सूर्य के समान, अधि-दीधितिं मुनिम् अभि= परम तेजस्वी मुनि के समक्ष, मुदाविकासम् = प्रसन्नता से विकास को, उपेयुषी = प्राप्त करने वाले, अधिश्रितश्रिणी = शोभायुक्त, विलोचने बिभ्रत् नेत्रों को धारण करते हुए, सः पुण्डरीकाक्षः = वह कमलनयन हैं, इति स्फुटः अभवत् = यह स्पष्ट हो गया।

अनुवाद - उष्णकिरणों वाले सूर्य के समान परम तेजस्वी मुनि के समक्ष प्रसन्नता से विकास को प्राप्त करने वाले शोभायुक्त नेत्रों को धारण करते हुए वह कमलनयन हैं, यह स्पष्ट हो गया।

संस्कृत व्याख्या - निदाघधामानम् = उष्णरश्मिसूर्यम्, इव, अधिदीधितम् = अधिकतेजसम्, मुनिम् = नारदमुनिम् अभिमुदा= अभिलक्ष्य हर्षा, विकासम् = प्रसन्नता उपेयुषी = उपगते, अधिश्रितश्रिणी = समुपलब्धशोभे, विलोचने नेत्रे, बिभ्रत् धारयन् सः = श्री कृष्णः, पुण्डरीकाक्षः = पुण्डरीके इव अक्षिणी, इति, स्फुट अन्वर्थसंज्ञः, अभवत् = अभूत् ।

सितं सितिम्ना सुतरां मुनेर्वपुर्विसारिभिः सौधमिवाथ लम्भयन् ।
द्विजावलि व्याजनिशाकरांशुभिः शुचिस्मितां वाचमवोचदच्युतः॥25 ॥

अन्वय - अथ अच्युतः विसारिभिः, द्विजावलिं व्याजनिशाकरांशुभिः सितं वपुः सौधम् इव सुतरां सितिम्ना लम्भयन् शुचिस्मितां वाचम् अवोचत् ।

सर्वङ्कषा- सितमिति । अथ उभयोरूपवेशनान्तरम् अच्युतो हेतुकर्ता । विसारिधि अभीक्षणं प्रसरद्भिः । 'बहुलमाभीक्ष्ण्ये' इति णिनिः । द्विजावलिदन्तपक्तिः । 'दन्तति प्राण्डजा दिजाः इत्यमरः । सैव व्याजः-कपट यस्य सः तद्रूप इत्यर्थः । स चा निशाकरश्च तस्य अंशुभिः किरणैः, सितं स्वभाव शुभं मुनेर्वपुः, सौधं प्रसादमित सुतराम्-अत्यन्तम्। अव्ययाद्धादाम्प्रत्ययः । सितिम्नाधावल्येन प्रयोज्यकर्त्र, लम्भकर व्यापारयन् अतिधवल्यन्नित्यर्थः । लभेरत्र

गत्युपसर्जनप्राप्त्यर्थं त्वेरागत्यर्थत्वात्। गति बुद्धि-' इत्यादिना अणिकुनं कर्मत्वम्। तथाह वामनः- 'लभेर्गत्यर्थत्वाणिच्यणौ करे कर्मत्वाकर्मत्वे' इति प्राप्त्युपसर्जनगत्यर्थत्वे तु कर्मत्वमेवेति रहस्यम् 'लभेश्च' इति नुमागमः शुचिस्मितां वाचमवोचत्- उक्तवान् ब्रूवो वच्यादेशः । लुङ् 'वच उम्' इत्युमागमे गुणः । अत्र सौधमिवेत्युपमायाः सितिम्ना लम्भयन्नित्यसम्बन्धरूपातिशयोक्तेः द्विजावलि व्याजनिशाकरेतिच्छलादिशब्देरसत्यत्वप्रतिपादनरूपापहनवस्य च मिथो नैरपेक्ष्यात्संसृष्टिः।

शब्दार्थ- अथ = अनन्तर, अच्युतः = श्रीकृष्ण जी, द्विजावलि व्याज-निशाकरांशुभिः = दांतों की पंक्ति के बहाने चन्द्रमा की किरणों के द्वारा, सितं मुनेः= धवल मुनि के, वपुः = शरीर को, सौधम् इव भवन के समान, सुतरां अधिक, सितिम्ना = धवल, लम्भयन्= बनाते हुये, शुचिस्मितां = पवित्र मुस्कराहट सहित, वाचम् अवोचत् = वचन बोले।

अनुवाद- अनन्तर श्रीकृष्ण जी दांतों की पंक्ति के बहाने चन्द्रमा की किरणों के द्वारा धवल मुनि के शरीर को भवन के समान अत्यधिक धवल बनाते हुए पवित्र मुस्कराहट सहित वचन बोले।

संस्कृत व्याख्याः - अथ = तयोरुपवेशनान्तरम्, अच्युतः = श्रीकृष्णः विसा-रिभिः = प्रसरणशीलैः, द्विजावलिव्याजनिशाकरांशुभिः = दन्तपंक्तिछद्मचन्द्र-किरणैः, सितं = स्वभावेन शुभं, मुनेः = नारदस्य, वपुः-शरीरम्, सौधम् = प्रसादमिव, सुतराम्= अत्यन्तम्, सितिम्ना = श्वैत्येन, लम्भयन् = प्रापयन्, शुचिस्मितां = किञ्चिद्धास्य समन्वितां, वाचम् = वाणीम्, अवोचत् = उक्तवान् । श्री कृष्णनारदयोरुपवेशनान्तरं श्री कृष्णः प्रसरणशीलैः दन्तपंक्तिछद्यचन्द्रकिरणैः स्वभावेन शुभं नारदस्य शरीरं प्रसादमिव अत्यन्तं, श्वैत्येन प्रापयन्, किञ्चिद्धास्यसमन्वितां वाणीम् उक्तवान् ।

हरत्यघं सम्प्रति हेतुरेण्यतः शुभस्य पूर्वाचरितैः कृतं शुभैः ।

शरीरभाजां भवदीयदर्शनं व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम् ॥26

अन्वय - भवदीयदर्शनं शरीरभाजां कालत्रितये अपि योग्यतां व्यनक्ति । सम्प्रति अघं हरति । एण्यतः शुभस्य हेतुः । पूर्वाचरितैः शुभैः कृतम् ।

सर्वङ्कषा - हरतीति । भवदीयदर्शनम्-शरीरभाजाम् । द्रष्टृणामित्यर्थः । 'भजोष्विः'। कालत्रितये-भूतादि कालत्रितयेऽपि। योग्यताम् पवित्रतां । व्यनक्ति-गमयति । कुतः ? सम्प्रति दर्शन काले। अघं पापं हरति । एष्यतः भाविनः । शुभस्य-श्रेयसो हेतुः। तथा पूर्वाचरित्रैः-प्रागनुष्ठितैः, शुभैः सुकृतैः, कृतम् । एवं त्रैकाल्येऽपि कार्यत्वेन कारणत्वेन च पुंसि सुकृतसमवायमवगमयते। अत एतादृशं दर्शनं कस्य न प्रार्थ्यमिति भावः । अत्र हरतीत्यादिवाक्यत्रयस्थार्थस्य शरीरेत्यादिवाक्य त्रयोक्त्या वाक्यार्थहेतुकं काव्यलिङ्ग-मलङ्कारः ।

शब्दार्थ - भवदीयदर्शनं = आपका दर्शन, शरीरभाजां शरीरधारियों की, कालत्रितये अपि तीनों कालों में भी, योग्यतां योग्यता को, व्यनक्ति = प्रकट करता है, सम्प्रति = वर्तमान समय में, अघं हरति = पाप का हरण करता है, एष्यति = आगामी, शुभस्य = शुभ का, हेतुः = कारण है, पूर्वाचरितैः = पहले किए गए, शुभैः= पुण्यों के द्वारा, कृतम् = किया गया है।

अनुवाद - आपका दर्शन शरीरधारियों की तीनों कालों में भी योग्यता को प्रकट करता है। वर्तमान समय में पाप का हरण करता है, आगामी शुभ का कारण है तथा पहले किए गए पुण्यों द्वारा किया गया है।

संस्कृत व्याख्या: - भवदीयदर्शनं = त्वदीयदर्शनम्, शरीरभाजाम् = देहधारिणाम्, कालत्रितये = भूतभविष्यद्वर्तमानरूपकालत्रये, अपि, योग्यताम् = पवित्रतां, व्यनक्ति= गमयति । सम्प्रति = वर्तमानसमये दर्शनकाले, अघम् = पापम्, हरति नाशयति, एष्यतः = भाविनः, शुभस्य = पुण्यस्य, हेतुः = कारणम्, पूर्वाचरितैः = भूतकाले अनुष्ठितैः शुभैः = सुकृतैः कृतम् = प्राप्तम् । श्रीकृष्णः नारदमुनेः प्रशंसायां कथयति त्वदीयदर्शनं देहधारिणां भूतभविष्यद्वर्तमानरूपकालत्रयेऽपि पवित्रतां गमयति । वर्तमानसमये दर्शनकाले पापं नाशयति । भाविनः पुण्यस्य कारणं भूतकालेऽनुष्ठितैः सुकृतैः प्राप्तमस्ति ।

जगत्पर्याप्तसहस्रभानुना न यन्नियन्तुं समभावि भानुना ।

प्रसह्य तेजोभिरसङ्ख्यतां गतैरदस्त्वया नुन्नमनुत्तमं तमः ॥27 ॥

अन्वय - जगति अपर्याप्तसहस्रभानुना यत् नियन्तुं न समभावि अदः अनुत्तमं तमः असंख्यतां गतैः तेजोभिः प्रसह्य त्वयानुन्नम् ।

सर्वङ्कषा - जगतीति । जगति-अपर्याप्ताः-अपरिच्छिन्नाः सहस्रं भानवोऽश्वो यस्य तेन भानुना-अर्केण। 'भानवोऽर्केहराशवः' इति वैजयन्ती । यत्तमो नियन्तु - निवारयितुं न समभावि-न शेके। भावे लुङ्। अविद्यमानमुत्तमं यस्मात्तत्-अनुत्तमं सर्वाधिकम्, अदः तमो मोहात्मकम्, असंख्यताम् गतैस्तेजोभिः प्रसह्य बलात्। त्वया। नुन्नं-छिन्नम् । अतः श्लाघ्यदर्शनो भवानिति भावः 'नुदविद' - इत्यादिना विकल्पान्निष्ठान-त्वभावः अत्रोपमानाद्भानोर्मुनेराधिक्यप्रतिपादनाद् व्यतिरेकालङ्कारः ।

शब्दार्थ - जगति = संसार में, अपर्याप्तसहस्रभानुना = अपर्याप्त हजार किरणों वाले सूर्य के द्वारा, यत् नियन्तु = जिसका निवारण, न समभावि नहीं किया जा सका, अदः अनुत्तमं तमः = उस सर्वाधिक बलवान मोह को, असंख्यता गतैः = असंख्यता को प्राप्य, तेजैः = तेजों के द्वारा, प्रसह्य बलात्, त्वया आपने, नुन्नम् = नष्ट कर दिया।

अनुवाद - संसार में अपर्याप्त हजार किरणों वाले सूर्य के द्वारा जिसका निवारण नहीं किया जा सका, उस सर्वाधिक बलवान मोह को असंख्य तेजों के द्वारा आपने बलात् नष्ट कर दिया।

संस्कृत व्याख्या - जगति लोके, अपर्याप्तसहस्रभानुना = अपरिच्छिन्नस - सहस्रसूर्यकिरणेन भानुना = सूर्येण, यत्, नियन्तुम् दूरीकर्तुम्, न, समभाविन शेके, अनुत्तमं = सर्वाधिकं, अदः = इदम्, तमः = अज्ञानान्धकारः, असंख्यातम् = असंख्यैः, तेजोभिः = प्रकाशैः, प्रसह्य बलात्, त्वया-भवता, नुन्नम् = छिन्नम् ।लोके अपरिच्छिन्नसहस्रसूर्यकिरणेन सूर्येण यत् दूरीकर्तुं न शेके, सर्वाधिकम् इदम् अज्ञानान्धकारः असंख्यैः प्रकाशैः बलात् भवता छिन्नम् । कोश स्वरूप है। कारी धन-सम्पत्तियों के सदा उपयोग करने पर भी अक्षय ब्रह्मा के सुयोग्य पुत्र बताते

कृतः प्रजाक्षेमकृता प्रजासृजा सुपात्रनिक्षेपनिराकुलात्मना ।

सदोपयागेऽपि गुरुस्त्वमक्षयो निधिः श्रुतीनां धनसम्पदामिव ॥28॥

अन्वय - प्रजाक्षेमकृता सुपात्रनिक्षेपनिराकुलात्मना प्रजासृजा त्वं धनसम्पदाम् इव श्रुतीना सदा उपयोगेऽपि गुरुः अक्षयः निधिः कृतः ।

सर्वङ्कषा- कृत इति । प्रजायां जनानामपत्यानां च, क्षेमकृता-कुशलकारिणा 'प्रजा-स्यात्सन्ततौ जने' इत्यमरः । सुपात्रे योग्यारुषे कटाहादिदृढभाजने च निक्षेपेण निधानेन च निराकुलात्मना स्वस्थचितेन । 'योग्यभाजनयोः पात्रम्' इत्यमरः । प्रजासृजा-ब्रह्मणा, पुत्रिणा च त्वं धनसम्पदामिव श्रुतीनां वेदानां । सदोपयोगे दानभोगाभ्यां व्ययेऽपि अक्षयः । एकत्राम्नानादन्यत्रानन्त्याच्चेति भावः । गुरुः उपदेष्टा सम्प्रदायप्रवर्तक इति यावत् । अन्यत्र-महान् । निधीयत इति निधिः- निक्षेपः कृतः । 'उपसर्गेघोः कि। श्रुति-सम्प्रदाय द्वारा धर्माऽधर्मव्यवस्थापकतया जगत्प्रतिष्ठाहेतूनां भवादृशां दर्शनं कस्य न इलाघ्यमिति भावः। अत्र शब्दमात्रसाधर्म्याच्छ्लेषोऽयं प्रकृतिविषय इत्याहुः ।

शब्दार्थ - प्रजाक्षेमकृता = प्रजा का कल्याण करने वाले, सुपात्रनिक्षेपनिरा-कुलात्मना=सुपात्र में रखने से निराकुल चित्त वाले, प्रजासृजा = ब्रह्मा के द्वारा, त्वं = तुम, धनसम्पदाम् इव = सम्पदाओं के समान, श्रुतीनां देवों का, सदोपयोगेऽपि=सदा उपयोग करने पर भी, गुरुः = महान्, अक्षयः = नष्ट न होने वाली, निधिः = निधि, कृता=बनाए गए हो।

अनुवाद - प्रजा का कल्याण करने वाले, सुपात्र में रखने से निराकुल चित्त वाले ब्रह्मा के द्वारा तुम धन सम्पदाओं के समान वेदों का सदा उपयोग करने पर भी महान्, नष्ट न होने वाली निधि बनाए गये हो।

संस्कृत व्याख्या: - प्रजाक्षेमकृता = लोकानाम् अपत्यानाञ्च हितकारिणा, सुपात्रनिक्षेपनिराकुलात्मना = योग्यपात्रे कटाहादिवत् दृढभाजने निधानेन च स्वस्थचितेन, प्रजासृजा=ब्रह्मणा, पित्रा, त्वं भवान्, धनसम्पदाम् इव = धनसम्पत्तीनाम् इव श्रुतीनां = वेद-वेदाङ्गानां, सदा सर्वदा, उपयोगेऽपि दानभोगाभ्यां व्ययेऽपि, गुरुः = उपदेष्टा, अक्षयनिधिः = अविनाशिनिक्षेपः कृतः = प्रवर्तितः । लोकानाम् अपत्यानाञ्च हितकारिणा योग्यपात्रे कटाहादिवत् दृढभाजने निधानेन च स्वस्थचितेन । पित्रा ब्रह्मणा भवान् धनसम्पत्तीनाम् इव वेदवेदाङ्गानां सर्वदा दानभोगाभ्यां व्ययेऽपि उपदेष्टा अविनाशिनिक्षेपः प्रवर्तितः ।

विलोकनेनैव तवामुना मुने ! कृतः कृतार्थोऽस्मि निवर्हितांसहसा ।

तथापि शुश्रूषरहं गरीयसीर्गिरोऽथ वा श्रेयसि केन तुप्यते ॥29 ॥

अन्वय - मुने, निबर्हिताऽहसा अमुना तव विलोकनेन एव कृतार्थः कृतः अस्मि, तथापि अहं गरीयसी तव गिरः शुश्रूषु अस्मि । अथवा श्रेयसि केन तृप्यते ।

सर्वङ्कषा - विलोकनेनेति । हे मुने, निबर्हितांहसा - अपहृत पापेन अतएव अमुना तव विलोकनेनैव कृतार्थः कृतोऽस्मि । तथाऽप्यहं गरीयसीः अर्थवत्तराः । 'द्विवचन' इत्यादिना ईयसुन्प्रत्ययः 'उगितश्च' इति डीप् । प्रियस्थिर-इत्यादिना गुरोर्गारादेशः, गिरः-तव वाचोऽपि, शुश्रूषुः-श्रोतुमिच्छरस्मि । शृणोतेः सन्नन्तादुप्रत्ययः । न चैतद्व्येत्याह-अथवा । तथा हीत्यर्थः अथवेति पक्षान्तरप्रसिद्धयोरिति गणव्याख्यानात् । श्रेयसि विषये। केन तृप्यते ? न केनापीत्यर्थः । कृतार्थताया इयताऽभावादिति भावः । भावे लट् ।

शब्दार्थ - मुने = हे मुनि, निबर्हितांहसा = पापों का अपहरण करने वाले, अमुना तव विलोकनेन = आपके इस दर्शन से, एव ही, कृतार्थ कृतार्थ, कृतः अस्मि = कर दिया गया हूँ, तथापि फिर भी, अहं मैं, गरीयसी गौरवयुक्त, तव = आपकी, गिरः = वाणी, शुश्रूषुः = सुनना चाहता हूँ अथवा श्रेयसि अथवा कल्याण के विषय में, केन तृप्यते = कौन तृप्त होता है।

अनुवाद - हे मुनि ! पापों का अपहरण करने वाले आपने इस दर्शन से ही मैं कृतार्थ कर दिया गया हूँ, फिर भी मैं गौरवयुक्त आपकी वाणी सुनना चाहता हूँ अथवा कल्याण के विषय में कौन तृप्त होता है? अर्थात् माङ्गलिक वस्तुओं से किसी की भी तृप्ति नहीं होती है।

गतस्पृहोऽप्यागमनप्रयोजनं वदेति वक्तुं व्यवसीयते यया ।

तनोति नस्तामुदितात्मगौरवो गुरुस्तवैवागम एष धृष्टताम् ॥30 ॥

अन्वय - गतस्पृहः अपि आगमनं प्रयोजनं वद इति वक्तुं यया व्यवसीयते तां नः धृष्टताम् उदितात्मगौरवः गुरुः एष तव आगमः तनोति ।

सर्वङ्कषा - एवं प्रियमुक्त्वा सम्प्रति आगमनप्रयोजनं विनयेन पृच्छति गतस्पृहोऽपीति । गतस्पृहः-विरक्तोऽपि त्वमागमनप्रयोजनं वदेति वक्तुं यया-धृष्टतया, व्यवसीयते - उद्यम्यते । स्यतेर्भावे लट् । उदितमुत्पन्नमुक्तं वा

आत्मनो मम गौरवं येन सः। गुरुः-श्लाघ्यः । एष तवागमः- आगमनमेव नोऽस्माकं धृष्टतां तनोति विस्तारयति 'तनु विस्तारे लट् । भवतो निःस्पृहत्वेऽपि प्रेक्षावत्प्रवृत्तेः प्रयोजनव्याप्त्या सावकाशः प्रश्न इति भावः ।

शब्दार्थ - गतस्पृहः अपि इच्छाओं से रहित होने पर भी, आगमन प्रयोजन = आने का प्रयोजन, वद कहिए, इति इस प्रकार, वक्तुं = कहने के लिये, यथा=जिसके द्वारा, व्यवसीयते उद्यत किया जा रहा है, तां उस, नः हमारी, धृष्टताम् = धृष्टता को, उदितात्म-गौरवः = आत्म-गौरव को उत्पन्न करने वाला, गुरुः = महान्, तुम्हारा, एषः = यह, आगमः = आगमन, तनोति बढ़ रहा है।

अनुवाद - इच्छाओं से रहित होने पर भी आने का प्रयोजन कहिए, इस प्रकार कहने के लिए जिसके द्वारा उद्यत किया जा रहा है, उस हमारी धृष्टता को आत्म-गौरव को उत्पन्न करने वाला तुम्हारा महान् यह आगमन बढ़ा रहा है।

संस्कृत व्याख्याः - गतस्पृहः-कामनारहितः, अपि, आगमन-प्रयोजनं = द्वारकागमनस्य उद्देश्यं, वद कथय, इति एवं, वक्तुं कथयितुं, यया धृष्टतया, व्यवसीयते = उद्यम्यते, उदितात्मगौरवः = समुत्पन्नौ मम गौरवः, गुरुः = श्लाघनीयः = अयम् तव = त्वदीयः, आगमः = आगमनम् एव, नः = अस्माकं, ताम्: धृष्टताम् = धाष्यम् तनोति = विस्तारयति । कामनारहितोऽपि भवान् द्वारकागमनस्य प्रयोजनं कथय। एवं कथयितुं यया धृष्टतया उद्यम्यते । समुत्पन्नो मम गौरवः श्लाघनीयमिदं त्वदीयं आगमनम् एव अस्माकं तं धार्यम् विस्तारयति ।

इति ब्रुवन्तं तमुवाच स व्रती न वाच्यमित्थं पुरुषोत्तम ! त्वया।

त्वमेव साक्षात्करणीय इत्यतः किमस्ति कार्यं गुरुयोगिनामपि ॥31

अन्वय - इति ब्रुवन्तम् तं सः व्रती उवाच, पुरुषोत्तम त्वया इत्थं न वाच्यम् योगिनाम् अपि त्वम् एव साक्षात् करणीयः इत्यतः गुरु कार्यं किम् अस्ति।

सर्वङ्कषा - इति ब्रुवन्तमिति । इति ब्रुवन्तं तं-हरिं, स व्रती-मुनिरुवाच । किमिति ? हे पुरुषोत्तम-पुरुषेषु श्रेष्ठ । 'न निर्धारणे' इति षष्ठी समास-प्रतिषेधः । त्वया इत्थं 'गतस्पृहोऽपि' इति न वाच्यम्। 'निःस्पृहस्याप्यत्रप्रयोजनसम्भवादिति भावः'। तदेवाहयोगिनामपि त्वमेव साक्षात्करणीय-प्रत्यक्षीकर्तव्य इत्यतः

अस्मादन्यद् गुरुकार्यं किमस्ति ?-न किञ्चिदित्यर्थः । तस्मान्न प्रयोजनान्तरप्रश्नावकाश इति भावः ।

शब्दार्थ - इति ब्रवुन्तम्= ऐसा कहते हुये, तं=उन श्री कृष्ण जी से, सः व्रती = उन व्रती नारद ने, उवाच कहा, पुरुषोत्तम हे पुरुषों में श्रेष्ठ, त्वया = आपकी, इत्थं=ऐसा, न वाच्यं = नहीं कहना चाहिये, योगिनाम् = योगियों के, अपि भी, त्वमेव = आप ही, साक्षात्करणीयः = साक्षात् करने योग्य हैं, इत्यतः = इससे, गुरु कार्य-बड़ा कार्य, किम् अस्ति = क्या है?

अनुवाद - ऐसा कहते हुये उन श्रीकृष्ण जी से उन व्रती नारद ने कहा, हे पुरुषों में श्रेष्ठ! आपको ऐसा नहीं करना चाहिये। योगियों के भी आप साक्षात् करने योग्य हैं। इसमें बड़ा कार्य और क्या है?

उदीर्णरागप्रतिरोधकं जनैरभीक्षणमक्षुण्णतयातिदुर्गमम् ।

उपेयुषो मोक्षपथं मनस्विनस्त्वमग्रभूमिर्निरपायसंश्रया ॥32 ॥

अन्वय - उदीर्णरागप्रतिरोधकम् अभीक्षणम् अक्षुण्णतया जनैः अतिदुर्गमम् मोक्षपथम् उपेयुषः मनस्विनः त्वं निरपायसंश्रया अग्रभूमिः ।

सर्वङ्कषा- उदीर्णरागेति। उदीर्णः उद्विक्तो रागः विषयाभिलाषः स एव प्रतिरोधकः-प्रतिबन्धकः पाटच्चरश्च यस्मिन् । 'प्रतिरोध परास्कन्दिपाटच्चरमलिम्लुचाः' इत्यमरः । अभीक्षणमक्षुण्णतया अनभ्यस्तत्वेन अप्रतिहतत्वेन च जनैरतिदुर्गम मोक्षपथम्-अपवर्गमार्ग, कान्तारं उपेयुषः - प्राप्तवतः । 'उपेयिवान्' इत्यादिना क्वस्वन्ती निपातः । मनस्विनः -सुमनसः, धीरस्य च प्रशंसायां विनिः। त्वमेव निरपायः पुनरावृत्तिरहितः संश्रयः प्राप्तिर्यस्याः सा तथोक्ता। न स पुनरावर्तते, इति श्रुतेः । 'अग्रभूमिः- प्राप्यस्थानम् अग्रमालम्बने प्राप्ये इति विश्वः । 'सोऽहम्' इत्यादि श्रुतेस्तत्प्राप्तेरेव मोक्षत्वादिति भावः । तस्मान्मुमुक्षूणामपि त्वमेव साक्षात्करणीय इति सिद्धम्। 'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' श्रुतेः । यथा कस्यचित्कुतश्चित्सङ्कटान्निर्गतस्य केनचित्कान्तारेण गतस्य किञ्चिन्निर्बाध-स्थानप्राप्तिरभयाय कल्पते तथा त्वमपि मुमुक्षोरिति ध्वनिः ।

शब्दार्थ - उदीर्णरागप्रतिरोधकं बढी हुई आसक्ति जिसमें रुकावट है, अभीक्षणम् = निरन्तर, अक्षुण्णतया = अभ्यस्त न होने के कारण, जनैः = मनुष्यों के द्वारा (जो), अतिदुर्गमम् = अत्यन्त दुर्गम (हैं, ऐसे), मोक्षपथम् = मोक्ष के मार्ग को, उपेयुषः = प्राप्त, मनस्विनः = धीरपुरुष के, त्वम् = तुम, निरपायसंश्रया = पुनरागमन से रहित, अग्रभूमिः = पाने योग्य स्थान हो।

अनुवाद - बढी हुई आसक्ति जिसमें रुकावट है, निरन्तर अभ्यस्त न होने के कारण मनुष्यों के द्वारा जो अत्यन्त दुर्गम है ऐसे मोक्ष के मार्ग को प्राप्त हुये धीर-पुरुष के तुम पुनरागमन से रहित पाने योग्य स्थान हो।

उदासितारं निगृहीतमानसैर्गृहीतमध्यात्मदृशा कथञ्चन ।

बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः ॥33 ॥

अन्वय - पुराविदः त्वां निगृहीतमानसैः अध्यात्मदृशा कथञ्चन गृहीतम् उदासितारं बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथक् पुरातनं पुरुषं विदुः । ननु प्रकृतिविविक्तपुरुषसाक्षात्कारान्मोक्षो नास्मत्साक्षात्कारादित्याशङ्क्य सोऽपित्वमेवेत्याह-

सर्वङ्कषा - उदासितारमिति । पुराविदः- पूर्वज्ञाः कपिलादयः । त्वां निगृहीत-मानसैः - अन्तर्निबद्धचितैर्योगिभिः- आत्मनि अधि इत्यध्यात्मम् ? विभक्त्यर्थेऽव्ययी- भावः । 'अनश्च' इति समासान्तष्टच्। अध्यात्मं यादृक् ज्ञानं तथा- अध्यात्मदृशा-प्रत्यग्दृष्ट्या, कथञ्चन गृहीतं-साक्षात्कृतम्। केन रूपेण गृहीतमित्यत आह-उदासितारम्-उदासीनम्-प्रकृतौ स्वार्थप्रवृत्तायामपि स्वयमप्राकृतत्वाद् स्पृष्टमित्यर्थः । आसेस्तृच् । विकारेभ्यो बहिः बहिर्विकारम् । महदादिभ्यः पृथग्भूतमित्यर्थः 'अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या' इत्यव्ययीभावः किञ्च प्रकृतेः-त्रैगुण्यात्मनो मूलकारणात्पृथग्-भिन्नम् 'प्रकृतिः पञ्चभूतेषु प्रधाने मूलकारणे' इति यादवः । पुरा भवं पुरातनम्-अनादिम्। 'सायंचिरम्' -इत्यादिना। ट्यु प्रत्ययः । पुरुषं-पुरुषपदवाच्यं विज्ञानघनं । विदुर्विदन्ति। 'विदो लटो वा' इति झेरुसादेशः । यथाहुः-मूलप्रकृतिरविकृतिमहदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त । षोडशकश्च विकारो न प्रकृतिर्नविकृतिः पुरुषः । इति । 'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्' इत्यादि श्रुतिश्च

सोऽपि त्वमेव 'तत्त्वमसि' इत्यादिवाक्यैरेक्यश्रवणात् । तस्मात्त्वमेव साक्षात्करणीय इति सुष्ठुक्तमिति भावः ।

शब्दार्थ - पुराविदः = पूर्वज । त्वां आपको, निगृहीतमानसैः = मन को वश में करने वाले योगियों के द्वारा, अध्यात्मदृशा आध्यात्मिक दृष्टि से, कथञ्चन गृहतम् = किसी प्रकार साक्षात् किया हुआ, उदासितारं उदासीन, बहिर्विकारं = विकार से बाह्य, प्रकृतेः पृथक् = प्रकृति से पृथक्, पुरातन = अनादि, पुरुषं पुरुष को, विदुः = जानते हैं। सांख्यदर्शनेन हि निःक्रियत्वं प्रतिपाद्याधुना पञ्चरात्रदर्शनेन कर्तृत्वमाह-

निवेशयामासिथ हेलयोद्धृतं फणाभृतां छादनमेकमोकसः ।

जगत्त्रयैक स्थपतिस्त्वमुच्चकैरहीश्वरस्तम्भशिरःसु भूतलम् ॥34 ॥

अन्वय - जगत्त्रयैकस्थपतिः त्वम् हेलया उद्धृतम् फणाभृताम् ओकसः एकम् छादनम् भूतलम् उच्चकैः अहीश्वरस्तम्भशिरः सु निवेशयामासिथ । एवं भगवतो निर्गुणस्वरूपमुक्त्वा सम्प्रति प्रस्तुतोपयोगितया सगुणमाश्रित्य षभिः स्तौति-

सर्वङ्कषा - निवेशयामासिथेति । जगत्त्रयस्य एकस्थपतिः- एकाधिपतिः, एकशिल्पी च। 'स्थपतिरधिपतौ तीक्ष्ण बृहस्पतिसचिवयोः' इति वैजयन्ती । त्वं हेलयोद्धृतम्। वराहावतारे इति भावः । फणाभृताम् ओकसः- आश्रयस्य, सद्यनश्च 'ओकः सद्यनि चाश्रये' इति विश्वः । एकं छादनाम् आवरणं, भूतलमुच्चकैरुन्नतेषु च-अहीश्वरः-शेष एक स्तम्भतस्य शिरःसु-मूर्धसु, अग्रेषु च। फणासहस्रेष्विति भावः। निवेशयामासिथ-निवेशितवानसि । विशतेर्ण्यन्ताल्लिटि थल्। 'कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि' इत्यस्तेरनुप्रयोगः । अत्र शिल्पाशिल्परूपकयोर्हेतुहेतुमद्भावाच्छ्लिष्ट परम्परितरूपकम् ।

शब्दार्थः - जगत्त्रयैकस्थपतिः-तीनों लोकों के एकमात्रशिल्पी या एकमात्र स्वामी, त्वम्= तुमने, हेलया = लीला से, उद्धृतम् = उठाये हुए, फणाभृतम् = फणभारी सर्पों के, ओकसः-निवास-स्थान अर्थात्, पाताल लोक के एकम् मुख्य, छादनम् = आवरण भूतल को, उच्चकैः = ऊँचे, अहीश्वरस्तम्भशिरःसु = सर्पराज के स्तम्भरूपी सिरों पर, निवेशयामासिथ रख दिया।

अनुवादः - तीनों लोकों के एकमात्र शिल्पी या स्वामी तुमने अपनी लीला से अनायास ही उठाये हुए फणधारी सर्पों के निवास स्थान अर्थात् पाताललोक के मुख्य आवरण भूतल को ऊँचे सर्पराज के स्तम्भरूपी सिरों पर रख दिया।

संस्कृत व्याख्याः - जगत्त्रयैकस्थपतिः = त्रैलोक्यैकशिल्पी त्रैलोक्याधिपतिः, त्वम् = भगवान् श्रीकृष्णः = श्री कृष्ण, हेलया = लीलया, उद्धृतम् = उत्थापितम्, फणा-भृताम् = फणधारिणाम्, ओकसः- आश्रयस्य, एकम् मुख्य, छादनम् = प्रमुखम् करते हैं। प्रसङ्ग - इस श्लोक में नारदजी भगवान् विष्णु की अपूर्व महिमा का व

अनन्यगुर्वास्तव केन केवलः पुराणमूर्तेर्महिमावगम्यते ।

मनुष्यजन्माऽपि सुरासुरान्गुणैर्भवान्भवच्छेदकरैः करोत्यधः ॥ 35 ॥

अन्वय- अनन्यगूर्वाः तव पुराणमूर्तेः केवलः महिमा केन अवगम्यते । मनुष्य जन्मा अपि भवान् भवच्छेदकरैः गुणैः सुरासुरान् अधः करोति ।

सर्वङ्कषा- अन्येति । न विद्यतेऽन्यो गुरुर्यस्यास्तस्याः- अनन्यगूर्वाः इत्यनीकारान्त पाठः । समासात्प्राङ् डीषि 'नद्युतश्चः' इति कप्प्रसङ्गस्यात् । पश्चात्तनुपसर्गजाधिकारान 'वोतो गुणवचनात्' इति न प्राप्नोति । 'डिति ह्रस्वश्च' इति व नदीसंज्ञात्वात् 'आण्णदयाः इत्याडागमः । केचित्तु समासान्त विधिरनित्य इति कप् वारयन्ति । तस्याः सर्वोत्तमाया तव पुराणमूर्तेः- अमानुषस्वरूपस्य । केवलः-कृत्स्नः । 'केवलः कृत्स्न एकः स्यात्केवल-श्चावधारणे' इति विश्वः । महिमा केनावगम्यते ? न केनापीत्यर्थः । कुतः ? मनुष्याज्जन्म यस्य स मनुष्यजन्मा भवान् 'अवो हि बहुब्रीहिव्यधिकरणो जन्माद्युत्तरपदः' इति वामनः । भवच्छेदकरैः- संसारनिवर्तकैः, गुणैर्ज्ञानादिभिः सुरासुरान् । सुरासुरविरोधस्व कार्योपाधिकत्वेनाशाश्वतिकत्वात् येषां च विरोधः शाश्वतिकः' इति न द्वन्द्वैकवद्भाव इत्याहुः । अधः करोति । 'शेषे प्रथमः' इति प्रथमपुरुषः । भवच्छब्दस्य युष्मदस्मदन्यत्वेन शेषत्वादिति । मानुष एव ते महिमा दुरवगाहः, अमानुषस्तु किमिति तात्पर्यार्थः ।

शब्दार्थः - अनन्यगूर्वाः - असाधारण गौरव वाले जिनका कोई गुरु नहीं है, तव = तुम्हारी, पुराणमूर्तेः = चिरन्तनस्वरूप की केवलः = सम्पूर्ण, महिमा महिमा, केन = किसके द्वारा, अवगम्यते = जानी जा सकती है, मनुष्यजन्माऽपि

मनुष्यरूप में जन्म लेकर भी, भवान् = आप, भवच्छेदकरैः = संसार को नष्ट करने वाले, गुणैः= गुणों के द्वारा, सुरासुरात् = देवों और असुरों को अधः करोति = तिरस्कृत कर रहे हैं।

अनुवादः - असाधारण गौरव वाले या जिनका कोई गुरु नहीं है, ऐसे तुम्हारे चिरन्तन स्वरूप की सम्पूर्ण महिमा किसके द्वारा जानी जा सकती है। मनुष्य रूप में जन्म लेकर भी आप संसार को नष्ट करने वाले गुणों के द्वारा देवों और असुरों को तिरस्कृत कर रहे हैं।

संस्कृत व्याख्या - अनन्यगवाः- असाधारण गौरवशालिनः न विद्यते के गुरुर्यस्य, तादृशस्य, तव भवतः, पुराणमूर्तेः = चिरन्तनस्वरूपस्य, केवलः कृत्स्नः, महिमा = माहात्म्यः, अवगम्यते = ज्ञायते, मनुष्यजन्मा मानवविग्रहधारी अपि, भवान् श्री कृष्णः, भवच्छेदकरैः संसारनिवर्तकैः गुणैः ज्ञानादिभिर्गुणैः, सुरासुरान् देवासुरान्, अधः करोति तिरस्करोति ।

संस्कृत भावार्थः - अ-अन्यगुर्वाः- असाधारणगौरवशालिनः न विद्यते गुरुर्यस्य तादृशस्य भवतः चिरन्तनस्वरूपस्य माहात्म्यः केन पुरुषेण ज्ञायते मानवविग्रहधारी अपि भवान् संसारनिवर्तकैः ज्ञानादिभिर्गुणैः शाश्वतिकान् विरोधधारिणः देवासुरान् तिरस्करोति ।

स्व प्रगति प्रश्न -

(क) पाणि	-	(क) सिर
(ख) मुहूर्ता	-	(ख) सिंहासन
(ग) आसन	-	(ग) हस्त
(घ) यदा	-	(घ) उस समय
(ङ) तदा	-	(ङ) इस समय

15.4 सार - संक्षेप

शिशुपाल वध की कथा मुख्यतः शिशुपाल तथा श्री कृष्ण पर आधारित है। यह कथा पुराण, पुराने प्राचीन ग्रंथों में भी प्राप्त होती है, इसे ही आधार बनाकर महाकाव्य के मुख्य कथा बनाया गया है। महाकाव्य में कथा का आरंभ श्री कृष्ण के मिलन से होता है इस महाकाव्य में कथा के अंतर्गत श्री कृष्ण के यज्ञ में जाने तक के मार्ग का सुंदर चित्रण भी किया गया है। यज्ञ में पहुंचने के उपरांत युद्ध भूमि पर योद्धाओं की वीरता तथा अंत में श्रीकृष्ण के द्वारा शिशुपाल के बाद के साथ कथा का समापन हो जाता है। इकाई में इसी कथावस्तु के कतिपय भाग को श्लोकों के द्वारा उक्त किया गया है।

15.5 मुख्य शब्द

1. अभिराम- शोभा
- 2 महानुभाव- पूज्य जन
- 3 पटल-समूह
- 4 अच्युत - श्रीकृष्ण
- 5 उक्तवान- कहा

15.6 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. (ग) 2. (क) 3(ख) 4(ड) 5(घ)

15.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

- 1 डॉ श्रद्धा सिंह शिशुपालवध- महाकवि माघ, , जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, 2012
- 2 महामहोपाध्यायकोलाचलमलिनाथ, पंडितदुर्गाप्रसाद, महामहोपाध्याय पंडितशिव दत्त शिशुपालवध-महाकवि माघ, , निर्णय सागर प्रेस, मुंबई, दशम संस्करण

- 3 पंडित जनार्दन शास्त्री पांडे, शिशुपालवध- महाकवि माघ, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1972
- 4 श्री राम जी लाल शर्मा, शिशुपालवध - महाकवि माघ, चौखंभा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1990
- 5 श्री अशोकचन्द्रगौड़ शास्त्री, शिशुपालवधरहस्यम्, चौखंभा सुरभारती प्रकाशन, 1999

15.8 अभ्यास प्रश्न

1. निम्न श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए-
 1. निवेशयामासिथ हेलयोद्धृतं फणाभृतां छादनमेकमोकसः ।
जगत्त्रयैक स्थपतिस्त्वमुच्चकैरहीश्वरस्तम्भशिरःसु भूतलम्
 - 2 स काञ्चने यत्र मुनेरनुज्ञया नवाम्बुदश्यामतनुज्यविक्षत ।
जिगाय जम्बूजनितश्रियः श्रियं सुमेरुशृङ्गस्य तदा तदासनम् । ।